



विनोद-पुस्तक-मन्दिर का २४ वाँ पुष्प—

उत्तर-पश्चिम सरहद

के

आज़ाद कबीले

[उत्तर-पश्चिम सरहद का आज़ाद कबीला प्रदेश का रहस्यमय, रोचक और ऐतिहासिक वर्णन, पठानिस्तान आन्दोलन की शक्ति, मनोविज्ञान और भविष्य तथा ईपी के फ़कीर, खान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ इत्यादि कबाइली नेताओं के जीवन-चरित्र]

लेखक

श्री रतनलाल 'बंसल'

श्री प्रदीपचन्द्रजी चतुर्वेदी

प्रकाशक

विनोद-पुस्तक-मन्दिर,

हास्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण] १५ सितम्बर, सन् १६४७ [मूल्य ४॥)

प्रकाशक—

विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा ।

हमारे यहाँ से प्रकाशित लेखक की अन्य पुस्तकें

मन के बन्धन	२)
चलो दिल्ली	३।।।)
जय हिन्द	१।।=)
रेषमी पत्रों का षड्यन्त्र	४)
तीन क्रान्तिकारी शहीद	३।।)

2226

मुद्रक—
केसरीसिंह यादव,
कल्याण प्रिंटिंग प्रेस,
आगरा ।

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

"उत्तरी-पश्चिमी-सीमा केवल भारत की ही सीमा नहीं, वरन् फ़ौजी दृष्टि से सारे साम्राज्य [ब्रिटिश साम्राज्य] के भी लिये एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है।"*

उपरोक्त शब्द साइमन कमीशन की प्रसिद्ध रिपोर्ट से उद्धृत किये गये हैं। इन पंक्तियों में सीमा प्रान्त† के विशाल महत्त्व का एक ही पहलू लिया गया है। किन्तु यह सीमा प्रान्त भारत की साधारण सीमा मात्र ही नहीं है, यह इस विशाल देश का सिंहद्वार है। भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर इस प्रान्त ने अनेक बार अनेकों गाथाओं की भूमिका रची है। युग-निर्माताओं के चरण पहले पहल इसी भूमि पर पड़े थे। महान् सिकन्दर के (यदि आर्यों को भारत का आदि मूल निवासी माना जाय) प्रथम आक्रमण से लेकर इसलाम धर्म के दीवानों के अन्तिम आक्रमण (अँग्रेज़ इस देश में समुद्र-मार्ग से घुसे हैं) तक अनेकों बार अनेकों जातियों ने इस प्रदेश में पदार्पण करने के पूर्व अपना प्रथम शिविर इसी भूमि पर गाड़ा था। इस प्रकार पाठक अनुभव करेंगे कि इसकी स्थिति के कारण जहाँ इसका भौगोलिक महत्त्व है, वहीं इसकी स्वतंत्रताप्रिय, वीर हृदय, निर्द्वन्द्व जातियों के कारण इसका अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व भी है। यह तो रही अतीत भूत की, किन्तु काल के कुठार की भीषण चोटों से जब अनेक वैभवशाली देश और नगर

*"The North-West Frontier is not only the Frontier of India, it is an international frontier of the first importance from the military point of view for the whole Empire."

—*Simon Commission.*

† सीमा प्रान्त से पाठक इस पुस्तक में प्रत्येक स्थान पर उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त समझें।

भूमिसात् हो गये, और जिनके नाम के अवशिष्ट चिह्न भी पृथ्वी के गर्भ में पड़े-पड़े अपने खोये ऐश्वर्य को याद कर आठ-आठ आँसू रो रहे हैं, तब भी उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त भारत के भाग्य से बँधकर निश्चल खड़ा है। फलस्वरूप अन्य अनेक महत्त्वों के साथ ही सीमा प्रान्त का दुरूह प्रश्नात्मक राष्ट्रीय महत्त्व भी है।

भारत-भूमि पर अँग्रेजों का निश्चितरूप से शासन आरम्भ हुए ९० वर्ष हुए, किन्तु उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त की समस्या उससे भी पुरानी कई सौ बर्षों की है। यह प्रान्त दीर्घकाल से एक विचित्र पेचीदा प्रश्न बना हुआ है। अनेक बार 'दाम और दण्ड' से इसे हल करने का प्रयत्न किया गया किन्तु उसका हल सदा वैसा ही रहा जैसे त्रिशंकु का स्वर्ग जाने का फल। इसके 'खूँख्वार, असभ्य और जङ्गली' जीवों के लिये अनेक बार इस बूढ़े दधीचि (भारत) की हड्डियों का वज्र बनाया गया, मनों सोना उन्हें रिश्वत में दिया गया, हज़ारों ही नहीं लाखों माँ के लाड़लों की नृशंसतापूर्वक बलि चढ़ाई गई परन्तु यह पाषाण देवता न माने, न माने, न माने। वे रूठे ही रहे। क्यों? यही एक प्रश्न है जिसका हल खोजना है, और यही हल खोजने का प्रयत्न इस पुस्तिका में किया गया है। किन्तु पाठक इसका तात्पर्य यह न समझें कि लेखक गण नेताओं के लिये कोई सन्देश लिख रहे हैं। हमारा प्रधान उद्देश्य तो उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त की वास्तविक भौगोलिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय परिस्थितियों को उपस्थित करना। यह काम पाठकों का होगा कि वे इसमें से सहृदयता तथा युक्तिपूर्वक कोई हल खोज निकालें।

इसके पूर्व कि प्रस्तुत प्रश्न को आरम्भ करें कुछ खण्डन कार्य भी अनुचित न होगा। एक हल हमें ब्रिटिश शासकों से मिला है, किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि वह हल पूर्णतः असफल रहा है। जिज्ञासा होती है कि यह हल क्या है। शासकवर्ग की निरंकुशता के परिणाम-स्वरूप हमें लम्बे अरसे से घोर अन्धकार में रखा गया है। अभी तक की राजनैतिक चाल से अँग्रेजों ने सीमा प्रान्त भारत से लगभग तोड़ ही रखा था। निज स्वार्थ-पूर्त्ति के लिये सीमा प्रान्त एक भारी अड्डा

तिलिस्म बना रहा, जिसके द्वार पर लन्दन का भारी ताला पड़ा रहा। परिणाम यह हुआ कि भारतवासी सीमा प्रान्त के विषय में निरे बोपदेव ही बने रहे और जो कुछ थोड़ी-बहुत जानकारी भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग (Political Department of the Government of India) की कृपा से प्राप्त भी हुई वह सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण थी। सरकार के ग़ुलाम समाचार पत्रों ने, तथा अज्ञानी तथाकथित 'लीडरों' ने इस बात का खूब प्रचार किया कि आज़ाद कबीलों के निवासी बड़े खूँख्वार, असभ्य तथा अमानुषिक हैं। वे खिलवाड़ में ही चाहे जिस व्यक्ति की हत्या कर सकते हैं। यही नहीं यदि उन्हें रिश्वत न दी जाय तो इससे भी क्रूरतापूर्ण पाशवी कार्य करने में आगा-पीछा नहीं करेंगे। एक बार सरस्वती के किसी अंक में एक कहानी निकली थी जिसमें लेखक ने इन अफ़रीदियों के अत्याचारों का लोमहर्षण वर्णन किया था। उस कहानी को पढ़कर, मुझे आज भी भली प्रकार स्मरण है कि, मेरा हृदय घृणा और भय से काँप उठा था। आज समझता हूँ कि निस्सन्देह उस कहानी के लेखक ने शासकों के उसी प्रचार से प्रेरणा प्राप्त की थी। इस कठोरता के मूल में कहा गया था कि कि उनका धार्मिक दीवानापन है। चूँकि वे इसलाम के कट्टर अनुयायी हैं इसलिये किसी अन्य गैरमुसलमानी धर्म के अनुयायी को काफ़िर कह कर और 'शुभाचरण' से उसकी हत्या करके 'बहिश्त' पाना अपना धर्म समझते हैं। लूटमार, हत्या तथा युद्ध उनका जातीय धर्म है, जिसे प्रत्येक अफ़रीदी बच्चा अपने माँ-बाप से विरासत में पाता है। तात्पर्य यह है कि यह उनका जन्मजात अधिकार है जिसे किसी भी प्रकार उनसे दूर नहीं किया जा सकता। इसका मतलब हुआ कि वे जन्म-जात असभ्य हैं और उन्हें सभ्य नहीं बनाया जा सकता। हमारे शासक अपने पक्ष में एक और अचूक तर्क उपस्थित करते हैं। कहा जाता है कि ये जातियाँ भारतवर्ष पर मुसलमानी 'हुकूमत' के सपने देखते हैं, और किसी भी समय मौक़ा हाथ पड़ने पर नादिरशाह या अहमद खाँ अब्दाली की भाँति 'क़त्लेआम' के बल से दिल्ली के लाल क़िले पर

अपना झंडा गाड़ देंगे। इसलिये भी आवश्यक है कि अमुसलिम जातियों की इस साम्प्रदायिक संकट से रक्षा करने के लिये इन नादिरशाहियों का पूर्ण दमन किया जाय। ये राष्ट्रीयता से शून्य हैं। उनका किसी भी निश्चित देश के प्रति ममत्व नहीं है। भारत के अंग होकर भी उनका हितचिंतन अफ़ग़ानिस्तान के लिये अधिक उत्कंठित है। किन्तु उनका सबसे अधिक निश्चित उद्देश्य तो सोना है। वे सोने के लिये अपने तन मन तथा सम्पूर्ण को भी बेच सकते हैं। किन्तु यहाँ यह ध्यान रहे कि वे सबसे अधिक स्वतन्त्रता प्रिय व्यक्ति हैं और सोने के ऊपर वे केवल अपने तन मन का श्रम ही बेचते हैं, जीवन नहीं। यही भूल है जिसके कारण राशि-राशि सोना लुटाकर भी अँग्रेज़ अफ़रीदियों की समस्या को हल नहीं कर सके। अँग्रेजों के प्रचार का एक उत्तेजक वाक्य यह भी है कि इन असभ्यों को भारत की आज़ादी का कुछ भी ध्यान नहीं, चाहे जिस दिन वे भारत के विरुद्ध किसी भी अभारतीय शक्ति से मिलकर भारत की आज़ादी को खतरे में डाल सकते हैं।

कबीला प्रदेश और उसके निवासियों के प्रति अपनी इन्हीं मान्यताओं को लेकर जो नीति अँग्रेज़ों ने इनके प्रति स्थिर की है उसके आधार हैं रिश्वत और तोप। तोपों और टैङ्कों से गोलाबारी करके, हवाई जहाज़ों से बम वर्षा कर, षड़यन्त्रों के जाल बिछाकर, तथा सोने का लोभ दिखा दिखा कर सदा से इन निर्द्वन्द्व सिंहों को पिंजड़े में फँसाने का प्रयन्त किया गया है किन्तु क्या कभी बिल्ली के भागों छींका टूटेगा? सम्भव है ऐसी आशा आज से दस वर्ष पूर्व की जा सकती किन्तु आज तो वह दुराशामात्र है। सीमा प्रान्त का शासन सर्वथा भिन्न प्रकार से किया गया, उसके लिये क़ानून भी विशेष प्रकार के बनाये गये हैं। इन विधानों का प्रमुख उद्देश्य रहा है उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त को प्रगति और विकास की ज्योति से छिपाकर रखना। अपने इस प्रयत्न में ब्रिटिश शासकों ने निषेधात्मक कूटनीतियों का सहारा लेने में भी सङ्कोच नहीं किया। जब-जब भारत के राष्ट्रीय या सार्वजनिक स्वर में अँग्रेज़ों की दुर्नीति को सूँघकर उसका विरोध किया

गया तब-तब उन्हीं पुराने तर्कों को नये नये शब्दों में दुहरा दिया गया है। यही नहीं जब कभी किसी साहसी व्यक्तिने इन प्रदेशों में प्रवेश करने की इच्छा भी की तब-तब उसको सहयोग देना तो दूर रहा, उसके मार्ग में रोड़े अटकाये गये हैं। अपने इस दुष्कृत्य में भले-बुरे, ऊँच-नीच, उचित-अनुचित का विचाराविचार भी हमारी न्यायप्रिय सरकार उठा कर ताक में रख देती है। इसी दुस्साहस का परिणाम था कि जब अन्त:कालीन सरकार के उपाध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू आज़ाद कबीलों के देश की ओर चलने लगे, और किसी भी न्याय से शासक-सत्ता उन्हें न रोक सकी तो 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे' वाली नीति से वहाँ के निवासियों को भड़काया और विरोधी प्रदर्शन कराये। नेहरूजी की कार पर पत्थरों की वर्षा, उनके यान पर गोली के वार तथा सभाओं में साम्प्रदायिक-प्रश्नों के पुछवाने में ब्रिटिश सरकार का विचित्र षड्यन्त्र था। इस षड्यन्त्र को हम 'भागे भूत की लँगोटी ही भली' वाली कहावत से व्यक्त कर सकते हैं। इसका उद्देश्य था अपनी पुरानी बकझक को सत्य सिद्ध करना। अर्थात् यह सिद्ध करना कि वस्तुतः कबीलों के वासी असभ्य, मूढ़ तथा बर्बर हैं। और निस्सन्देह उनका यह षड्यन्त्र कुछ अंशों में सफल भी हो गया। सचमुच ही कुछ क्षेत्रों में कबीलों के इस व्यवहार से बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई।

किन्तु अधिकाँश आँखें पर्दा खोलकर सत्य समझने में भी नहीं चूकीं। लोग जान गये कि यह सारा उत्पात और उपद्रव अँग्रेजी काली करतूतों का ही फल है। क्या अफ़रीदी मनुष्य नहीं हैं? क्या हमारी आपकी भाँति उनके भी हृदय नहीं है, विवेक नहीं है? क्या वे भी हमारी ही भाँति अपने बच्चों का भरण-पोषण नहीं करते? क्या पशुओं की तरह किसी अफ़रीदी ने भी अपने बच्चों को मारकर खा लिया है? इस सभ्य कही जाने वाली जाति के पास इन प्रश्नों का क्या उत्तर है? आप स्वीकार करेंगे कि अफ़रीदी हमारी ही भाँति मनुष्य हैं, उनमें भी मानवी चेतना खेलती है। भेद के स्थान पर तो वे हम भारतीयों से भी दो क़दम आगे हैं। दासों की भाँति जहाँ हम मूक बने वर्षों से अँग्रेजों

की .ग़ुलामी करते आये हैं, वहाँ इन अफरीदियों ने स्वतन्त्रता के एक-एक क़दम पर हँस-हँस कर बलिदान किये हैं। वे बन्धन नहीं जानते, दासता, पराधीनता और .ग़ुलामी उनके देश में अपना काला मुँह लेकर नहीं घुस पाते। उनकी सम्पूर्ण बर्बरता तथा भयङ्करता उनका दासता के विरुद्ध मचाया हुआ सङ्घर्ष है। वे विदेशी हवा में नहीं जी सकते। वे चाहते हैं जीना, अपने मन मुताबिक, स्वच्छन्द होकर जीना।

उनकी बर्बरता या भयङ्करता का एक और भी कारण है और वह है रोटी। परन्तु यह कारण गौण है। पहाड़ी प्रदेशों में रहते हुए उनकी रोटी का मूल्य बहुत मँहगा पड़ता है किन्तु यह कारण है गौण ही, क्योंकि यदि एक मात्र यही कारण होता तो अँग्रेजों के दिये हुए धन ने उन्हें शान्त कर दिया होता। तात्पर्य यह कि प्रधानतः अफ़रीदियों की समस्या सांस्कृतिक है और गौणरूप से आर्थिक। इन्हीं सबके बीच सामाजिक, राजनैतिक तथा प्रादेशिक समस्यायें भी आ जाती हैं।

पाठक देखेंगे कि इन्हीं बहुमुखी समस्याओं व महत्त्वों का विचार कर प्रसिद्ध अँग्रेज मारकिस-ऑव-वेलिंग्डन ने लिखा था —

"मैं ज़ोरदार शब्दों में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के दोनों प्रदेशों, यानी शान्त इलाक़ों तथा कबीले प्रदेश के निवासियों के चारित्रिक गठन के अध्ययन की सिफ़ारिश कर सकता हूँ।*

केवल चारित्रिक संगठन ही नहीं वरन् आज उनके सम्पूर्ण भूत और वर्त्तमान जीवन के अध्ययन की परमावश्यकता है। अपने इतने महत्व-पूर्ण भाइयों के विषय में इस प्रकार अन्धकार में रहना वस्तुतः हम भारतीयों के लिये सङ्कटास्पद हो सकता है। आज हमें अपने इस अङ्ग को ऐतिहासिक रीति से सांस्कृतिक, साहित्यिक, आर्थिक तथा सामाजिक

---

* I can strongly recommend a study..................of the North-West Frontier Province, of the characterstics of the people both in Tribal areas and the settled districts."

—*The Marquess Of Willingdon.*

और प्रान्त में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनैतिक दशाओं का अध्ययन करना होगा। आगे के लेख इसी कार्य को ध्यान में रखकर हमारे एक प्रयत्न को उपस्थित करेंगे।

कबीलों का देश : भौगोलिक दर्शन

निरे बुद्धिवादी ढंग से ही यदि जीवन की व्याख्या की जाय तो भी मेरा अनुमान है, कठोर से कठोर शून्यवादी या नास्तिक भी यह स्वीकार करेगा कि अत्यादि काल से प्रकृति मानव जीवन (पशु पक्षी व कीट तथा जीव अजीव भी इस सत्य की सीमा से दूर नहीं हैं) के निर्माण में अत्यन्त प्रधान कार्य करती रही है। स्थान की स्थिति, ज़मीन की बनावट, वहाँ की नदियाँ, पहाड़ और भूगर्भ स्थिति सामग्री, वन और समुद्र, ऋतुएँ आदि सभी मानव जीवन के निर्माण में एक विशाल परिवार का कार्य करते हैं। मनुष्य और इन भौगोलिक स्थितियों में निश्चित रूप से कार्य कारण का परस्पर सम्बन्ध विद्यमान है। क्यों अँग्रेज दुनियाँ के सर्वोत्कृष्ट मल्लाह हैं, क्यों अफ्रीका अभी तक पिछड़ा हुआ और असभ्य देश बना हुआ है, क्यों भारत धर्म प्रधान देश रहा है और क्यों इतने लम्बे अरसे से नित्य नये विदेशियों की दासता में जकड़ा हुआ रहा है, क्यों रूस नेपोलियन की अजेय शक्तियों का भी तिरस्कार करके अपराजित खड़ा रहा, और अन्त में इस सांस्कृतिक प्रश्न, कि क्यों यूरोप अमेरिका और अफ्रीका आदि कट्टर भौतिकवादी बन गये, का एक ही छोटा सा किन्तु नितान्त ही सत्य उत्तर है—इन देशों की प्राकृतिक दशा। इँगलैंड छोटा सा द्वीप है चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ। तब भला कैसा आश्चर्य यदि अँग्रेज चोटी के मल्लाह बन गये। आवश्यकता आविष्कार की जननी है न ? अफ्रीका का सुविशाल महाद्वीप एक जलते भट्टे सा है जहाँ चारों ओर सूखा ही सूखा है, धरती भी धरती नहीं सूखा रेगिस्तान, अम्बर भी अम्बर नहीं तप्त आकाश है। तब भला यह कैसे सम्भव है कि जिन्हें रात-दिन रोटी की

चिन्ता सताये वे बुद्धि के विकास के सपने रात में देखें? भारत, रूस और यूरोप आदि प्रश्न भी उसी प्रकार समझे जा सकते हैं। तात्पर्य यह कि किसी भी जाति के जीवन का सच्चा दर्शन करना है तो पहले उसके चारों ओर फैली हुई प्राकृतिक विशेषताओं को समझना होगा। आजाद कबीलों के रहस्य की कुन्जी भी यही तथ्य है। कबीलों का देश भी अपनी भौगोलिक विचित्रताओं का सीधा प्रभाव अपने निवासियों पर डालता है। क्यों ये आजाद कबीले खूँखार तथा नृशंस हैं? क्यों मनों सोना भी उनकी प्यास नहीं बुझा सकता? क्यों ये भारत में अकड़ कर चलने वाले गोरे किसी कबाइली को देखते ही अपने बिलों में घुस जाते हैं, अथवा सामना पड़ने पर कपिला गाय की तरह थर थर काँपने लगते हैं? क्यों कबाइली भारत से अधिक अफ़ग़ानिस्तान, तथा हिन्दुओं से अधिक मुसलमानों की ओर अपना स्नेह अधिक समझते हैं? (किन्तु क्या यह प्रश्न सत्य है?) क्या सचमुच कबीले मुसलमान तथा अफ़ग़ानिस्तान की ओर झुके हुये हैं? लेखक का विचार पाठक समय आने पर जान सकेंगे। यहाँ इतना ही प्रस्तुत होगा कि शासक वर्ग का प्रचार है) इन सभी प्रश्नों के उत्तर समझने में, यदि भौगोलिक स्थितियाँ समझ ली जायँ, तो सहूलियत होगी।

अपने निश्चित प्रश्न पर उतरने के पूर्व हमें कुछ पूर्वाभास जान लेना आवश्यक होगा। कबीलों का देश छोटे टुकड़ों में विभक्त है। अर्थात् यदि पूरे उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त को एक समुद्र मान लें तो कबीलों के प्रान्त छोटे-छोटे बिखरे हुये द्वीप-पुंज होंगे। इसलिये यह आवश्यक है कि कबीलों के देश का भूगोल जानने के लिये सीमा प्रान्त का भूगोल जान लिया जाय। इसका और कोई कारण हो या न हो इतना तो अवश्य है कि कबीलों का देश उत्तर पश्चिमी प्रान्त से सर्वथा अभिन्न है।

उत्तरी-पश्चिमी-प्रान्त की सीमा

उत्तर पश्चिमी प्रान्त भारत के उत्तर पश्चिमी छोर पर अपने नाम के

अनुसार ही स्थित है, किन्तु इस संयुक्त विशेषण का, पाठक स्वीकार करेंगे, उत्तरार्द्ध ही अधिक ठीक जँचता है, अर्थात यह सीमा प्रान्त उत्तर में उतना नहीं जितना पश्चिम में है। मानचित्र पर सीमा प्रान्त की स्थिति, उपमा के प्रेमियों को एक विशालकाय छिपकली सी प्रतीत होगी। सम्भव है रेखागणित के चतुर भक्तों को यह समानान्तर चतुर्भुज सा दीख पड़े। भौगोलिक परिस्थितियों का विचार करने पर जान पड़ेगा कि वस्तुतः सीमा प्रान्त अफ़ग़ानिस्तान का ही एक अंग है जो डूरेण्ड रेखा द्वारा अपने शरीर से अलग कर दिया गया है। डूरेण्ड रेखा का भी एक इतिहास है, किन्तु विस्तार के फेर में न पड़कर संक्षेप में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि अफ़ग़ान राज्य और भारत सरकार ने १८६४ में एक समझौता करके यह सीमान्त निश्चित किया था।

आधुनिक सीमा देने के पूर्व हम पाठकों को यह बता देना उपयुक्त समझते हैं कि इस सीमा का भी अपना एक इतिहास है, जिसके परिणाम स्वरूप हमेशा न तो भारत की सीमा ही यह थी और न इस सीमा प्रान्त का विस्तार भी वर्त्तमान जैसा किन्तु इतिहास में जाने के पूर्व हम आधुनिक सीमा दे देना ही उचित समझते हैं।

उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त का छोटा सा प्रदेश ३१° ४′ से ३६° ५७′ अक्षांश तथा ६६° १६′ से ७४° ७′ देशान्तर में स्थित है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई केवल ४०८ मील है तथा चौड़ाई केवल २७९ मील।

सीमा प्रान्त के शीश (उत्तर) पर पामीर के पठार का हिन्दुकुश पर्वत शोभित है, तथा चरणों (दक्षिण) में पंजाब प्रान्त के बिलोचिस्तान, डेरा ग़ाज़ीख़ाँ ज़िले बैठे हुये हैं, दक्षिणांग (पूर्व) में महाराजा काश्मीर का राज्य तथा स्वर्गीय श्री रणजीतसिंह की प्यारी वीरभूमि पंजाब है। वामांग में आप जान गये होंगे कि अफ़ग़ानिस्तान का स्वतंत्र राज्य स्थित है। इस प्रकार तीन ओर राज्यों से घिरा हुआ तथा एक ओर हिमालय पुत्र हिन्दुकुश से आच्छादित यह प्रान्त आज छोटा सा प्रान्त दीख पड़ता है, और सचमुच यह छोटा है भी। कारण इसका क्षेत्रफल कुल मिलाकर

३८००० वर्ग मील है, जिसमें से लगभग एक तिहाई भाग अर्थात् १३१६३ वर्ग मील में हज़ारा, बन्नू, कोहाट, मर्दान, पेशावर और डेरा इस्माइलखाँ नामक छः जिले हैं जिनको सरकारी भाषा 'सेटिल्ड डिस्ट्रिक्ट' (settled District) कहते हैं शेष भाग लगभग २५००० वर्गमील में रियासतें, अर्द्ध स्वतंत्र कबीला प्रदेश और स्वतंत्र कबीला प्रदेश बसा हुआ है।

अतीतके आवर्त्तनमें सीमा-प्रान्त की स्थिति व सीमामें परिवर्त्तन

उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त ने भारतीय इतिहास के साथ अनेकों परिवर्त्तन देखे हैं। यहाँ हम केवल सीमा व स्थिति सम्बन्धी प्रश्नों का ही विचार करेंगे, प्रान्त की ऐतिहासिक परम्परा का विवरण हम दूसरी जगह देंगे।

आर्यों के आरम्भिक साम्राज्य की सीमायें सिन्धु नदी से लेकर मध्य एशिया तक फैली थीं, ऐसा इतिहास वेत्ताओं का अनुमान है। इस प्रकार इसकी विशाल भूमिमें अफ़ग़ानिस्तानका एक बड़ा भाग, वर्त्तमान उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा काश्मीर, सिन्धु नदी की दक्षिण घाटी व सिन्ध देश और अनुमानतः बिलोचिस्तान भी सम्मिलित था। उस आदि युग के पश्चात् सन् १८१६ ई० तक यह प्रान्त क्रमशः ईरान, ग्रीक, बैक्टीरिया, मौर्य, पार्थियन, सिथियन, कुशान, गुप्त, तुर्की, गोरी, मुग़ल तथा अन्त में दुर्रानी साम्राज्य का अंग बना रहा है। इनके राजत्व काल में प्रायः इस सीमा प्रान्त की स्थिति सीमान्त न होकर मध्यस्थ रही है। हाँ अभारतीय राज्यों में अवश्य यह पूर्व का सीमान्त रहा है। इस परम्परा के बीच हमें एक और तथ्य के दर्शन होते हैं, वह यह कि वर्त्तमान उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त सर्वथा अँग्रेजों का बनाया हुआ है। सम्भवतः इसके पूर्व कभी इसकी यह स्थिति तथा रूप नहीं रहा। आज जिन्हें अँग्रेजी राज्य में स्थाई ज़िले कहते हैं उन्हें सन् १८४९ ई० में, सिक्ख राज्य के २० वर्ष पश्चात् अँग्रेजों ने अपने भारतीय राज्य में मिला लिया था। इस प्रकार इन २५०० वर्षों में इस सीमा प्रान्त को

निरंतर ही परिवर्तन देखने पड़े हैं। अशोक के राजत्व काल में जब उसके साम्राज्य की सीमायें उत्तर में बलख और यारकन्द तक, पश्चिम में काबुल, गजनी और कन्धार तक, तथा दक्षिण में सिन्धु के मुहाने तक फैल गईं तो यह प्रान्त उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया जितना आज है। आज का महत्त्व पाठक साइमन कमीशन की रिपोर्ट से उद्धृत अंश में देख चुके हैं।

ज़मीन की शक्ति

उत्तर-पश्चिम का दुरूह प्रान्त अगम पहाड़ों से भरा हुआ है, यही कारण है कि विश्व विजयिनी अँग्रेज़ सेना की भीषण गोलाबारी, टैंकों की मार, हवाई जहाज़ों, जिन्हें आज़ाद कबीले उनकी करतूत के कारण चुगलखोर कहते हैं, की गुप्तचरता तथा कुटिल कूटनीतिज्ञों की चालबाज़ियाँ भी कबाईलों को पराजित करना तो दूर उनकी उद्दण्डता को कम करने में आज तक सफल नहीं हुये। इन दुर्गम पहाड़ों के कठोर प्रान्तर में बीच-बीच में सुन्दर हरियाली घाटियाँ अपनी मनोरमता से इस प्रदेश को अतीव प्राकृतिक सौन्दर्य प्रदान करती हैं। पामीर की श्रेणियाँ इसमें दूर तक फैली हुई हैं। इन श्रेणियों, पर्वत-प्राचीरों में फाटक की तरह बोलन और खैबर के जगतप्रसिद्ध ऐतिहासिक दर्रे हैं। अफ़ग़ानिस्तान और फ़ारस की ओर उन्मुख इस प्रान्त में साहस, शक्ति और उत्साह के रोमाञ्चकारी दृश्य प्रति दिन ही होते रहते हैं। 'नदियों के दोनों ओर चाँदी-सी चमकती सरकण्डे वाली घास, जिसे सम्राट् बाबर बहुत पसन्द करता था, कोसों तक फैली दीख पड़ती है। पामीर की छत से छूती हुई पर्वत मालाओं के बीच आकर कभी-कभी तो वेगवती नदियों की धार छोटे-मोटे नाले-सी पतली किन्तु चंचल हो जाती है। इन पर्वत श्रेणियों में एक चोटी तो सुलेमान पहाड़ से भी बहुत ऊँची है। किन्तु अन्य नीची चोटियों पर पैदावार के नाम लगभग कुछ भी नहीं होता। वे तूफानों की चोटों से आहत पड़ी हैं। पेशावर की घाटी को घेर कर हिमाच्छादित शैलमालाओं की शोभा दर्शनीय है, फलस्वरूप जाड़ों के दिनों में वहाँ का कारबार लगभग टूट जाता है।

फल-अन्न उत्पादन के लिये मैदानी भाग सिन्धुनद तथा पश्चिमी पहाड़ों की तराई के बीच में स्थित है। इसमें पेशावर, मरदान, बन्नू, डेराइस्माइल खाँ के जिले तथा हरीपुर का भाग है। इनमें भी पेशावर, मरदान, बन्नू और डेराइस्माइल खाँ वाला भाग खूब उर्वर है। पेशावर की उर्वरता और भी अधिक प्रशंसनीय है। कारण वहाँ आज नहरों का जाल उसके फलों के खेतों की सिंचाई करता है। अनेकों प्रकार के फल, जो ढेर के ढेर हमारे प्रान्तों में दीख पड़ते हैं, पेशावर की ही देन है। तराई से दूर की घाटियों की शोभा बढ़ाने के लिये कलकल करते निर्झर तथा पहाड़ी नदियाँ हैं। इनमें से कुछ घाटियाँ—यथा कुर्रम और स्वात तो अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी एवं उर्वर हैं। इनमें दोनों किनारों पर धान के खेतों से प्रसन्न स्वात और कुर्रम की नदियाँ बहती हैं।

गेहूँ तथा गन्ना यहाँ की मुख्य उपज है तथा अच्छा चावल भी पैदा होता है। परन्तु सबसे अधिक उल्लेखनीय वस्तु यहाँ के नाना प्रकार के फल हैं। उपज का सम्बन्ध हमारे आर्थिक प्रश्न से सम्बन्धित है इसलिये इसका विस्तृत विवरण आगे दिया जायगा।

तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी प्रान्त एकदम पहाड़ी है जहाँ नदियों के जल से हरी घाटियाँ फैली पड़ी हैं। यहाँ की ठण्ड, जीवन की कठोरता तथा प्राकृतिक वैचित्र्य ने यहाँ के वासियों को एक विशिष्ट दिशा में मोड़ दिया है, यही कारण है कि वे हमसे भिन्न तथा दूरागत लगते हैं। यह जमीन की बनावट ही प्रमुख कारण है कि जिसके कारण क़बाईल अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके हैं।

यह तो रहा सम्पूर्ण प्रान्त। किन्तु जैसा आरम्भ में ही हम निर्देश कर चुके हैं हमारी इस पुस्तक के नायक पूरे प्रान्त के वासी नहीं वरन् केवल आज़ाद कबीले हैं। इसलिये हम अब उन्हीं की ओर उन्मुख होते हैं।

कबीलों के देश के आसपास

अभी तक पाठकों ने जो दृश्य देखे वे कबीलों के नहीं सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के थे। निस्सन्देह उपरोक्त वर्णन से कबीलों

के स्वतन्त्र देश का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इसकी, सम्भव है अन्य भाषा-भाषियों को आवश्यकता नहीं पड़ती, किन्तु युगों से गुलाम भारत स्वतन्त्रता का स्वाद ही क्या जाने ? इसलिए पृष्ठभूमि के रूप में यह आवश्यक था कि पहले अपने सम दुःखसाथी पाठकों के मस्तिष्कों तथा कल्पना को स्वतन्त्रता के प्रभावपूर्ण प्रवाह के लिये साज सँभाल लें। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त भी अधिकांश में नहीं तो बहुतांश में हमारी ही भाँति दासता की यातनाऐं अँग्रेजी शासन की बेड़ियों में बँधा-बँधा भोग रहा है। केवल एक छोटा-सा प्रदेश, जिसे 'आजाद कबीलों का देश' कहते हैं आंशिक रूप से स्वतन्त्र है। इसके अतिरिक्त कुछ भाग अर्ध स्वतन्त्र भी है और शेष पूर्ण पराधीन।

इस प्रकार उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त का विभाजन दो मानदण्डों से हो सकता है, प्रथम प्राकृतिक और दूसरा राजनैतिक। पहले हम प्राकृतिक विभाजन को ही लें।

प्राकृतिक विचार से सीमा प्रान्त के तीन भाग निश्चित होते हैं— (१) हजारा का सिन्धुवाला जिला। (२) स्थाई जिलों (पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेरा इस्माइल खाँ) वाली पहाड़ी सीमा तथा सिन्धु नदी के बीच वाला पहले की अपेक्षा सँकरा भू-भाग। (३) इन जिलों और अफगानिस्तान के मध्य में स्थित दुर्गम पहाड़ी भाग।

१—हजारा जिले का यह पहाड़ी भू-भाग उत्तर-पूर्व की ओर हिमालय की श्रेणियों में चौड़ा तथा क्रमशः कागान की घाटी में जाकर सँकरा हो गया है। यह पर्वत-मालायें दक्षिण की ओर मुड़ गई हैं। इन्हीं श्रेणियों की बनावट से कागान की घाटी का निर्माण होता है। रावलपिंडी के निकट आकर यह पहाड़ी हरे मैदान में परिणत हो जाती है और पिछले पहाड़ी कठोर प्रदेश का सिलसिला समाप्त हो जाता है।

२—दूसरा मैदानी भाग जो सिन्धुनद तथा पहाड़ियों के बीच में है तीन मैदानों में बँट गया है। यह तीन मैदान हैं—(अ) पेशावर, (ब) बन्नू, (स) डेरा इस्माइल खाँ। यह तीनों मैदान एक दूसरे से अलग-अलग हैं और इनका विभक्तिकरण नमक की पहाड़ियों तथा कोहाट की

पर्वत मालाओं ने कर दिया है। पेशावर का अन्त, जैसा कि पूर्वोल्लिखित है, ख़ूब हरा-भरा एक सुन्दर बाग़-सा दीख पड़ता है। इसका कारण है वहाँ सिंचाई की सुविधा। चारों ओर बसन्तकाल तथा पतझड़ के दिनों में हरे-हरे खेतों की क़तारें हवा के साथ लहराती दीख पड़ती हैं। पेशावर जिले के ही समीप, जवाकी (Jawaki) की पहाड़ियों की मध्यस्थता से विभक्त कोहाट का पहाड़ी जिला है जिसके बीच में घाटियाँ बिखरी पड़ी हैं। इनमें जो सबसे बड़ी घाटी है वह जिले की लम्बाई में एक छोर पर सिन्धुनद तटीय कुशलगढ़ से आरम्भ होकर दूसरे छोर पर कुर्रम के समीप थाल नामक स्थान पर आकर समाप्त हो जाती है। पहाड़ी प्रान्त की ऊबड़-खाबड़ ज़मीन होने के कारण कहीं तो यह घाटी सँकरे दर्रे सी हो गई है और पुनः कहीं ख़ूब चौड़ी मैदान के खेतों और चरागाहों से आच्छादित रहती है, जिसमें बीच-बीच में खजूर के पेड़ शून्य भाव से एकाकी खड़े रहते हैं। कुर्रम नदी से सींचा हुआ भाग तो हरा-भरा है परन्तु जहाँ की खेती आकाश वृष्टि पर आशा लगाये बैठी रहती है वहाँ पथरीली भूमि पड़ी हुई है। तात्पर्य यह कि यह प्रदेश निस्सन्देह ख़ूब उर्वर है। जब कभी पानी अच्छा पड़ जाता है फ़सलें दुगनी होकर लहराने लगती हैं।

३—तीसरे और अन्तिम पहाड़ी प्रदेश के, जो अफ़ग़ानिस्तान और स्थाई जिलों के बीच में स्थित है, धुर उत्तर में चित्राल, दीर तथा स्वात की रियासतें हैं। स्वयं चित्राल तो सूखा पहाड़ी देश है, किन्तु चित्राल के नीचे की ओर बाजौर (Bajaur) और दीर (Dir) के घने बसे जंगल हैं, जिनमें ख़ूब लकड़ी मिलती हैं। इसी के समीप पंजकोरा (Panjkora) तथा स्वात (Swat) नदी की उपजाऊ उपत्यकायें हैं। इन रियासतों के तथा खैबर के बीच मोहमंद (Mohmand) की पहाड़ियाँ हैं जो यद्यपि बिल्कुल सूखी बंजर एवं पथरीली हैं तथापि इसकी घाटियों में स्थित बहुत सी भूमि उर्वर भी है। यह पहाड़ी भाग पेशावर की सरकार के अधिकार में है। सुप्रसिद्ध खैबर का दर्रा एक सँकरा मार्ग है जो पेशावर की सीमा में जमरूद (Jamrud) से आरम्भ

होकर पश्चिम की ओर अफ़गानिस्तान राज्य की सीमा पर स्थित लण्डी खाना (Landi Khana) को छूकर समाप्त हो जाता है। एकाध छोटे-मोटे उपजाऊ भू-भाग के अतिरिक्त यह दर्रा प्रायः प्रत्येक स्थान पर बहुत पतला रास्ता ही है। खैबर दर्रे के पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम में अफ़रीदी एवं उरकज़ाइयों (Orakzias) का देश फैला हुआ है। यहाँ से इस प्रान्त की सीमारेखा सफ़ेद कोह (पहाड़) के सहारे चलती है। चिनार के विशाल एवं ऊँचे पेड़ों से आच्छादित, कुर्रम नदी के जल से सिंचित यह प्रदेश पीवर कोतल (Peiwar Kotal) से लगाकर सिकरम (Sikram) की ऊँची चोटियों से होता हुआ कोहाट जिले की मीराबजाई घाटी के दूसरे छोर तक चला जाता है। कुर्रम के दक्षिण में बजीरी की पहाड़ियों का वह सिलसिला फैला हुआ है जो उत्तर में तो टोची की घाटी (Tochi Valley) तथा दक्षिण में बाना के मैदान में जाने वाले सँकरे पहाड़ी मार्ग द्वारा विभक्त है। यद्यपि अधिकांश में यह पहाड़ सूखे और अनुर्वर हैं तथापि कहीं-कहीं हरे-हरे मैदान भी देखने को मिल जाते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त का प्राकृतिक रीति से विभाजन समाप्त हुआ। अब हम उस विभाजन की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो राजनैतिक ढंग एवं कारणों के आधार पर किया गया है।

राजनैतिक मापदण्ड ने सीमा प्रान्त को चार भागों में विभक्त किया गया है। ये चार भाग ब्रिटिश सत्ता के क्रमागत ह्रास रूप दिखाते हैं। ये चार भाग इस प्रकार हैं—

(१) स्थाई जिले।
(२) अर्द्ध स्वतन्त्र प्रदेश।
(३) उत्तर की रियासतें।
(४) स्वतंत्र प्रदेश।

१—स्थाई जिले संख्या में छः हैं। सन् १८४६ ई० के पश्चात् जब पंजाब में पंजाब केशरी महाराजा रणजीतसिंह की सन्तानें राज्य दण्ड

को नहीं सँभाल सकीं तो चतुर कूटनीतिज्ञ अँग्रेजों की बन आई और सैन्यबल, नीतिबल तथा न जाने किन-किन बलों का प्रयोग कर यह प्रदेश अँग्रेजों ने अपने अधिकार में कर लिया। छः स्थाई जिलों का यह भू-भाग अँग्रेजों की उसी विजय का स्मृति चिन्ह है। यह छः जिले क्रमशः पेशावर, मरदान, हजारा, कोहाट, बन्नू, एवं डेरा इस्माइलखाँ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन ज़िलों की भौगोलिक स्थिति पाठक जान चुके हैं। आबादी सन् १९४१ की जनगणना के अनुसार ३० लाख ३८ हजार ६७ है। इन स्थाई ज़िलों का शासन कार्य नियमानुसार गवर्नर के आधीन है।

२—अर्ध स्वतन्त्र प्रदेश अपने नाम के ही अनुसार यद्यपि पूर्ण स्वतन्त्र कबीलों की भाँति स्वतन्त्र नहीं हैं तथापि स्थाई ज़िलों से वे अधिक स्वतंत्र एवं स्वाधीन हैं। इस प्रदेश की स्थिति स्थाई ज़िलों तथा स्वतन्त्र कबीलों के बीच है। इसकी आबादी १३ लाख से १४ लाख है, ऐसा १९३८ के पूर्व की जनगणना से विदित होता है किन्तु १९५१ की जनगणना के अनुसार इस २४ हजार ९८६ वर्गमील क्षेत्रफल के प्रान्त की आबादी १३-१४ लाख से बढ़कर अब २३ लाख ७७ हजार ५९९ हो गई है। इसका राज्यकार्य स्थाई ज़िलों के राजनैतिक विभाग के मातहत डिप्टी कमिश्नरों (Deputy Commissioners) के द्वारा चलता है। ये डिप्टी कमिश्नर प्रान्तीय सरकार नहीं बल्कि राजनैतिक विभाग के प्रति उत्तरदायी हैं।

३—तीसरा भाग रियासतों का है। ये रियासतें हैं—चित्राल, दीर तथा स्वात जो मालकंद की एजेंसी में पड़ती हैं। इनकी आबादी लगभग ९॥ लाख है।

४—अब हम अपने मुख्य प्रदेश पर आते हैं। यही वह भाग है जिसने अँग्रेजों को नाकों चने चबवा दिये हैं। इसलिये यह परमावश्यक है कि इसकी भौगोलिक स्थिति का विचार विस्तारपूर्वक किया जाय। कारण इस भौगोलिक स्थिति की कुञ्जी से हमारे अनेकों संस्कृति, आचार-विचार एवं चरित्र सम्बन्धी प्रश्न हल हो जायेंगे। यहाँ हम इसकी

स्थिति, सीमा, भूमि, तथा संक्षेप में उपज, आबादी आदि की चर्चा करेंगे। बाद के विषयों को संक्षेप में लिखने का कारण यह है कि उनमें से प्रत्येक एक महत्वपूर्ण प्रश्न से जुड़ा है इसलिये उनका विचार उन्हीं प्रश्नों का विचार करते हुये किया जायगा। यहाँ से पाठक अपने मार्ग का चतुष्पथ (चौराहा) समझें, यहाँ आकर उन्हें अब निश्चित करना होगा कि कौन सा मार्ग चला जाय। अँग्रेजी प्रचार ने भारतीय जनता में विशेषकर इन कबीलों के विषय में भारी भ्रान्ति फैला रखी है, ऐसा मेरा अनुमान है। इस भ्रान्ति के फैलाने में उसका (अँग्रेजी सरकार) एक अत्यन्त गूढ़ स्वार्थ था जिसे आज तक (आज तक से हमारा तात्पर्य १६३० से विशेष है) वह पूर्ण करती रही। किन्तु अब समय आ गया है जब भारतीय जनता अज्ञान अन्धकार को चीर कर सत्य को प्रत्यक्ष देख लें। हम यहाँ परिस्थितियाँ पाठकों के सम्मुख रखेंगे तथा पाठक की तर्कना के अनुसार ही सत्यासत्य का निर्णय करेंगे। यहाँ से निश्चित करना होगा कि भविष्य में हमारा सम्बन्ध कबीलों से किस प्रकार का होना है। अस्तु।

आज़ाद कबाईलों के देश की सीमा, स्थिति और भूमि

राजनैतिक दृष्टि से किया गया उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त का यह हमारा चौथा भाग है। यह दो सीमाओं के बीच है। एक ओर 'ट्राइबलबैल्ट' (अर्ध स्वतन्त्र प्रदेश) है, दूसरी ओर डूरेण्ड रेखा। इसकी ज़मीन एक दम पहाड़ी है, तथा पैदावार के नाम पर लगभग कुछ भी नहीं होता। यही समस्या है। चूँकि कुछ भी पैदा नहीं होता इसीलिये आज़ाद कबीलों का जीवन निरा जंगलियों का सा है। आबादी के विचार से देखने पर मालूम होगा कि इसकी आबादी १६३१ की जनगणना के विचार ५ से ५½ लाख तक थी किन्तु निश्चय रूप से इसकी आबादी का निर्णय अभी तक नहीं हो सका। पठान लोग जो यहाँ के वासी हैं, देखने वालों को अपनी मृत्यु से दीखते हैं, उनके प्रदेश में पहुँच सकना, और फिर आबादी की गणना करना उतना ही कठिन

है जितना शेर के दाँत गिनना। इसकी सीमा में तीरा (Tirah) और वज़ीरिस्तान (Waziristan) के देश हैं। इनमें भी वज़ीरिस्तान बड़ा दुर्गम है। वज़ीरिस्तान ही वह वीर भूमि जहाँ के पठानों ने शासक वर्ग के कान खींचे हैं। यही वह देश है जहाँ पर अँग्रेज़ों ने निरन्तर गोला-बारी की है, बम्ब वर्षाये हैं, जालसाज़ी की है। वज़ीरिस्तान अँग्रेज़ों के घोर से घोर अत्याचारों का शिकार रहा है। वाना, मीरनशाह और रमज़क से फैंके हुये जाल भी क्यों इन वज़ीरी लोगों को नहीं झुका सके इसका एक प्रमुख कारण तो वहाँ की पहाड़ी ज़मीन है। चूँकि वज़ीरियों के घर दूर-दूर बने हैं तथा पहाड़ की खोहों से घिरे हैं इसलिये उनके युद्ध जो एक प्रकार के डाके हैं, शिवाजी के गुरिल्ला युद्धों के समान हैं।

असली समस्या इसी वज़ीरिस्तान की है, कदाचित यह वज़ीरी न होते तो सम्भवतः इस पुस्तक की आवश्यकता नहीं पड़ती। मोटे तौर पर इसके क्षेत्रफल का अनुमान ६,००० वर्गमील किया जाता है और स्पष्ट करने के लिये कह दें, इसके पूर्व में बन्नू और डेराइस्माइल खाँ के स्थाई ज़िले हैं, तथा पश्चिम में सुलेमान पहाड़ से घिरा अफ़ग़ानिस्तान का सीमान्त। उत्तर में इसके और कुर्रम की घाटी के बीच एक पहाड़ी सिलसिला है, जिसने वज़ीरिस्तान को कुर्रम की घाटी से अलग कर रखा है। दक्षिण में इसकी टेढ़ी मेढ़ी और अनिश्चित सीमा वही है जो उत्तर में बिलोचिस्तान की। तात्पर्य यह कि उड़ती निगाह से देखने पर वज़ीरिस्तान एक समानान्तर चतुर्भुज-सा दीख पड़ेगा। पूर्व से पश्चिम को ६० मील तथा उत्तर से दक्षिण को १६० मील इसकी अनुमानतः लम्बाई है। इसका पश्चिमी भाग बहुत पथरीला तथा ऊबड़ खाबड़ होने के कारण ही बस्तियाँ बिखरी हुई तथा दूर-दूर हैं। वे स्थान जो समुद्र-तल से ४ से ६ हज़ार तक ऊँचे बसे हैं अधिक घने आबाद हैं।

पूरे वज़ीरिस्तान को चार विभागों में बाँटा जा सकता है, यद्यपि यह ध्यान रहे शासन की दृष्टि से इसको दो हिस्सों में बाँटा गया है। ये दो हिस्से हैं। १—टोची २—वाना, इसी विभाजन को इस प्रकार भी कहा जा सकता है १—उत्तर वज़ीरिस्तान २—दक्षिण वज़ीरिस्तान।

इनकी सँभाल एक रेज़ीडेण्ट (Resident) करता है जो बाहरी मामलों की देखरेख करनेवाले विभाग (External Affairs Department) के अधीन है। जिन चार विभागों में इसको बाँटा जा सकता है वे क्रमशः ये हैं—(१) उत्तर का टोची का प्रदेश, जिसके निवासी उत्मनज़ाई (Utmanzai) हैं। (२) अहमदज़ाइयों (Ahmadzai) का देश जो वज़ीरिस्तान का पूर्वी भाग है। (३) दक्षिण-पश्चिम का पहाड़ी भाग, जहाँ महसूद (Mahsuds) लोग प्रमुख रूप से बसे हैं। (४) और अन्तिम है दक्षिण-पूर्व का वह भू-भाग, जहाँ भिटानी (Bhittanis) लोगों की बस्तियाँ हैं।

आबादी का विचार अन्यत्र किया जायगा। पश्चिमवाला अर्द्धांश एकदम सूखा बंजर भाग है, जहाँ चारों ओर पहाड़ी खोह और खड्ड हैं। हाँ, वाना के आस-पास थोड़ी-बहुत भूमि चरागाहों के रूप में हैं, उसी प्रकार इसी के समीप शावल (Shawal) का घना जङ्गल भी है। उत्तरी भाग में टोची नदी बहती है, उसकी घाटियाँ भी कुछ उत्पन्न करने में सफल हो जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि जहाँ कहीं खेती हो सकती है वज़ीरी लोग ख़ूब पसीना एक कर खेती करते हैं, परन्तु मारवात जैसे रेगिस्तानों का क्या किया जाय? हाँ, फल उत्पादन के लिये यह ज़मीन उपयुक्त है। साधारणतः कहा जा सकता है कि वज़ीरी लोग कृषक एवं गड़रिये हैं। उत्तर-पश्चिम वाले शावल के जङ्गल में हज़ारों प्रकार की जड़ी-बूटियाँ पैदा होती हैं। लोगों का विचार है कि इस बञ्जर प्रदेश में खनिज पदार्थ बहुतायत से हैं, जिनकी खोज तक अभी नहीं की गई। हम अन्त यही कह कर करेंगे कि यह देश उजाड़ है और कुछ पैदा नहीं होता।

संयुक्त प्रदेश

अभी तक पाठकों ने उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के चार भाग देखे, यह विभागीकरण अत्यन्त सूक्ष्म है, किन्तु साधारणतः दो भाग ही कहे जा सकते हैं। इस भेद से पाठक यह न समझें कि इन दोनों प्रकारों में एक सही और दूसरा ग़लत है। सच तो यह है कि दोनों ही ठीक हैं।

यह भी सकारण है। जहाँ हमने प्रान्त के तीन भाग किये वहाँ हमने प्राकृतिक मानदण्ड को माना था, दूसरी जगह जहाँ हमने चार भाग किये वहाँ राजनैतिक दृष्टिकोण से, और जो दो ही विभाग रह जाते हैं वे शासन की दृष्टि से। शासन की दृष्टि से इस प्रान्त के दो ही भाग हो सकते हैं—

(१) स्थाई (शान्त) ज़िले।
(२) एजेन्सियाँ।

१—स्थाई ज़िलों के अन्तर्गत हम लिख चुके हैं कि ६ ज़िले हैं, जिनका शासन एक प्रान्तीय सरकार द्वारा होता है।

२—एजेन्सियों के अन्तर्गत पाँच एजेन्सियाँ हैं। इनके नाम क्रमशः ये हैं—(१) मालकन्द की एजेन्सी। (२) ख़ैबर की एजेन्सी। (३) कुर्रम की एजेन्सी। (४-५) उत्तर तथा दक्षिण वज़ीरिस्तान की एजेन्सियाँ। अर्द्ध स्वतन्त्र और स्वतन्त्र कबाइलों के प्रदेश इन्हीं एजेन्सियों में पड़ते हैं। इन्हीं में से मालकन्द की एजेन्सी में चित्राल, दीर तथा स्वात की रियासतें आती हैं। इन एजेन्सियों की शासन-व्यवस्था सीधे सम्राट् के प्रतिनिधि के हाथों होती है। यह प्रतिनिधि साम्राज्य के पर-राष्ट्रमंत्री की मध्यस्थता से काम करता है।

प्रान्त का दो हिस्सों में किया हुआ यह विभाजन कृत्रिम-सा है। यदि कोई यात्री एक भाग से दूसरे भाग में सीमा पार करके जाय तो देखेगा कि इन दो भागों के निवासियों के रहन-सहन, धर्म, भाषा तथा रीति-रिवाजों में कोई भेद नहीं वे सर्वथा एकसे हैं। हाँ, भेद है तो एक बात का। स्थाई ज़िलों का वासी कदाचित् उसी की तरह का 'सभ्य' और सीधा-सादा 'भला' आदमी है परन्तु उसकी सीमा पार का मनुष्य वीराना सिपाही या शिकारी जैसा तथा स्त्रियाँ अल्हड़ एवं निर्द्वन्द्व हैं। शिकारी की भाँति वह देखेगा कि उसके आस-पास आने-जाने वाले प्रत्येक आदमी के कन्धे पर बन्दूक तथा कन्धे से कमर तक लटकती हुई कारतूसों की पेटी है। बन्दूक का चलाना उनके लिए उसी प्रकार है जैसे हमारे यहाँ गुल्ली-डण्डा खेलना। इस प्रकार यों बा.री रंग-ढंग तथा

जीवन-क्रम के देखने पर इन दोनों के बीच की यह विभाजक रेखा झूठी एवं अर्थहीन मालूम पड़ती है, परन्तु दोनों के हृदयों को छूने पर दीख पड़ेगा कि यह रेखा सच्ची है। कारण दोनों की अन्तर्शक्तियों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है। एक जहाँ निर्द्वन्द आज़ाद एवं योद्धा है दूसरा दब्बू, बनिया तथा ढिलपिल। देखने वाले यात्रियों को इसी प्रकार की उलझन तब पड़ती है जब ब्रिटिश-भारत (British India) से रियासतों में क़दम रखता है। भारत के इन दो हिस्सों के गाँवों को देखकर यात्री हक्का-बक्का सा रह जाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि क्यों मनुष्य अपनी शक्ति को सुरक्षित रखने, बढ़ाने एवं अकेला भोगने के लिए दिन-रात संघर्ष करता रहता है। स्थाई ज़िलों और इन स्वतन्त्र प्रदेशों की स्थिति साँप और न्यौले जैसी जान पड़ती है। दोनों एक दूसरे को मसल देने का भरसक प्रयत्न करते हैं, दाँव-पेच चलाते हैं।

यहाँ यह लिख देना अप्रासङ्गिक न होगा कि मालकन्द एजेन्सी, जिसमें चित्राल, दीर तथा स्वात की रियासतें तथा कुछ स्वतन्त्र प्रदेश पड़ते हैं, शासन-व्यवस्था की दृष्टि से बहुत बुरी हालत में है। ८।। लाख की आबादी [१९३१ की जनगणना के अनुसार] के भाग की शासन-व्यवस्था तो भारत की कुछ रियासतों से भी बुरी एवं हीन है। इसका कारण यह है कि यह भाग पूर्णतः विदेशियों के हाथों में है। राजनैतिक विभाग की मनमानी चलती है तभी तो यह प्रदेश यूरोपीय साहूकारों तथा अफ़सरों के लिए स्वर्गतुल्य है जबकि वहाँ भारतीयों को सीधी मौत है। राष्ट्रीय विचारों के लोगों [भारतीयों] की दर्दनाक तथा करुणा-जनक दशा को सुनकर काँपना पड़ता है।

पाठक देख चुके हैं कि कबीलों का देश मालकंद एजेन्सी के अलावा अन्य एजेन्सियों में फैला है। यद्यपि आज़ादी के नाम पर किसी अंशों में सच्ची आज़ादी थोड़ा सा हिस्सा ही भोगता है परन्तु अन्य भाग भी कमसे कम हमारी भाँति तो ग़ुलाम नहीं है। इसलिये हम अनुरोध करेंगे कि आज़ाद कबीलों के देश से पाठक उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त का, स्थाई ज़िले तथा मालकंद एजेन्सी को छोड़कर पूरा

भाग समझें। हमारा ध्यान उसी की ओर लगा है। साहित्य, संस्कृति, राजनीति, आदि का ज़िक्र करते समय हमारा लक्ष्य इसी संयुक्त प्रदेश की ओर होगा।

इस परिच्छेद में हमने प्रयत्न किया है कि हम अपनी वर्त्तमान समस्या पर आयें उसके पूर्व यह समझा दें कि समस्या है किसके विषय में तथा उसकी स्थिति, सीमा एवं भूमि क्या कैसी है। इस प्रकार पाठक समझ गये होंगे कि वस्तुतः सीधी समस्या वज़ीरिस्तान, तीरा तथा अन्य अर्द्ध स्वतन्त्र आज़ाद् कबीलों के देश की है। यह देश हमारे भारत के उत्तर-पश्चिम छोर पर बसे उस उत्तर-पश्चिम सीमा का अंग है जिसके विषय में लेफ्टीनेंट जनरल सर जार्ज मैकमन ने कहा था—

"जब हम उत्तरी-पच्छिमी सीमा प्रान्त का वर्णन करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में यह बात एकदम आ जाती है कि यही एक ऐसा सीमान्त है जो वस्तुतः अपने नाम को सार्थक करता है।"*

इस प्रकार देश के भौगोलिक वातावरण को यदि ध्यान में रखा जाय तो यह समझने में सहूलियत होगी कि यहाँ के निवासी, जिनका विस्तृत विवरण हम आगे देंगे, कैसे हो सकते हैं। समाप्त करने के पूर्व एक बात कह देना उचित होगा। बार-बार 'आज़ाद् स्वतन्त्र स्वाधीन जैसे विशेषणों को देखकर पाठक इनका अतिरंजित अर्थ न लगालें, उनकी वास्तविक स्वतन्त्रता भी वैसी नहीं है जैसी कल्पना हम लोग यूरोप और अमेरिका का साहित्य पढ़कर, भ्रमण कर, वहाँ के लोगों के संसर्ग में आकर करने लगते हैं। उनकी स्वतंत्रता भी संकुचित है, यह पाठक समय आने पर जान सकेंगे। भौगोलिक चर्चा करते समय हमने जातियों का विशेष विवरण जान-बूझकर छोड़ दिया है, कारण हम इसका ज़िक्र विस्तार से करना चाहते हैं। वहाँ

---

* "It is instructive to our minds when the Frontier of India is mentioned, to think of the 'North-West Frontier' as the only Frontier worthy of the name."

—*Lt. Genl. Sir George Macmunn.*

के निवासियों को समझने ही की तो आवश्यकता है, उसी के लिये तो यह सब बन्धान बाँधा गया है। किन्तु पाठक थोड़ा सब्र करें। जातियों की चर्चा के पूर्व यह आवश्यक है कि इस भूमि का इतिहास भी समझ लिया जाय। इतिहास समझ लेने पर अनेकों महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर मिल सकेगा। यथा क्यों आज सम्पूर्ण प्रान्त में लगभग पूर्णतः पठान बसे हैं, अभी तक क्यों वे 'असभ्य' बने हुये हैं आदि प्रश्नों के उत्तर के लिये प्रान्त की ऐतिहासिक परम्परा समझना आवश्यक है। इसलिये अगले परिच्छेद में हम उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त का इतिहास देंगे।

उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त का संक्षिप्त इतिहास

हिन्दुस्तान का प्रमुख प्रवेश मार्ग खैबर का दर्रा रहा है। भारतवर्ष के इतिहास के निर्माण में खैबर के दर्रे का बहुत बड़ा हाथ रहा है। टोची और गोमल के दर्रे भी यद्यपि महत्त्वपूर्ण हैं तथापि खैबर का दर्रा इन सब से बढ़कर भारत का भाग्यविधाता रहा है। जब कल्पना प्राचीन इतिहास काल में पहुँचती है तो अतीत के विशाल वैभव को देखकर चकित रह जाना पड़ता है और यह सुनकर आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि आज का उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त कल की सी चीज़ है। जब आर्यों, शकों, मुग़लों आदि की साम्राज्य सीमायें हिन्दूकुश के भी पार पहुँच गई तो उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त आज जैसा न रहा। काल के हाथों कभी उन्नति के चरम शिखर पर चढ़ गया तो कभी पतन के गहन गर्त में ऐसा गिर पड़ा कि कहीं ढूँढ़े खोज नहीं मिला। एक समय था जब यह उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र था। अपने धर्म के उस उत्थान काल में क्या कभी किसी बौद्ध श्रमण ने स्वप्न में भी सोचा था कि यही उनका प्यारा देश एक दिन इस्लाम धर्म के दीवानों से पददलित होगा, तथा उनके यह स्तूप, यह स्वर्गीय विहार धूल में मिला दिये जायँगे? आज के काबुल को सुनकर जब हिन्दू

काबुल का होना हम इतिहास में पढ़ते हैं तो आश्चर्य होता है क्या कभी ऐसा भी सम्भव था ? क्या कभी इस काबुल में रक्त ध्वज, गरुड़ ध्वज भी लहराते थे ? किन्तु यह सत्य है। तात्पर्य यह कि एक नहीं अँग्रेजों के आने के पूर्व जितने भी आक्रमण भारतवर्ष पर हुये वे सभी इस ख़ैबर दर्रे से हुये थे और इस प्रकार उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत का महत्व बहुत बढ़ जाता है। यहाँ हम भारत पर ख़ैबर से होने वाले आक्रमणों की चर्चा करेंगे तथा साथ ही ब्रिटिश राज्य में इस सूबे के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन करेंगे। यहाँ हम एक उपमा से अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण कर देना चाहते हैं। भारत पर आक्रमण दो प्रकार के हुये हैं। यह दो प्रकार हम उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त को सोचकर कह रहे हैं। एक प्रकार के आक्रमण वे रहे हैं जिनके आक्रमणकारी उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त को लाँघ कर सीधे दिल्ली, या दक्षिण में जा बसे और इस प्रान्त का मूल्य उनकी दृष्टि में बहुत नहीं रहा। दूसरे प्रकार के आक्रमण वे थे जिनके आक्रमणकारी ज्यादा भीतर की ओर न जाकर सीमा प्रान्त के आस-पास बस गये, अथवा लूटकर अपने देश में लौट कर चले गये। इन दोनों दशाओं में सीमा प्रान्त की स्थिति नदी के बहाव वाली जमीन सी रही है। आक्रमण की नदी का वेग आया और बह गया या आस-पास रुक गया। अन्तिम स्थिति ब्रिटिश राज्य में रही है, और यह सीमान्त रहा है। इस चित्रण का उल्लेख करने के पश्चात् अब हम आगे की पंक्तियों में संक्षिप्त इतिहास लिखते हैं जो प्रसंग वश सीमा प्रान्त के बाहर का भी हो सकता है किन्तु लक्ष्य सीमा प्रान्त है।

भारत के प्रागैतिहासिक युग के विषय में विद्वानों में भारी मतभेद है। एक दल आर्यों को भारत का आदि एवं मूल निवासी मानता है, तथा दूसरा दल आर्यों को भी अन्य आक्रमणकारियों की तरह विदेशी मानता है। दोनों के मतानुसार एक बात निश्चित रूप से ठहरती है कि द्रविड़ लोग आर्यों के पूर्व भारत में बसे हुये थे। इन द्रविड़ों के विषय में फ्रन्टियर एण्ड इट्स गांधी (Frontier & its Gandhi) के लेखक महाशय जे० एस० ब्राइट का मत है—'द्रविड़ लोग सर्व प्रथम आक्रमण

कारी थे।'* इनकी बस्तियों का फैलाव सुलेमान पर्वत तक था। आज भी बिलोचिस्तान और उसके आस-पास रहने वाले द्रविड़ों की भाषायें बोलते हैं। पामीर की दुर्गम भूमि में भी इन लोगों का प्रवेश हो गया था और वे आज डार्डस के रूप में पाये जाते हैं। काफिरिस्तान एक रहस्यमय प्रदेश रहा है। उसके विषय में भी ऐतिहासिकों का मत है कि द्रविड़ों के संगी-साथी वहाँ भी पहुँच गये थे। तात्पर्य यह कि कि उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त और उसके आदि निवासी द्रविड़ थे, जो कुछ अंशों में अभी भी अपनी संस्कृति, साहित्य, कला आदि के छाप डाले बैठे हैं।

यदि दूसरा ही मत माने तो भारत पर दूसरा आक्रमण आर्यों का हुआ था। मध्य एशिया के किस अभाव ने उन्हें अपनी जन्मभूमि से हटने को बाध्य किया, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। मानव की भूख अपरमित है। सन्तोष एक प्राकृतिक नहीं वरन् कृत्रिम गुण है। कदाचित मध्य एशिया की मरु भूमि ने जब उन्हें रोटियों के लिये मुहताज कर दिया तो वे विवश होकर अपने देश को छोड़ यूरोप फारस और भारत की ओर चल पड़े। भूखे मनुष्यों का यह जत्था हिमाच्छादित पहाड़ियों, उपत्यकाओं और मरुस्थलों को पार कर क्रमशः भारत के निकट आने लगा। और अन्त में ख़ैबर दर्रे को पार कर, पंचनद प्रदेश पर विजय यात्रा के चिन्ह छोड़ क्रमशः यह दल गंगा-यमुना के मैदानों में जा पहुँचा। वहाँ से उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार ब्रह्मपुत्र नद से लेकर वंक्षु तट तक ले जा पहुँचाया। शताब्दियों पीछे जब आर्यों का दूसरा दल आया तो अरावली के पहाड़ तक पहुँच प्रकृति के सम्मुख उसे भी सर झुकाना पड़ा और वे वहीं आकर बस गये। एक लम्बा युग बीत गया था। उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में द्रविड़ों के पश्चात अब आर्यों का साम्राज्य था।

---

* "The earliest arrivals were the Dravadians."

—*J. S. Bright M A.*

आर्यों के साम्राज्य खण्ड-खण्ड हो गये थे। अनेक टुकड़ों में विभिक्त होकर आपस की फूट एवं बैर से चूर होकर भारत में वह शक्ति शेष नहीं रह गई थी जिसके बल पर एक दिन वे यज्ञों में बैठकर कहते थे—'कृण्वन्तों विश्वमार्यम।' और तभी मैसीडोनिया में महान् अलेक्षेन्द्र की साम्राज्य, यश और धन लिप्सा भभक उठी। अलक्षेन्द्र के पूर्व भी ५ वीं शताब्दी में फारस सम्राट् डेरियस का आक्रमण हो चुका था। डेरियस ने काबुल से लगाकर सिन्धु तट तक का भू-भाग जीत लिया था। और तभी लगभग दो शताब्दी बाद सिकंदर का आक्रमण भारत को देखना पड़ा। सिकन्दर महान् की यशोलिप्सा राक्षसी थी। सम्पूर्ण सभ्य संसार का आधा भू-भाग उसने अपने विजयी डगों से नाप लिया था। भारत भी उसकी सर्वभक्षी भूख से न बच सका। व हिरात होता हुआ, वंक्षु की ओर से अफगान लाँघता हुआ सिकन्दर सीमान्त पर आ गया और इस प्रदेश में अपने साम्राज्य का ध्वज गाड़ दिया। किन्तु ध्वज गाड़ने के पूर्व सिकन्दर को कितना पानी पीना पड़ा था इसका कुछ अन्दाज सम्भव है उसकी सन्तानें, यदि शेष हों, जानती होंगी। सिकन्दर खैबर दर्रे से नहीं घुसा था। उस समय खैबर के दर्रे पर उन पहाड़ी वीरोंका अधिकार था जिन्हें ग्रीस वाले अपनी विचित्र भाषा में 'अपरोटे' (Aparoetae) कहते हैं और आज जिन्हें हम अफरीदी कहकर पुकारते हैं। जब सिकन्दर का इस पहाड़ी जाति से सामना पड़ा तो उसकी सेना 'चूरों' की तरह कुचल डाली गई थी। अन्त में हार मानकर सिकन्दर ने काबुल नदी को जलालाबाद के निकट पार किया और कोनार की घाटी से होता हुआ आधुनिक मालकंद एजेन्सी में स्थित स्वात जो यूसुफजाइयों का प्रदेश था, में घुसा। यहाँ से बड़ी कठिनाइयों का सामना करता हुआ सिकन्दर सिन्धु नदी की ओर बढ़ा और अम्ब के समीप सिन्धु को पार किया। उसके पश्चात् का इतिहास जगत प्रसिद्ध है। सिकन्दर के सैनिकों ने अपनी वीरता का प्रमाण कठोर शपथ लेकर दिया। और शपथ थी कदाचित् विश्व विजयी बनने की। तभी मदान्ध अलक्षेन्द्र महात्मा दाण्डायन के समीप कदाचित

आशीर्वाद प्राप्ति के लिये पहुँचा किन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्मुख उसका तेज हत हो गया। और झेलम के निकट महावीर स्वाभिमानी एवं निडर राजा पोरस से उसका विश्व विश्रुत युद्ध हुआ। कहा जाता है कि सिकन्दर जीता था किन्तु क्या उसकी विजय हार से हीन न थी? यहाँ से चार क़दम ही आगे सिकन्दर सतलज तक गया था कि उसके सैनिकों ने भारत के लोहे की धार से कटकर हिम्मत हार दी और सिकन्दर को लौटना पड़ा। बलूचिस्तान के शैतानी मार्ग से होकर सिकन्दर बैबीलोन की ओर चला, किन्तु मार्ग में ही अपने सैनिकों के सम्मुख सन् ३२५ ई० पूर्व प्राण विसर्जन कर दिया।

इस आक्रमण का भारतवर्ष पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। सिकन्दर अपने साथ नई सभ्यता, नया धर्म, एवं नूतन विज्ञान लाया था, उसका प्रभाव उत्तर पश्चिम-सीमा प्रान्त पर ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत पर पड़ा। सिकन्दर अपने साथ जो विद्वान्, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ लाया था, वे जब अपने भारतीय सहजातियों से मिले तो एक नवीन संस्कृति का उदय हुआ जो दोनों के संयुक्त नाम से प्रसिद्ध है। उनके साथ मूर्ति-निर्माण, एवं वास्तुकला या भवन-निर्माण-कला आई थी, उसका प्रत्यक्ष प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।

उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त पर जो दूसरा नया प्रकाश आया उसका दीप बाहर नहीं भारत के भीतर ही था। यह दीप था महान् सम्राट प्रियदर्शी अशोक। अशोक ने अपने अहिंसा से विजय किये साम्राज्य की सीमा दक्षिण में कृष्णा नदी, उत्तर में बेक्टीरिया के सीमांत तक फैला रखी थी। यह २६७ ई० पूर्व का समय था। यह वह समय था जब बौद्ध धर्म अपने पूर्ण उत्थान पर था। सीमा प्रान्त और अफगानिस्तान बौद्ध धर्म के बड़े बड़े केन्द्रस्थल थे। सिन्धु से लेकर हिन्दुकुश के पहाड़ तक सहस्रों बौद्ध खण्डहर पड़े हुये हैं। ये खण्डहर बौद्धस्तूप बिहारों और समाधि-स्थलों के है। स्वात और कुनार की घाटियाँ इतिहास के जिज्ञासुओं को बहुत बड़ा आकर्षण पसारे पड़ी है। इन भवनों में ग्रीक वालों की कला का भी स्पष्ट प्रभाव लक्षित है।

तत्कालीन धार्मिक सरकारों ने, जिसमें सम्राट कनिष्क की सरकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, इन भवनों के निर्माताओं को सहायता दी तथा उनका उत्साहवर्द्धन किया।

उसी समय तातारी दुर्धर्ष योद्धाओं के आक्रमण, जो पहले से शुरू हो गये थे, बहुत जोर-शोर के साथ बढ़ने लगे। तातारियों का प्रवेश एक क्रान्ति का वाहक सिद्ध हुआ है। तातारियों का देश था सूखा, अनुर्वर गोबी का रेगिस्तान। खोतान के शहरों में पेट पर हाथ धरे खड़े इन भुक्खड़ों ने जब भारत की शस्य श्यामला वसुन्धरा देखी तो उनके मुँह से लार टपकने लगी। क्रमशः दल के दल तातारी भारत की भूमि में उतरने लगे। सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्तमें तातारियों की बस्तियाँ फैल गईं, पेशावर की घाटी में भी तातारियों की यह उन्मत्त लहरें जा टकरायीं। परन्तु उनका प्रभाव विध्वंसक था, जहाँ-जहाँ इनके विनाशक पाँव पड़े, सभ्यता, संस्कृति तथा 'धर्म' धरती में समा गये और तब से क्या कभी बाहर निकले हैं ? तातारी हत्यारे केन (Cain) के वंशज हैं और अपनी परम्परा के अनुसार ही उनका इतिहास ख़ून से रँगा पड़ा है। एशिया में तातारियों के चार साम्राज्य थे। इन्हीं तातारियों ने बौद्ध मंदिरों, स्तूपों एवं बिहारों को खोद डाला, तभी तो आज उनके खण्डहर मात्र शेष हैं।

पाँचवीं सदी में जब फाह्यान तथा उसके दो सदी बाद जब ह्वेनसांग हिन्दुस्तान की यात्रा करने आये तो उन्हें उनकी कल्पना के विपरीत ये खण्डहर मात्र मिले। ये यात्री विशेष कर कनिष्क स्तूप, जो आधुनिक पेशावर के बाहर हैं, के दर्शन को बहुत उत्सुक थे। बहुत समय से यह स्तूप अज्ञात था, परन्तु भारतीय पुरातत्व बिभाग के कार्यकर्त्ता डा० स्पूनर ने अब इसे पूरी तरह खोज निकाला है। स्तूप के साथ ही भस्म और पात्र भी मिला है। कदाचित इसी गहन भेदी बौद्ध प्रभाव को देखकर सर जार्ज मैकमन ने कहा था—

* "जब हम उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त के विषय में विचार करें तो

---

* "In thinking of the North-West Frontier of India we

इसकी कल्पना एक ऐसे प्रदेश के रूप में करनी चाहिये जो अपार संपत्ति तथा अगणित बौद्ध एवं ग्रीक अवशेष खण्डहरों से भरा पड़ा है जिनकी खोज आज तक नहीं हो सकी है। (आज के रूप को देखकर) इसे सूखे हिमाच्छादित अथवा धूप से जले पहाड़ों का देश जो केवल जोशीले मुसलमानों से बसा है न समझ लेना चाहिये। हमें पद्मासन से बैठे तपस्वी साधुओं और दयालु दार्शनिकों की कल्पना करनी चाहिये, अपने हृष्ट पुष्ट, गोल आँखों वाले शिष्यों को शिक्षा अथवा उपदेश देते।"

यही युग था जब भारत का भाग्य सूर्य अपनी चरम सीमा पर चढ़ गया था। तक्षशिला और पेशावर के नगर अपने अतुलित वैभव को लेकर अभिमान से मस्तक ऊँचा उठाये खड़े रहते थे। तभी उन्होंने कभी (इधर की बात हम नहीं कहते) किसी शक्ति को मस्तक नहीं झुकाया। इतिहास के पंडितों का मत है कि इस समय सिन्धु के दोनों ओर बहुत से ग्रीक बेक्टीरिया के सम्मिलित राज्य चल रहे थे। इन राज्यों के ढेरों अवशेष सिक्कों आदि के रूप में आज भी मिलते हैं। शिलाओं पर खुदे कुछ चित्र अत्यन्त सुन्दर हैं। ये राज्य लगभग दो शताब्दी तक रहे।

तात्पर्य यह कि ईसा की सातवीं शताब्दी तक तातारी और आर्य (हिन्दू और बौद्ध) निरंतर अपने-अपने प्रभुत्व स्थापन के लिये लड़ते रहे। कभी एक जीत जाता तो कभी दूसरा। किन्तु सीमा-प्रान्त का यह स्वर्ण युग आज तक अन्धकार में है, भविष्य के इतिहास जिज्ञासु इसकी शोध करेंगे।

---

must think of it as a country full of remains of the ancient Way, presenting countless unexplored sites, and an immense wealth of Buddhist as well as Greek remains and not merely as the bare snow-swept or sun-scorched hills, inhabited by uncouth fanatical Muslim tribes. We must picture to ourselves cross-legged ascetics and kindly philosophers sitting in the monasteries and shrines on the hill-side, telling their beads and teaching fat, round-eyed children."

—*Sir George Macmunn*.

सिकन्दर महान् का व्यक्तित्व महान् था, उसकी कीर्त्तिध्वजा ऊँची थी, इसीलिये तो इतिहासकार साधारणतः उसके गुणगान में अनेकों को भुला देते हैं। भारतवर्ष अपराजेय था, सिकन्दर की क्या हस्ती जो वह हिन्दुस्तान की सीमा पर पैर भी मार सकता। उसकी विजय का सच्चा श्रेय उसे नहीं उसके सहायक रज्जुलों को ही मिलना चाहिये। ये रज्जुले थे जाट लोग, जिन्हें प्राचीन इतिहास में जेटे (Getai) कहते हैं। राजा पोरस की पराजय का कारण सिकन्दर की वीरता नहीं उसी के सहायकों की फूट थी। तभी जे० एस० ब्राइट का मत है—"सिकन्दर की अपराजयता मात्र कल्पना है। पोरस आक्रमणकारियों से नहीं वरन् धोखेबाजों और विश्वासघातियों से हारा था।*

जाट भी मूलतः मध्य एशिया के वासी थे जो शरण पाने के लिये भारत में आये थे। जोब (Zhob) के दर्रे से होकर ये सिन्धु नद तक आये। यद्यपि आरम्भ में ये आर्यों को धकेल कर ही जमे थे, परन्तु बाद को आर्यों से इतने हिल-मिल गये कि आज आदिम जाटों की शुद्ध सन्तान पाना कठिन ही नहीं असम्भव है। आज जिन्हें हम सिक्ख कह कर पुकारते हैं, उनका अधिकांश जाटों से मिलकर बना है। जाटों का भी एक अलग इतिहास है, वे भी आज के सीमा प्रान्तवासियों की भाँति निर्भीक एवं दुस्साहसपूर्ण रहे हैं।

सिकन्दर मर गया, किन्तु उसका राज्य बलख में बहुत दिनों तक उसके उत्तराधिकारी (जो पुत्र नहीं सेनापति आदि थे) भोगते रहे। ये राज्य आर्य सभ्यता के बड़े भारी पोषक थे, तातारियों के आक्रमण के विरुद्ध इन राज्यों ने बड़ा काम किया था, किन्तु वंक्षु के तट पर जब सिथियनों का दल सागर की तरह उफान लेने लगा तो यह राज्य उस शक्ति के सम्मुख नहीं ठहर सके। ये आर्य सभ्यता में रँगे ग्रीकवासी धकेल कर उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में पहुँचा दिये गये।

---

* "Hence invincibility of Alexander is a myth. Porus was defeated by the traitors rather than the invader."

J. S. Bright.

इस धक्के का भारी महत्त्व है। ग्रीक सभ्यता का सच्चा प्रवेश उसी दिन हुआ जब इन आर्य ग्रीकों (Aryanized Greeks) ने सीमा प्रान्त की भूमि पर क़दम रक्खा। निस्सन्देह किसी भी जाति की सच्ची सांस्कृतिक विजय तभी हो सकती है जब वह जाति अपनी विजित जाति से हिलमिलकर उन्हीं के जीवन में घुल-मिल जाय। ब्रिटिश जाति की हार का कारण तो यही है, तभी तो वे आज तक विदेशी बने हुये हैं, और उन्हें निकालने की आवश्यकता है।

इन ग्रीक राजाओं के अवशेष सिक्कों एवं चौकियों के रूप में अब भी मिलते हैं। ये चौकियाँ भी आज की तरह पहाड़ी डाकुओं से रक्षा के लिये बनाई गई थीं। किन्तु मुसलमानों की धर्म पिपासा ने इन्हें तोड़-तोड़ कर मिस्मार कर दिया है। इन ग्रीकों का राज्य बहुत दिनों तक चला, परन्तु बाद में वे भी सर्वथा भारतीय हो गये। तक्षशिला और अन्य स्थानों के बौद्ध निर्माण में ग्रीक कला के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

यहाँ तक उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त और भारत में एक समानता तथा सजातीयता थी। अनेक धर्मों के धर्मावलम्बी होते हुए भी मूल में सब आर्य थे, यदि हिन्दू कहने में लोगों को कोई आपत्ति हो। किन्तु सातवीं शताब्दी भारतीय इतिहास में सर्वथा नवीन युग की देवदूती थी। अरब में इसलाम धर्म का जन्म हुआ तो अरब के असभ्य, जङ्गली वासी नये प्रकाश की शोभा से चमत्कृत हो गये। तभी तो देवदूत मुहम्मद ने थोड़े से जीवनकाल में ही सम्पूर्ण अरब को इस्लाम की पवित्र छाया में ला बैठाया। रूढ़िग्रस्त, युद्धमग्न, खूँखार जाति विद्वान्, विचारक, वैज्ञानिक एवं विश्व विजेता बन गई। 'इसलाम का अर्थ है - ईश्वरेच्छा के आगे आत्म-समर्पण' (The submission to the will of God) इसलाम का सन्देश था ईश्वर और पुरुष की एकता, तथा मनुष्य जाति की समानता। इस नई आग से द्विगुणित हो इसलाम के दीवाने, इसलाम का सन्देश और देशों में ले जाने की लालसा से निकल पड़े। किन्तु विलास और ख़ून, कामिनी और कांचन उनके शिराओं में चिर अतृप्त प्यास फूँक चुके थे। उनके हरम सौंदर्य के क़ैदख़ाने बन गये।

इसलाम धर्म में वह कठोर नियंत्रण नहीं जो हिन्दू धर्म में है। और जब अरब से इनकी तलवारें निकलीं तो पूर्व के रोम (दिल्ली) और ईरान की गद्दियाँ उलट गईं, सम्राट् या तो मुसलमान हो गये या धूल चाटते-चाटते मर गये। सन् ६४४ ई० में मुसलमान जाति ने काबुल पर अधिकार जमा लिया था, इसके पूर्व ही स्पेन, फ़ारस और अफ्रीका पर इसलाम धर्म के अनुयायियों की सत्ता स्थापित हो चुकी थी। प्रत्यक्ष में इसलाम धर्म को फैलाने की लालसा तथा परोक्ष में भारत की अपार सम्पत्ति और सुन्दरता का भोग करने की लालसा को लेकर सर्व प्रथम सन् ७११ ई० में मुहम्मद बीन क़ासिम का आक्रमण हुआ। परिणाम मनमाना हुआ। तलवार की धार पर पैनाकर चलाया हुआ धर्म शीघ्र ही सारे उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में फैल गया। हिन्दू सीमा प्रान्त का तो कहीं नाम भी शेष नहीं रहा। जिस समय मुसलमान भारत में घुसे थे उस समय के किसी राजा बीज़ और तील की गद्दी के होने का ज़िक्र आता है।

अगले आक्रमणों को लिखने के पूर्व हम इस आक्रमण के प्रति अफ़रीदियों तथा वज़ीरियों का रुख़ लिख देना उचित समझते हैं। व्राइट महोदय अफ़रीदियों की मनोवृत्ति को लार्ड बाइरन की इस पंक्ति से स्पष्ट करते हैं। उनके मत से एक अफ़रीदी कहेगा—"मैं विरोध के लिये हूँ" (I am for the opposition) इस ग़ैरक़ानूनी जाति का विरोध हमेशा ही क़ानूनी शासन के लिये रहा है। उन्हें इससे मतलब नहीं कि यह सरकार हिन्दुओं की है अथवा मुसलमानों की और चाहे अँग्रेज़ों की ही क्यों न हो। कोई भी आक्रमणकारी जो स्थापित सरकार के विरुद्ध युद्ध के लिये आता है, बड़ी खुशी से अफ़रीदियों की बन्दूकें माँग सकता है। किन्तु यह सहायता तभी तक है, जब तक वह जाति स्वयं कोई सरकार स्थापना का दुष्कृत्य न कर डाले। ऐसा होने पर यह वज़ीरी और अफ़रीदी अपने इन्हीं सहायक बन्धुओं का विरोध करने के लिये, बन्दूक कन्धे पर रख मैदान में आ खड़ा होगा। परन्तु इसका अर्थ पाठक कुछ का कुछ न लगा लें। अफ़रीदियों एवं वज़ीरियों

का विरोध निरंकुश एक सत्तात्मक राज्य से है। प्रजातंत्र राज्य के लिये अफ़रीदी मित्र ही सिद्ध होंगे, इसका प्रमाण हमें उनके सीमान्त गाँधी के प्रति किये व्यवहार से मिलता है। सीमान्त गाँधी सीमा प्रान्त में लोकप्रिय हैं (वजीरी और अफ़रीदी भी उस लोक में आ जाते हैं), यह कहने की अधिक आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

आक्रमणकारियों में दूसरा चमकता धूमकेतु सुबुक्तगीन था। बलख़ और गज़नी का सम्राट् यह तुर्की ग़ुलाम पहली बार ९७७ ई० में भारत पर आकर गिरा। सीमान्त के तत्कालीन हिन्दू राजा के साथ एक नर्तकी ने, जिसकी 'खंजरी कोठी' आज भी खड़ी है, विश्वासघात किया। लोभ में आकर उसने सुबुक्तगीन के लिये अपने देश से वह विश्वासघात किया जिसका परिणाम यह देश तब से आज तक भोग रहा है और अभी न जाने कब तक भोगेगा। पेशावर से आगे चलने पर उसे राजा जयपाल की सेना से लोहा लेना पड़ा, परन्तु हिन्दू हार गये और सिन्धु के पश्चिम का सम्पूर्ण भाग, उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त पूरी तरह मुसलमानों के हाथों में पड़ गया। सीमा प्रान्त के तत्कालीन निवासियों ने भी इस्लाम धर्म की छाया में जाकर आक्रमणकारियों का साथ दिया था। इसके पश्चात् तो आक्रमणों का ताँता ही बँध गया, जिसमें बहाना था, पवित्र धर्म का प्रचार।

और शीघ्र ही उस जगत् प्रसिद्ध लोभी महमूद ग़ज़नवी का आक्रमण हुआ, जिसे कम से कम फ़िरदौसी की आत्मा तो कभी क्षमा नहीं कर सकेगी। महमूद के शिकार थे हिन्दू मंदिर, उनकी संपत्ति, हिन्दुस्तान की खूबसूरत लड़कियाँ और लड़के। लड़कियाँ और लड़के दोनों ही हरम में रखे गये। एक बेदाम बना कर दूसरे ग़ुलाम। सोमनाथ के मंदिर को ध्वंस करने का शाप इसी स्वर्ण पिपासु ग़ज़नवी पर है।

मुहम्मद ग़ोरी की प्यास केवल धन से शान्त होने वाली न थी। धन के साथ उसे साम्राज्य भी चाहिये था। उसके मार्ग को रोकने की भी अब शक्ति किसी में न रह गई थी। पहली मुसलमानी राजधानी

लाहौर बनी और फिर शीघ्र ही पेशावर, लाहौर और दिल्ली मुसलिम साम्राज्य के अन्तर्गत आ गईं। शताब्दियों तक हिन्दुओं को पवित्र इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने के लिये तलवारों पर नचाया गया या बकरों की तरह काटा गया।

हिन्दुस्तान में आकर इस अफ़ग़ान राज्य ने बहुत शक्ति सम्पन्न कर ली यहाँ तक कि स्वयं अफ़ग़ानिस्तान हिन्दुस्तान राज्य का पूर्वी भाग बन गया। इसी समय संसार के वक्षस्थल पर बाबर नाम का महान् विजेता आकर खड़ा हुआ तो बड़ी-बड़ी शक्तियों को उसके सामने मुँह की खानी पड़ी। बाबर चग़ताई वंश का तुर्की था। उसकी माँ चंगेज खाँ के वंश की थी तथा वह स्वयं तैमूर लंग की छठी पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था। बाबर का पिता फ़रग़ाना का राजा था, किन्तु बाबर को यह पैतृक राज्य भोग सुख से न मिल सका। सन् १५०४ में पहली बार उसके मस्तिष्क में हिन्दुस्तान जीतने का विचार आया और इसी विचार की प्रेरणा से सन् १५१६ में उसने पहला आक्रमण किया। वह लाहौर तक आ गया था किन्तु घर की हालत ने उसे लौटने के लिये मजबूर कर दिया। अन्त में १५ दिसम्बर १५२५ में उसने सिन्धु को पार किया, इब्राहीम लोदी को हराया और मुग़ल साम्राज्य की महत्वपूर्ण नींव डाली। जब तक मुग़ल सम्राटों में राज्य दण्ड सँभालने की शक्ति रही हिन्दुस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त एक साम्राज्य के अंतर्गत बने रहे परन्तु उनकी शक्ति के ह्रास के साथ ही साम्राज्य के भी जोड़ टूट गये। यहाँ तक कि उत्तर-पश्चिम का यह सीमा प्रान्त उनके हाथों से निकल गया और उनके अलग-अलग छोटे-छोटे राज्य बन गये। इस पतन का आरम्भ आलमगीर सम्राट् औरंगजेब के पश्चात् हुआ।

सन् १८५७ में मुग़ल साम्राज्य का अन्त होने के पूर्व भी कुछ हुआ जिसका लिख देना आवश्यक है। फ़ारस की राजगद्दी पर नादिर नाम का एक गड़रिये का लड़का आ बैठा, और ख़ूब मजबूती से बैठा। यही जगत् कुप्रसिद्ध हत्यारा नादिरशाह था। नादिरशाह मद से लाल-लाल आँखें

चढ़ाकर अफ़ग़ानिस्तान होता हुआ दिल्ली पर चढ़ दौड़ा। इतिहासकारों का मत है कि नादिरशाह देहली में बहुत थोड़े दिनों तक ही रहा था। किन्तु उसका यह थोड़े दिन का ठहरना ही तो गजब ढा गया। इन थोड़े ही दिनों में तो उसने दिल्ली की सड़कें, गलियाँ, मस्जिदें और क़ब्रें ख़ून से भर दीं थी। संसार ने 'क़त्ले आम' का शब्द शायद उसी से सीखा था। कहते हैं जब नादिर चलने लगा तो तत्कालीन मुग़ल सम्राट् मुहम्मदशाह की दाढ़ी पकड़ कर खींची और मियाँ से डण्डे के बल मुग़ल साम्राज्य का पश्चिमी भाग ले लिया। इसका अर्थ था कि अफ़गानिस्तान, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त, सिन्धु के पार पंजाब का भाग, सिन्ध और मुलतान नादिरशाह के फ़ारसी राज्य में जा मिले। किन्तु सन् १७४७ में इसी हत्यारे नादिर की हत्या होने पर उसका यह साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

नादिर की मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही, उसी के दरबार का एक अफ़गानी रईस, जिसे संसार अहमद खाँ अब्दाली के नाम से जानता है, शक्तिशाली हो गया। अफ़गान राज्य स्थापन का यह एक अभूतपूर्व अवसर था, कारण इसके पूर्व कभी अफ़गान राज्य हिन्दुस्तान से स्वतन्त्र होकर नहीं बना था। अहमदखाँ ने अवसर से उचित लाभ उठाया। वह सादोजाई (Sadozai) था और अफ़गानों की वह परम्परा उसके नाम के पीछे 'दुर्रानी' कहलाई। उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त अब अफ़ग़ान राज्य का एक हिस्सा बन गया था, और उसके साथ थे सिन्ध, मुलतान और काश्मीर। इसी समय दक्षिण के मरहठे जोर बाँध रहे थे, वे क्रमशः दिल्ली की गद्दी पर चढ़ते आ रहे थे। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि एक बार पुनः भारत का साम्राज्य हिन्दुओं के हाथों में आ जायगा। मरहठों का उत्कर्ष अहमदशाह के लिये भारी आपत्ति थी। इसलिये उनका बढ़ता वेग रोकने के लिये वह दक्षिण की ओर चला। सन् १७६१ में पानीपत का युद्ध लड़ा गया जिसमें, यद्यपि मरहठे वीरता से लड़े, परन्तु कुशल सेनापति के अभाव में पराजित हो गये। पानीपत के युद्ध ने भारत के इतिहास में आमूल परिवर्त्तन कर दिया, नये भावी युग की

दिशा बदल दी। पानीपत के युद्ध की मरहठों की हार हमारे स्वातन्त्र्य के युद्ध की हार थी। एक लम्बे युग तक के लिये तो यह असम्भव हो गया कि भारत में भारतीयों का राज्य, भारतीयों के लिये, भारतीयों के द्वारा हो सके। यदि मरहठे जीत जाते तो निस्सन्देह कुछ आशा थी कि भारत में प्रजातन्त्र की स्थापना हो सकती। अहमदशाह ने एक बार नहीं दो बार नहीं पूरे दस बार आक्रमण किया और हमेशा ही ख़ून बहा कर सोना लूट कर चलता बना। परिणाम यह हुआ कि यह सोने की चिड़िया एक लम्बे अर्से के लिये अपनी ग़ुलामी के पिंजड़े में कस कर बन्द कर दी गई।

दुर्रानी जाति का राज्य उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में स्थापित हो गया और तब तक चला जब तक गुरु गोविन्द की पाँच प्रतिज्ञायें और मर मिटने का अरमान लेकर सिक्ख सेना न उठी। दुर्रानी सम्राट दिल्ली की गद्दी पर अन्धे सम्राट् शाह आलम को छोड़ गया था। किन्तु जब क्रमशः उसकी शक्ति भी डूबने लगी तथा बार बार के आक्रमणों के पश्चात् सन् १७७३ में वह मर गया तो उसके उत्तराधिकारी बहुत दिनों तक उसके राज्य को न सँभाल सके। तभी पंजाब में सदियों के बाद पहला शुद्ध भारतीय महाराजा उठा जिसने ख़ैबर के दर्रे पर अपनी सेना जा बिठाई तथा विदेशियों का स्वच्छन्द आवागमन रोक दिया। यह थे पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह। ख़ैबर के दर्रे पर अधिकार जमाते हुये रणजीतसिंह का परम वीर सेनानी हरीसिंह नलवा अफ़ग़ानिस्तान चढ़ दौड़ा। बेचारे अफ़ग़ानियों और सिक्खों का भी क्या मुक़ाबला। एक तो योंही अफ़ग़ान सम्राट् काँप रहे थे, उसपर तुर्रा यह कि कुछ सरदारों ने दरबार में अपनी शक्ति बढ़ा ली और परिणामस्वरूप जब सिक्खों का आक्रमण हुआ तो अफ़ग़ानी घुटने टेक गये। सन् १८२० ई० तक अफ़ग़ानिस्तान और सीमा प्रान्त जीत लिया गया। कैसा था उस नलवे का डर कि उसका नाम सुनते ही अफ़ग़ानी बिगड़ैल घोड़े और रोते बच्चे शान्त हो जाते थे? इधर पहाड़ियों (सीमा प्रान्त की) की भी शक्ति मारी गई थी, जिसके बल पर उन्होंने सम्राट औरंग-

जेब तक का विरोध किया था, तथा मुग़लों को पकड़ कर बाध्य कर दिया कि आइन्दा वे उनकी आज़ादी में ख़लल न डालें और सचमुच हुआ भी ऐसा ही। ये पहाड़ी अपनी मनमानी करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिये गये थे। किन्तु इसका मूल कारण क्या था? मूल कारण वही था जो सब कार्यों की सफलता का होता है, अर्थात् एकता। परन्तु अब वह शक्ति टूट गई थी। ये जातियाँ एक होने के बजाय आपस ही में लड़-कटकर मिट रही थीं। नतीजा यह हुआ कि सिक्खों की बन आई और एक-एक कर वे सभी दल कुचल डाले गये, जो मिलकर एक अच्छी रक्षात्मक सेना न बना सके।

सिक्खों के आक्रमण सन् १८१८ ई० में आरम्भ हुये। इसी वर्ष डेरा इस्माइल खाँ पर अधिकार कर लिया। पूरे पाँच वर्ष भी नहीं हुये थे कि मारवात का मैदान भी सिक्खों ने घर पकड़ा। पठान जाति को हराये दो वर्ष हुये थे कि १८३४ ई० में सेनापति हरीसिंह नलवा चढ़ दौड़ा और पेशावर का क़िला अपने अधिकार में कर लिया, उसी दिन से अफ़ग़ान राज्य का खात्मा हो गया। जब सन् १८३६ में डेरा नवाब के शासक को पकड़ कर राज्यच्युत कर दिया गया तो उसकी जगह पर एक सिक्ख 'कारदार' को बैठा दिया गया। उसी समय बन्नू का क़िला बनाया गया। परन्तु बड़ा घोर युद्ध हुआ। तब जाकर कहीं राजा रणजीतसिंह के किराये के सरदार हरबर्ट एडवर्ड्स ने बन्नू को जीत कर लाहौर दरबार के सम्मुख ला झुकाया। महाराजा रणजीतसिंह उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के भी महाराजा हो गये। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि पहाड़ी जाति मर गई। नहीं। यद्यपि पहाड़ियों के देश में जगह जगह पर फ़ौजी चौकियाँ स्थापित कर दी गईं, तथापि कर वसूली के लिये प्रायः ही सिक्खों को अपनी सेना भेजनी पड़ती थी।

परन्तु महाराजा रणजीतसिंह की विजय और उनका रोबदाब उन्हीं के व्यक्तित्व के साथ लुप्त हो गया। उनके उत्तराधिकारियों में इतनी शक्ति न थी, कि ब्रिटिश कूटनीति का मुक़ाबला कर सकें।

शाहसुजा जब काबुल से भगा दिया गया तो वह पहले तो लाहौर दरबार में आकर शरणागत हुआ, बाद में दिल्ली दरबार में, जो अब तक ब्रिटिश शासकों की राजधानी बन चुका था। उसी समय शिमला के बाग में 'त्रिदल-सन्धि' हुई, जिसमें शाहसुजा को उसका खोया राज्य वापिस दिलाने का वचन दिया गया था। यहीं से अफ़गान प्रथम और द्वितीय युद्धों का श्रीगणेश हुआ। मज़े के साथ रास्ते के देशों की बहार लूटती हुई शाह और ब्रिटेन की सम्मिलित सेना काबुल की ओर चली। किन्तु सिक्ख दरबार ने इस मित्र सेना को अपने देश उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में होकर नहीं जाने दिया। सिक्ख दरबार की दूरदर्शिता की यह एक महती मिसाल है। वर्षों से पाई सीमा प्रान्त की शान्ति को वह नहीं छेड़ना चाहता था। फलों से लदे, मधु पीते ये सैनिक कान्धार पहुँचे तथा काबुल को जीतने मे तो थोड़ी भी देर न हुई। काबुल की ढिलपिल सेना, सिन्धु तट के इन सैनिकों के सम्मुख कब तक ठहरती, शाहसुजा फिर गद्दी नसीन हुआ, कोई बहुत खुशियाँ वहीं मनाई गई। दोस्त मुहम्मद क़ैदी बनाकर कलकत्ता भेज दिया। १८४० बीता १८४१ आया। बड़ा दिन था, अफगानों का खून उबल पड़ा, आग भड़क उठी। भारतीय और ब्रिटिश जितनी भी सेना थी, सबका ख़ूब मसल मसल कर खून किया गया। और यह ठीक ही हुआ। एक सर्जन ब्राईडन बच रहा था, शायद इसलिये कि अपने पाप परिणाम की ख़बर तो लेजाय। मरते से एक टट्टू पर चढ़कर वह जलालाबाद पहुँचा। यही पहली घटना थी, जिसके धक्के से आहत होकर ब्रिटिश सत्ता ने उत्तर-पश्चिम प्रान्त पर अपनी पकड़ और भी दृढ़ करने की सोची। उस समय सिक्खों की ओर से पेशावर में जनरल अवीतबाइल (Avitabile) शासन करता था, उसी की आज्ञा से शहर के कोने कोने में फाँसी घर बनाये गये जिसमें किसी भी पहाड़ी को पकड़ कर यमपुर यात्राके लिये बाध्य कर दिया जाता था। इस प्रकार शीघ्र ही पंजाब और सीमा प्रान्त ब्रिटिश राज्याधिकार में आ गये। जान निकोलन तथा हरबर्ट एडवर्ड्स ने डेराजाट में डेरा

डाला। जार्ज लारेंस और रीनेल टेलर ने पेशावर में दखल जमाया। एबट के अधिकार में हजारा पड़ा तथा हरबर्ट के हाथों में अटक। लारेंसपुर और एबटाबाद तत्सम्बन्धी अफसरों के स्मृति चिन्ह हैं। तब से ब्रिटिश शासक विदेशी भय से लगभग मुक्त हैं परन्तु जब 1919 ई० में अमानुल्ला ने हाथ पैर चलाए तो उन्हें भी शान्त कर दिया गया।

चूँकि अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के भाग्यों का गठबन्धन सा है इसलिये आवश्यक होगा कि तीनों अफगान-युद्धों का थोड़ा स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाय। 1849 से 1901 ई० तक उत्तर-पश्चिम का प्रान्त पंजाब प्रान्त के ही अन्तर्गत था इन सूबों पर अधिकार जमा लेने के बाद (जो 1849 की 29 मार्च की घोषणा ही से हो गया था) ब्रिटिश शासकों ने इन पहाड़ी जातियों के देश की ओर मुँह मोड़ा। बहाना यह था कि रूस दिन पर दिन बढ़ रहा है, और उससे भारत को भारी भय है। इस भय से मुक्त होने के लिये आवश्यक है कि अफगानिस्तान में एक स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली राज्य की स्थापना की जाय। अब्दुल रहमान ने लाख कोशिश की कि इनके (अर्ध स्वतंत्र जातियों का) देश में ब्रिटिश सत्ता हस्तक्षेप न करे परन्तु वह सब अर्थ हीन था। अँग्रेजों के बढ़ते हुये समुद्र वेग को रोकने वाला कोई न था। अब्दुल रहमान ने व्यर्थ ही इन पहाड़ियों को लेकर लिखा था—

"यदि तुम उन्हें मेरे राज्य से तोड़ कर अपने में मिला भी लोगे तो भी फायदा कुछ भी न होगा; न तुम्हारा ही और न मेरा ही। शान्ति के समय तुम उन्हें दबा कर रख सकते हो परन्तु यदि कोई विदेशी शत्रु भारत के सीमान्त पर आकर खड़ा होगा तो उनसे बढ़कर तुम्हारा जानी दुश्मन दूसरा न होगा।"*

---

* In vain did Abdul Rahman write ; 'If you cut them off from my dominions they will never be of any use to you or me. You can hold them down in peace, but if at any time a foreign enemy appears on the borders of India, these tribes will be your worst enemies.'

परन्तु शक्ति के मद में अन्धे अँग्रेज क्यों सुनते। परिणाम स्वरूप एक नहीं तीन-तीन अफ़ग़ान युद्ध क्रमशः सन् १८३९, १८७८, तथा १९१९ में हुये। और मजा यह कि इसका दोष मढ़ा गया अफ़ग़ानियों के मत्थे। अफ़ग़ानों के प्रथम युद्ध का वर्णन हम कर चुके हैं। दूसरे युद्ध को संक्षेप में कहें।

दूसरा अफ़ग़ान युद्ध सन् १८७८ ई० में आरम्भ हुआ। शान्त निद्रा से सोते हुये उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त को पकड़ कर उठा लिया गया। युद्ध का कारण भी उचित ही था। क्यों अमीर ने ब्रिटिश दूत का तिरस्कार करके रूसी दूती का काबुल में स्वागत किया और सचमुच यह छोटा-मोटा अपराध नहीं है, और फिर ईसा के पुजारी अँग्रेज क्या कभी झूठ बोल सकते हैं? उसी दिन से वैज्ञानिक सीमा प्रान्त की नींव पड़ी। खैबर और कुर्रम की घाटियों पर सहज ही अँग्रेजों का अधिकार हो गया। साथ ही भारत प्रवेश के मार्गों पर भी अँग्रेजी क़ब्जा होते देर न लगी। और बेचारा अमीर करता भी क्या। दाँत निपोरता रह गया। किन्तु अँग्रेजों की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये युद्ध आवश्यक था। अँग्रेज नहीं चाहते थे कि अफ़ग़ानिस्तान में रूसी दूत का अड्डा जमे। एक स्वतंत्र राज्य पर यह भीषण अत्याचार था। अँग्रेजों को अधिकार ही क्या था कि वे एक स्वतंत्र राज्य पर इस प्रकार का जोर जुल्म करें? किन्तु इसका एक ही अकाट्य उत्तर है स्वार्थ। अर्थात् अफ़ग़ानिस्तान में अपना ग़ुलाम अमीर रखने के लिये, जो जानबुल की उँगलियों पर नाचे, आवश्यक था, एक युद्ध हो, और परिणाम स्वरूप अफ़ग़ान युद्ध का तत्क्षण कारण था डूरेण्ड मिशन। अफ़ग़ानिस्तान और आज़ाद कबाइली देश (Tribal Belt) के बीच में एक निश्चित सीमान्त का निर्णय कर लेना आवश्यक था। इसीलिये १८९४–९५ ई० को यह 'डूरेन्ड-मिशन' भेजा गया। इस मिशन को लेकर दोनों दलों के बीच काफी तनातनी हुई। इन सारी पहाड़ी जातियों में विद्रोह की आग भड़क उठी और अँग्रेज कभी एक से लड़ते कभी दूसरी से। किन्तु उनके सौभाग्य से ये जातियाँ न तो एक साथ उठीं, यद्यपि उठीं सब,

और न मिलकर उठीं। तभी अँग्रेजी बिलोचिस्तान की नींव पड़ी। जोब की घाटी जोब की एजेन्सी बना दी गई। यह वही थी जिन्हें अफ़ग़ान मन्दाखेल और कारकर्स कहते थे। क्वेटा में फौजी छावनी बनाई गई, यद्यपि कहा यह गया कि यह भारत की रक्षा के निमित्त है परन्तु इसका सीधा तात्पर्य था अफ़ग़ान पर चोट। यद्यपि अमीर को अँग्रेजों के सम्मुख घुटने टेकने पड़े, और इसके अतिरिक्त वह कर भी क्या सकता था, परन्तु इन अत्याचारियों को इसका उचित पुरष्कार भी मिला। इस पुरस्कार का वर्णन अँग्रेजी के उस प्रसिद्ध कवि किपलिंग ने अपनी कविता 'लव ऑफ वोमन' (Love of Woman) में ख़ूब किया है। इस प्रकार अँग्रेजों के लिये नई विजयों के साथ यह युद्ध भी समाप्त हुआ।

किन्तु अब भी कुछ शेष रह गया था। अफ़ग़ानी पूरी तरह अँग्रेजों के मन मुताबिक़ नहीं बने थे। और यह जाकर हुआ तीसरे अफ़ग़ान युद्ध में। तत्कालीन अमीर अमानुल्ला पर अनेकों दोषारोपण किये गये हैं। किन्तु सत्य क्या था? अमानुल्ला चाहता क्या था? इसका उत्तर वही है जो भारत माता ने अँग्रेजों को दिया। उस उत्तर की भाप कुछ इस प्रकार थी—"आप कृपा कीजिये, हमें जैसे हैं वैसे ही रहने दीजिये।" अफ़ग़ान अँग्रेजों की कूटनीति से उनकी चालबाज़ियों से तंग आ गये थे। बस अमानुल्ला इसी दिनरात की अप्रत्यक्ष ग़ुलामी से छुटकारा पाना चाहता था। कहने को तो अफ़ग़ानी स्वतंत्र थे, परन्तु बेचारे अँग्रेजों की उल्लू की आँख से बच कर रात में भी नहीं उठ बैठ सकते थे। सारा का सारा विदेशी कार्यक्रम अँग्रेजों की देख रेख में होता था। यह कुत्ते का सा पिछलग्गूपन अफ़ग़ानों को देखे नहीं सुहाता था। और फिर अँग्रेज ठहरे उस्ताद आदमी। सचमुच जब जानबुल ख़ुदा के सामने हाज़िर होंगे और ख़ुदा पूछेगा कि तुमने ज़िन्दगी भर क्या किया तो ये महाशय अपनी डायरी निकाल कर दिखा देंगे कि सब से बड़ा काम उन्होंने नये कारणों की खोज का किया। जहाँ चींटी न समाये वहाँ अँग्रेज हाथी सरीखे घुसा देते हैं। कलकत्ते की काल कोठरी हैदरअली का हुक्का, सिन्ध के अमीरों की शराब आदि हज़ारों प्रमाण

वह अपनी योग्यता को सिद्ध करने के लिये उपस्थित कर देगा। यहाँ भी ये कब चूकते हैं। अँग्रेजों के चण्डूखाने से खबर उड़ी कि अमीर अमानुल्ला विद्रोहियों से मिल गया है तथा उन्हें गुप्त सहायता देता है। ये विद्रोही थे सीमा प्रान्त की पहाड़ी जाति के। लेकिन यह दोषारोपण कुछ नहीं एशिया में अपने पाँव फैलाने के लिये अँग्रेजों का सोचा हुआ एक छल था। यह पहाड़ी जातियाँ वस्तुतः अफ़ग़ानी हैं। दोनों के धर्म, समाज, भाषा, और भावों में पूरी-पूरी समानता है। सच तो यह कि दोनों एक ही जाति के हैं। किन्तु वाहरे अँग्रेज। बीच में डूरेण्ड रेखा डालकर दोनों को हटाकर तोड़ दिया। अमानुल्ला की शासन प्रियता से यह पहाड़ी जातियाँ उसकी ओर अधिक झुकी हुई थीं। यह अँग्रेजों के लिये असह्य था। साथ ही अमीर पर एक और सन्देह लाद दिया गया। कहा गया कि वह भारत के राष्ट्रीय नेताओं के पक्ष में मिला हुआ है। सन् १६१६ ई० में पंजाब तथा उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में जो क्रान्ति हुई उसमें तथा अफ़ग़ान युद्ध में, किसी समान बू की शंका की गई। किन्तु तृतीय अफ़ग़ान युद्ध में अफ़ग़ानों ने बड़ी वीरता दिखाई। उनकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार कर ली गई। अब वे सीधे-सीधे किसी भी विदेशी राष्ट्र से सम्बन्ध या विच्छेद कर सकते थे। इस स्वतंत्रता का प्रयोग भी ख़ूब हुआ। सब से पहले तो वह रिश्वत बन्द की गई जो अँग्रेज अफ़ग़ान अमीर को देता था। यह रिश्वत एक प्रकार का बन्धन था जो तोड़ डाला गया।

आज के सीमा प्रान्त को देखकर बौद्ध युग का सीमा प्रान्त एक सपने सा दीखता है। कितने सहस्र वर्ष हुये, सीमा प्रान्त सैकड़ों प्रकार के मनुष्यों को दीख चुका है। बाहर से आने वालों का ताँता ही बँधा रहा। द्रविड़, आर्य, हूण, सिथियन, तुर्क, मंगोल, अफ़ग़ान, मुग़ल लगातार एक दूसरे को धकेलते हुये चले आये। इस प्रकार उनका सीमा प्रान्त में होकर आना बड़ा महत्व पूर्ण रहा है। आज सीमा प्रान्त के वर्त्तमान वासियों की नसों में कितने प्रकार का ख़ून बह रहा है? इसकी क्या कुछ शुमार है? आज जो रूप हम सीमा प्रान्त का देखते

हैं वह कल की सी चीज है। सन् १६०१ ई० तक यह प्रान्त शासन की दृष्टि से अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही न रखता था। सीमा प्रान्त तब तक पंजाब का ही एक अङ्ग था। १६०१ में जाकर ब्रिटिश सरकार की मेहरबानी हुई और यह प्रान्त अलग होकर एक चीफ कमिश्नर के अधिकार में दे दिया। क्यों? यह प्रश्न सहज ही उठता है कि यह कृपा हमारे दयालु शासकों ने क्यों की? अँग्रेज जान गये थे कि 'भगेभूल की लँगोटी भली' वाली कहावत का क्या महत्व है। जब पंजाब प्रान्त में भी राष्ट्रीय जागरण का रोग फैला तो भले आदमियों ने सोचा, न हो सीमा प्रान्त को ही बचा लें। और इसी शुभ प्रेरणा से प्रेरित होकर अँग्रेजों ने सीमा प्रान्त को अलग कर दिया। यह अलगोझा छोटा-मोटा नहीं था। सीमा प्रान्त को भारत से कोई सम्बन्ध नहीं रखने दिया। उसके लिये अलग क़ानून बने, अलग सुधार हुये। मियाँ अब्दुल कय्यूम के शब्दों में—"तय हुआ था कि अब से यह प्रान्त एक मुहरबन्द किताब की तरह रहेगा, फ़ौजी एवं शासक वर्ग के अफ़सरों का आखेट बन बन कर।"*

और इच्छानुसार रहा भी ऐसा ही। पता नहीं अँग्रेजों ने इसमें सीमा प्रान्त की कौन सी भलाई सोची थी जो उसके लिये अलग क़ानून बनाये। अपराधियों के सम्बन्ध में बनाया हुआ 'फ्रन्टियर क्राइम्स रेगुलेशन' जिसके अनुसार कोई भी आदमी पकड़ कर, बिना मुकद्दमा चलाये, बिना न्याय के लिये अदालत में लाये निर्वासित किया जा सकता था, किस सुधार का श्री गणेश था यह आज तक वकीलों की समझ में नहीं आया। जिर्गा, जिनमें रईस खान साहबों की प्रमुखता रहती थी, की मध्यस्थता से शासकों ने सीमा प्रान्त पर जो-जो अत्याचार किये हैं, जो-जो क़हर ढाये हैं उनका उल्लेख अन्य स्थान पर किया

---

* It was decreed that this Province was to be a sealed book—henceforth—a happy hunting ground for the officers of the Political Department and the Military."

—Abdul Qaiyum—in Gold & Guns on the Pathan Frontier.

जायेगा। इसी प्रकार के लोहे के कोल्हू में सीमा प्रान्त वासी १९३२ ई० तक पिलते रहे। किसी प्रकार का चुनाव नहीं हो सकता था, चुङ्गियाँ तथा ज़िला बोर्डों तक में सरकार के नाम जद गुड्डे जाया करते थे। जब भी किसी प्रकार की राष्ट्रीय जागृति के लक्षण नज़र आते तभी उसे धूल में दबा दिया जाता। जब-जब किसी अन्य प्रान्तीय राष्ट्रीय नेता ने सीमा प्रान्त में घुसने की गुस्ताखी की तभी-तभी उसे उचित पुरस्कार के साथ यमपुर भिजवा दिया गया। सीमा प्रान्त के लोगों की ढेर सी सहायता के लिये जो उन्होंने सन् १८५७ में अपने भाइयों के विरुद्ध अँग्रेज़ों की की, उन्हें 'मिन्टो मार्ले रिफोर्म' (१९०९) तथा 'मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिफोर्म' (१९१९) से भी वंचित रखा गया। सन् १८५७ की क्रान्ति के समय सीमा प्रान्त में स्थित देशी फ़ौज पर सन्देह किया गया कि वह क्रान्तिकारियों से मिली है इसलिये तुरन्त ही उसके हथियार छीन लिये गये। उस समय पठानों की नई सेना बनाई गई। यह श्रेय पठानों की इस सेना को ही था कि जिसके परिणाम स्वरूप आज अँग्रेज़ इस भूमि पर दीखते हैं। ये पठान दिल्ली में आकर इन्हीं अँग्रेज़ों की ओर से लड़े, और बड़ी वीरता के साथ लड़े। परन्तु उन्हें मिला क्या? कठोर से कठोर क़ानून और दण्ड।

इस परिच्छेद में संक्षेप में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के वासियों का इतिहास लिखा गया है। इससे पाठक निस्सन्देह यह समझ गये होंगे कि पठान भी पूरी तरह हमारे ही भाई बन्धु हैं, उनमें और हममें देश का ही नहीं ख़ून का भी सम्बन्ध है। वर्षों से यह प्रान्त जानबुल के लिये एक कठिन समस्या रहा है। समुद्रों के विजेताओं को इन पहाड़ी शेरों के सम्मुख सदा मुँह की खानी पड़ी है। भारत का मनों सोना, चाँदी उनकी भेंट चढ़ाया गया, परन्तु वे जब भी बोले हैं बन्दूक़ के छेद से बोले हैं। सोना उन्होंने अवश्य स्वीकार किया परन्तु गोली का उत्तर सदा गोली से ही दिया गया है। यही तो है पठान जिसके राज्य में ख़ून का बदला ख़ून होता है।

इतिहास के साथ ही हम इस परिच्छेद को समाप्त करते हैं। अगले

परिच्छेद में उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के निवासियों का वर्णन करेंगे। किन्तु इतना अन्त में भी लिख दें कि उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त का यह इतिहास बहुत संक्षिप्त एवं अपूर्ण है। अभी ढेर सा सत्य छिपा पड़ा है। तभी तो महाशय मैकमन का कथन है—

"यह उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त जो युगों से प्रारम्भिक हिन्दुओं तथा बौद्धों का घर था, और जो आज मुहम्मद के पुत्रों का विहार स्थल बना हुआ है, आश्चर्य जनक ऐतिहासिक सम्पत्ति से भरा है, जिसकी खोज करना आज भी कठिन काम है।"*

उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के निवासी

सीमा प्रान्त रोमान्सों (Romances) की भूमि है। आये दिन कोई न कोई रोमांचकारी घटना होती ही रहती है। मृत्यु, खून, चोट जैसे शब्द, जिन्हें सभ्य संसार में सुनकर भारी खलबली मच जाती है, वहाँ दाल भात की तरह है। यह सुनकर पाठकों को कौतूहल होगा—कैसे हैं वहाँ के लोग? इस प्रश्न का उत्तर डा० अख्तर हुसैन रामपुरी* ने अत्यन्त सुन्दरता से दिया है, इसलिये हम अपनी ओर से कुछ कहने के पूर्व पाठकों के हितार्थ उन्हीं के शब्दों में कहते हैं:—

" ×××× गाँव बाड़ों के अन्दर बसे हुये थे जिनके कोनों पर छोटे-छोटे मीनार सन्तरियों के लिये बने हुये थे। यह सब पठानों की बस्ती है और हर छोटा-बड़ा कारतूस की पेटी बाँधे बन्दूक लटकाये अकड़ता चला आता है। ड्राइवर ने कहा (यह लेखक की 'हिन्दुकुश की सैर' शीर्षक लेख का उद्धरण है) कि खोपड़ी से टोप उतार दीजिये,

---

* 'This North-West Frontier, the land which was long the home of earlier Hindus and Buddhists, now the hunting ground of the sons of the Prophet, is full of the strange relics past that can hardly yet be peaceably explored."

—*Sir George Macmunn.*

कहीं कोई बिगड़े दिल किसी ओर से छिपकर टोप की चाँदमारी का निशाना न बनाये।

"शाम होने वाली है। पठान औरतें अनाज या घास के गट्ठर पीठ पर लादे गल्ला हाँकती हुई घर लौट रही हैं। ये सब काले कपड़ों से छिपी हुई हैं और हमें देखकर पीठ फेर लेती हैं, या गोरे-गोरे हाथों से मुँह छिपा लेती हैं। उनके दुपट्टे दमक रहे हैं—सौन्दर्य की कान्ति से या आकाश की लालिमा से, पता नहीं। नन्हीं लड़कियाँ कौतूहल से हमें ताकती हैं। और उनके कटे हुये बाल माथे पर अलहड़पन से हिलोरें खा रहे हैं। हवा सेब और नाशपाती की महक से बोझल है। अखरोट व बादाम के पेड़ अपने सुहावने भार से लदे हुये हैं। चौपालों में बन्दूकों की क़तार के बीच में पठान भाट पुराने सूरमाओं की कीर्ति बखान रहे हैं और सितार की आवाज़ कभी-कभी जोश में आकर "दग़ादे—दग़ादे" की टेक पर सबके साथ सिर धुनने लगती है। सड़क के दायें-बायें दो तर्फा दूकानें लगी हैं जिनमें खास तौर पर चाय खानों में भीड़ है। हुक्के और चाय का दौर चल रहा है और कोई चारण अजबखाँ या आलम की कहानी सुना रहा है।

सीमा प्रान्त वीर प्रसूता भूमि है। इसकी पथरीली चट्टानों से टकरा टकरा कर साहसी शूरवीर एवं योद्धा उत्पन्न होते हैं। इनके लिये मृत्यु एक खिलवाड़ रही है, जीवन यापन का साधन। पठान की रोटी बन्दूकों की गोलियों से निकलती है। यही वह भूमि है जिसके पुत्रों ने संसार जीता है। जिनकी तलवार की धार का पानी और आज गोलियों की मार लाहौर से लेकर लन्दन तक के मर्दों को मालूम होगी। अपने साहस, वीरता एवं पौरुष से जाति ने सदा ही शक्तिहीन को धकेल कर दूर फेंक दिया है और इस प्रकार 'वीरभोग्या वसुन्धरा' के कथन को पूरी तरह चरितार्थ किया है।

अखतर हुसैन रामपुरी डॉ० लिट० लिखित—"हिन्दूकुश की सैर"—विश्व वाणी—जनवरी १९४२ पृ० ८

पहाड़ी चट्टानों की भाँति ही इसके निवासियों का शरीर और मन भी उतना ही कठिन हो गया है। खड्डों से टकरा टकरा कर यह अपनी लोह अस्थियों को वज्र बनाते रहे हैं। किन्तु इस सब कठोरता और नृशंसता के बीच कहीं आप मनमानी कल्पना न करने लगें। निस्सन्देह महाशय जे० एस० ब्राईट का कथन सत्य है। "मेरा अनुभव है कि सीमा प्रान्त बोलता नहीं है वह बोल भी नहीं सकता। और जब कभी वह बोलता भी है तो बन्दूक की नाली की गर्जना के साथ।* परन्तु यह सत्य का एक ही पक्ष है। सैनिक के पूर्व भी वे पठान मानव हैं, हमारे आपकी ही तरह उनके भी हृदय है। वे भी बाल बच्चेदार आदमी हैं, और इसलिये माँ बाप का वात्सल्य प्रेम उनके भी हृदय में है। पाठक आगे चलकर अनुभव करेंगे कि पठान जितने कठोर हैं उतना ही कोमल उनका हृदय भी है। आतिथ्य-सत्कार, शरणागत रक्षा, उनके संगीत नृत्य इत्यादि का विचार करने पर पाठक जान जायेंगे कि पठान भी सभ्य हैं, यद्यपि यह सच है कि उनकी सभ्यता आज की तथाकथित सभ्यता नहीं है। उनकी कठोरता सकारण है। और कारण जानने पर पाठक समझ जायेंगे कि उनका पक्ष सत्य पर स्थित है।

पाठक सीमा प्रान्त के दर्शन कर चुके हैं, उसके निवासियों का भी अत्यन्त साधारण परिचय पा चुके हैं। परन्तु अपने इस परिच्छेद के अध्ययन के पूर्व हम निश्चित कर लेना चाहते हैं कि हमें किन-किन बातों का विचार करना है। सबसे पहला प्रश्न होता है, उत्पत्ति का। अनेक विभिन्न मतों के बीच हम प्रयत्न करेंगे कि पाठकों को सत्य निर्णय कराने में प्रयत्नशील हों। दूसरा प्रश्न होता है उनके सामाजिक चरित्र का। इसके अन्तर्गत उनके रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, सामाजिक

---

*"My impression is that the Frontier does not speak. The Frontier cannot speak. If the Frontier ever speaks, it is through the bullets."

—*J. S. Bright in Frontier & its Gandhi.*

गठन आदि आते हैं। तीसरे प्रश्न में उनकी वैयक्तिक विशेषताओं की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। प्रत्येक जाति में कुछ विशेषताएँ होती हैं जो प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि परिस्थियों के कारण बन जाती हैं। जानबुल बड़ा झगड़ालू तथा स्वार्थी होता है, दोस्त बनकर उससे चाहे जो उसका सर्वस्व छीन सकता है परन्तु लड़कर एक पाई भी लेना कठिन है, बंगाली बड़े साहसी तथा क्रान्तिकारी प्रवृत्ति के माने जाते हैं, सिक्खों की निर्भयता प्रसिद्ध है। यह सब जातियों की अपनी विशेषताएँ हैं। वैयक्तिक विशेषताओं से हमारा यही तात्पर्य है। इसके पश्चात् पठानों का सांस्कृतिक प्रश्न हम लेंगे, जिसके भीतर उनके साहित्य का विचार संक्षेप में करना आवश्यक होगा। इसी समय यह भी विचार करना होगा कि उनके मध्य रहने वाली अल्पसंख्यक जातियाँ कौन-कौनसी हैं तथा उनकी क्या दशा है। अन्त में उनकी विचारधारा—प्राचीन और अर्वाचीन दोनों पर एक निगाह डालना उचित होगा। इस प्रकार उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के निवासियों का प्रश्न उनके समाज, साहित्य, संस्कृति तथा धर्म का प्रश्न हो जाता है। यहाँ हम उनके आर्थिक प्रश्न को जान-बूझकर छोड़े दे रहे हैं, कारण आर्थिक प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके महत्त्व के विषय में यहाँ कय्यूम साहब के शब्दों को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

"मेरे विचार से तो उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के पठानों की समस्या प्रमुख रूप से आर्थिक है। जोर-जबर्दस्ती और रिश्वतों से हम किसी भी हल के निकट नहीं पहुँच पाये हैं। जिसकी आवश्यकता है वह रास्ता ही बिल्कुल दूसरा है।"*

*"To my mind, the problem of the Pathan Noth-West is mainly economic. Force and bribery have failed to bring us any nearer to a solution. What is needed is an entirely different approach to the subject."

—*Abdul Qayum.*

तात्पर्य यह कि आर्थिक प्रश्न के लिये हम एक नवीन परिच्छेद ही लेंगे। जब हम पठानों के रहन-सहन तथा विचारों के सम्बन्ध में बात करने लगें तब आवश्यक होगा कि पाठक थोड़ा अपने मस्तिष्क को साफ करलें। सरकारी प्रचार ने, जो शुद्ध स्वार्थ भावसे प्रेरित होकर किया गया था, जो खुराफात हमारे विचारों में भर दी है उससे बचकर चलना होगा। आज अनेक वर्षों के शतत प्रयत्न से जब यह सिद्ध हो गया है कि आजाद कबाइलों के वासी साम्राज्यवादियों के ही शत्रु हैं तो क्या अब भी यह उचित होगा कि उन्हें हम अभारतीय समझें।

डूरेण्ड रेखा, पाठकों को स्मरण होगा, अफ़गानिस्तान और भारत का आधुनिक सीमान्त है। इसी सीमान्त के दोनों ओर, अर्थात् अफ़गानिस्तान एवं उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त के वासी बहु संख्या में पठान हैं। बहु संख्या में कहने से हमारा तात्पर्य यह है कि इन प्रदेशों में और विशेषकर सीमा प्रान्त में पठानों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लोग भी बसते हैं। यथा—हिन्दू, ईसाई और सिक्ख। सिन्ध से काबुल तक पश्तो भाषा-भाषियों की ही बस्तियाँ हैं। ये अल्पसंख्यक जातियाँ जो औसत में पाँच से सात प्रतिशत तक हैं; बहुसंख्यकों से एकदम घुल मिल गई हैं। उनका रहन-सहन, उनकी भाषा, उनके रीति-रिवाज थोड़े नाममात्र के अन्तर से, अपने बहुसंख्यक भाइयों के ही समान हैं। पूर्वानुसार अफ़गानिस्तानी और पठानी (सीमा प्रान्त वासी) लगभग पर्यायवाची शब्द हैं। इसका मतलब यह है कि सीमा प्रान्त और अफ़गानिस्तान दोनों के वासी लगभग एक ही हैं। यह समानता हमें उनके नाम में भी मिलती है। दोनों ही लोग अपने को, अपनी भाषा में 'पख्तून' या 'पश्तून' कहते हैं। इस प्रकार ये पठान अफ़गानिस्तान से हिन्दूकुश के दक्षिण प्रदेश, पूरे आजाद कबीला प्रदेश, सीमा प्रदेश, सीमा प्रान्त तथा बिलोचिस्तान के कुछ भाग में बसे हुये हैं।

इस प्रतिक्षण परिवर्त्तनशील संसार में आज का सत्य कल कोई अर्थ नहीं रखता। आज जिस देश को पठानों का देश कहकर पुकारते हैं

वह क्या सदा ऐसा ही था? इतिहास साक्षी है कि आज के पठान कल जैसी चीज़ हैं। युगों से अनेकों जातियाँ एक के बाद एक आती चली गई है। तथा एक दूसरे को धकेल कर अपना स्थान बनाती आई हैं। भारत के सीमा प्रान्त में एक नहीं सैकड़ों प्रकार के रूप रंग वेष-भूषा वाले लोग आये और बढ़ते चले गये। द्रविड़, आर्य, हूण, तुर्क, मंगोल, अफ़ग़ानी, मुग़ल और अन्त में ईसाई भी आये, आकर कुछ समय तक ठहरे और फिर चलते बने। जाते समय प्रत्येक अपने जीवन की छाप छोड़ता गया। सीमा प्रान्त के बाद सिन्धुनद को एक जाली मान लें तो पाठक कल्पना कर सकते हैं कि जब-जब इस जाली के छेदों में होकर कोई जाति आगे बढ़ी तो उसका थोड़ा-बहुत हिस्सा जाली के इसी ओर रह गया। ये अवशेष अपनी शक्ति कहिये अथवा दुख सहन की प्रवृत्ति कहिये, के कारण किसी प्रकार पीछे के शत्रुओं की मार को रोकते हुये वहीं ठहर गये। यह ठहरने वाले ही हमारे आज के पठान हैं। पठान मनुष्य के विचार से वह चोकर हैं जो सिन्धु की जाली के उस पार न जा सके। काबुल, गजनी और कन्धार से भारत के लिये छोटे-मोटे चार रास्ते हैं, जिनमें खैबर का दर्रा प्रमुख है। अन्य मार्ग जानवरों के लिये आसान हैं। हमारे पिछले इतिहास के परिच्छेद से यह निश्चित हो गया कि खैबर के दर्रे ने पिछली पच्चीस शताब्दियों में आदिम यात्री आर्यों से लेकर अन्तिम यात्रियों तक जो अहमद शाह अब्दाली के साथी थे, अनेक मानव धारायें देखी हैं। ग्रीस, मेसोपोटामिया, मध्य और पश्चिम एशिया तथा अन्य अनेकों देशों के लोगों के जीवन की छाप, उनकी मनुष्यता का रक्त आज सीमा प्रान्त वासियों की शिराओं में बह रहा है। आरम्भ में कदाचित यह आर्य लोग गान्धार के प्रान्त में रहते थे और काशगर, यारकन्द, खोतान (मध्य एशिया में) तथा तक्षशिला (हज़ारा की घाटी में) उनके प्रधान केन्द्रस्थल थे। बाद में जब आक्रमण हुआ तो ये लोग आकर सीमा प्रान्त के देश में बस गये। उस समय के वासी द्रविड़ और काफ़िरों को मार कर भगा दिया गया होगा।

पठानों की उत्पत्ति

पठानों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में थोड़ा मतभेद है। इस मतभेद का कारण इतिहास की परम्परा में भूल है।

१—पठान लोग अपने को हिब्रू की परम्परा में मानते हैं, परन्तु यहाँ हम श्री आसफअली जी का विचार उद्धृत करते हैं। उनके अनुसार यहाँ की विभिन्न जातियों का उद्गम विभिन्न जातियों में है। यद्यपि मूल विभिन्न जातियों में है तथापि बाद को शादी-व्यवहार, समान धर्म (इसलाम) तथा समान भाषा (पश्तो) के कारण आज वे एकमएक हो रहे हैं। निस्सन्देह ऐतिहासिक विचार से यही प्रतीत होता है कि इन जातियों मे बड़ी गड़बड़ है अर्थात् उनमें एक नहीं अनेकों जातियों का ख़ून बहता है।

२—दूसरा मत श्री जे० एस० ब्राइट महोदय का है। ब्राइट महोदय का मत रूप-रंग पर निर्धारित है। इन महाशय ने जिन दो में रूप और रंग की समानता पाई उसी को कार्य-कारण अथवा बीज और फल के सम्बन्ध से जोड़ दिया है। मुहम्मद गोरी के आक्रमण में जो अफग़ानिस्तानी लोग आये उन्हीं के विषय में ब्राइट महाशय ने इन शब्दों में शङ्का उठाई है।

"अफ़ग़ानिस्तानी अफग़ान की सन्तान हैं। यह अफ़ग़ान इसराइल का का पुत्र था। इस प्रकार भारत का यह हिस्सा विलियम बोलिथो वाले शब्दों में 'सदा वर्त्तमान' यहूदियों का वासस्थान मालूम पड़ता है। क्या ये पहाड़ी जातियाँ यहूदी हैं ? इसके उत्तर में हाँ कह देना कठिन मालूम पड़ता है। इन पठानों में तथा पंजाब के जाटों में काल और देश के कारण उत्पन्न भेद के अतिरिक्त और कोई विशेष भेद नहीं दीख पड़ता। निस्सन्देह यह जाट इतिहास में उल्लिखित 'गेटे' (Getæ) ही हैं तथा इनका उद्गम स्थल भी समान है। दुर्रानी लोगों का अपने को इसराइल की सन्तान कहना ही सत्य हो सकता है। बुढ़ापे में आकर बहुत से पठान रूप में आकर बहुत से यहूदियों जैसे बन जाते हैं। यह सम्भव है कि यह पहाड़ी लोग (आज़ाद कबाइले) इसराइल की खोई हुई सन्तानें

हैं। उनके नाम भी यहूदी जैसे हैं। अन्य मुसलमानों की अपेक्षा बाइबिल के जैसे नाम इन लोगों में अधिक प्रचलित हैं।"*

एक दूसरे स्थान पर यही महाशय अपने कथन को और भी अधिक स्पष्ट करते हुये कहते हैं—

"इधर-उधर पहाड़ियों के बीच छोटी-मोटी जातियाँ हैं जो सचमुच दुर्रानी गद्गम की हैं, जो बेनी इसराइल तथा पर्ल में अपना सम्बन्ध जोड़ती हैं। वास्तव मे पठान प्राचीन आर्यों की, जो इधर-उधर अपनी बस्तियाँ बनाते फिरते थे, सन्तानें हैं। समय के साथ ही पहाड़ी जीवन के प्रभाव से वे कठोरतर होती जा रही हैं। ज्यों-ज्यों समय आता चला, इसलाम धर्म की लहर आई, जिसने सीमा प्रान्त पर भी अपना हाथ फैला दिया।×××। इस प्रकार बनजीवी आर्यों की यही जाति बाद को कट्टर अरब जाति की अनुगामिनी बन गई।"†

* "Afghan are the descendents of Afghana, a son of saul of Israel. Thus this part of the key of India touches what William Bolitho calls "those eternal contemporaries," the Jews. Are the hilltribes Jews? It is difficult to answer in the affirmative. There is little difference between Pathans and Jats of the Punjab, except the influences of time and clime. No doubt, these are the Getae of history and have a common origin. The claim of the Duranis to be the children of Israel may easily be true. Many Pathans in old age have a Jewish appearance. It may be possible that the hillmen of the Frontier are the lost tribes of Israil. The names are very Jewish and Biblical names do appear more often among them than among of her Muslims."

—*Frontier & its Ghandi, pp. 26*

—*J. S. Bright.*

† "Here and there, among the hills, we find sandwiched clans that are truly Durani, Mr. Bem Israel and the people of the Pearl. ' The Pathans are really the descendents of the old

पाठक ब्राइट महोदय का तात्पर्य समझ गये होंगे। उनका मत भी पठानों के मूल में आर्यों को ही मानता है। जाट तथा इसराइल के बेटे कहने से उनका कोई विरोधी भाव नहीं है। आरम्भ में आर्य ही लोग यहाँ आकर बसे, जिन पर अन्य जातियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा और जो आज पठान बने हुए है।

पठानों का मूलतः आर्य होने वाला मत यद्यपि सर्वमान्य नहीं है कारण एक दूसरा विद्वानों का दल है जो इस मत का है कि पठान बेनी इसराइल की सन्तानें हैं, परन्तु पहला ही मत तर्क सम्मत मालूम पड़ता है। जे० एस० ब्राइट महोदय ने अपनी पुस्तक में थोड़ी अस्पष्ट बात कही है, परन्तु इसका स्पष्टीकरण श्री अब्दुल कय्यूम ने अपनी पुस्तक 'गोल्ड एण्ड गन्स ऑन दी पठान फ्रण्टियर' में कर दिया है। पाठकों की सुविधा के लिए हम वही अवतरण देते हैं—

"पठानों के उद्गम के प्रश्न के विषय में भारी मतभेद फैला हुआ है। विद्वानों का एक दल कहता है कि पठान बेनी इसराइल के उत्तराधिकारी हैं। दूसरे दल का विचार है कि पठान उन आर्यों के उत्तराधिकारी है जो सुदूर भूतकाल में मध्य एशिया से यूरोप, फारस तथा भारत की ओर चले थे। कुछ विद्वानों का यह मत कि पठान इसराइली है, उनके नामकरण, रहन-सहन तथा शरीर की गठन पर आश्रित हैं। इसराइली मत के प्रवर्त्तक यह भूल जाते हैं, कि इसलाम धर्म जो पठानों का धर्म है, यहूदी और ईसाई धर्मों से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। नामकरण और रीति-रिवाज की समानता का कारण यह भी हो सकता है कि ईसाई, यहूदी व इसलाम धर्म आपस में भाई-भाई हैं, क्योंकि सभी उद्गमस्थल जजिरात-उल-अबू यानी अरब भूमि है, फिलस्तीन और

Aryan Colonists who remained in the hills. They grew harder and harder with years of rugged mountain life. As the centuries rolled on, the tides of Islamic culture swept over their frontier so the old Aryans followed the fanatical Arab as wild as they themselves were.———

हैडजाज इसी के अन्तर्गत आते हैं। यहूदियों ने कब और क्यों फिलस्तीन से पूर्व की ओर चलकर उस भूमि में जिसे हम अफ़ग़ानिस्तान कहते हैं अपना उपनिवेश बनाया, इतिहास में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत यह बिल्कुल स्पष्ट सत्य है कि क्रमागत धाराओं में आर्य लोग मध्य एशिया से अफ़ग़ानी पहाड़ी प्रदेश में चले जिसके बाद पंजाब होते हुए भारत में चले आये। यह भी मान्य सत्य है कि पश्तो भाषा में अनेकों संस्कृत शब्द हैं, कुछ लोगों का विश्वास है कि पश्तो संस्कृत से ही निकली है। वह महान् गौरवर्णी जाति जिसे आर्य कहते हैं, एशिया के हृदयस्थल से तीन दिशाओं में चली। पहली काकेशस से होती हुई यूरोप में, दूसरी ईरान में और तीसरी अन्तिम अनेक धाराओं में अफ़ग़ान के पहाड़ों तथा घाटियों में होती हुई सिन्धु में चली आई। ये पंजाब से चलते हुये यमुना की ओर चले तथा गंगा के मैदान और उससे भी आगे फैलते गये। आर्यों की यह यात्रा जो प्रसिद्ध ऐतिहासिक सत्य है, तथा संस्कृत एवं पश्तो भाषाओं का निकट सम्बन्ध, इस मत को बहुत शक्ति देते हैं, कि पठान लोग आर्यों की जाति के हैं यानी आर्य ही हैं।

इस मान्यता को और भी शक्ति जार्ज मैकमन के निरीक्षणों से जो 'दि रोमान्स ऑफ दि इण्डियन फ्रण्टियर' में लिखित हैं, मिलती है। मेरा मत है कि बेनी इसराइल की वंशावली वाला मत अर्थहीन है, और कोहिस्तान के आगे काबुल से सिन्धु तक के अधिकतर निवासी प्राचीन आर्यों के उत्तराधिकारी हैं।*

---

*"Violent controversy has raged round the question of the origin of the Pathans. One should of thought contends that the Pathans are descendents of the Bene-Israel. The other school hodls that the Pathans are descendents of the Aryan tribes who moved out of Central Asia in some remote past, and spread out to Europe, Persia and India. The Pathans are considered by some to be Israelites, because of their nomenclature, their usages, and their physique. These

उपरोक्त अवतरण से स्पष्ट हो गया होगा होगा कि पठानों के सच्चे आदि पुरुष आर्य हैं। इस सम्बन्ध में अपना मत देने के पूर्व हम एक और मत पाठकों के सम्मुख रखना चाहते हैं। इस मत के प्रवर्त्तक प्रो० मार्गेन स्टोर्न नामक रिसर्च स्कालर हैं। नारवे की मानव सभ्यता के तुलनात्मक अध्ययन के लिये स्थापित संस्था ने उपरोक्त प्रोफेसर को भारतवर्ष के सीमान्त प्रदेश से अफगानिस्तान तथा ईरान तक को

---

advocates of the Israelite theory forget that Islam, which is the religion of the Pathans, has very much in common with Judaism and Christianity. The nomenclature and usages can be accounted for by the fact that Islam, Judaism, and Christianity are kincked religions, having their origin in the Jazirat-ul-Arab or the Arab lands, which include Palestine as well as the Hedjaz. History does not throw any light on how and when the Jews moved eastwards from Palestine and colonized the region which we now call Afghanistan. On the other hand, it is crystal clear that the Aryans moved out of central Asia, and in successive waves moved down the Afghan uplands into the Punjab and beyond on their march towards India. It is also an admitted fact that there are many Sanskrit words in the Pushtu language ; many believe that it is derived from Sanskrit. The great white race which we call the Aryans set out from the heart of Asia in these directions. First, through the caucasus to Europe ; secondly to Iran; and lasltly, they moved, after wave, through the Afghan mountains and valleys, to the Indus. They moved down the land of the five rivers to Jamuna, and then spread out to the Gangetic plain and beyond. The movement of the Aryans, which is a historical fact, and the great affinity which the Pashtu language has with Sanskrit, lend considerable weight to the theory that the Pathans are an Aryan race, and are therefore Aryans. This fact received additional weight

जातियों तथा उनकी भाषाओं का अनुसन्धान करने के लिये भेजा था। उन्हीं ने कुछ निष्पक्ष मत अफ़ग़ानिस्तान के सम्बन्ध में दिये हैं। वे लिखते हैं—

"इस बार मैंने चित्राल नामक एक भारतीय राज्य से उत्तरी सीमा प्रान्त तथा हिन्दूकुश तक भ्रमण किया। संसार के इस समूचे भू-भाग में ऐसी कई जातियाँ बसती हैं जिन्होंने आज भी आर्य सभ्यता के चिन्हों को सुरक्षित रक्खा है। ये कई प्रकार की भाषायें बोलती हैं। परन्तु सभी भाषायें हिन्दुओं या भारतीय आर्यों की भिन्न-भिन्न भाषाओं से समानता रखती हैं।

×××यद्यपि ये जातियाँ पहाड़ों, भयङ्कर घाटियों तथा अत्यन्त दुर्गम दर्रों के कारण भारतीय संस्कृति से सर्वथा पृथक हैं तो भी आज तक इन्होंने अति प्राचीन आर्य सभ्यता तथा संस्कृत भाषा के रूप को सुरक्षित रक्खा है।"

नीचे हम एक और उद्धरण उपरोक्त प्रोफ़ेसर का ही देते हैं। यह यद्यपि प्रकट रूप से अफ़ग़ानिस्तान के लिये है, परन्तु फिर भी हमारे कार्य में सहायक होगा, इसी विचार से उद्धृत करते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में काबुल से उत्तर एक ऐसी जाति निवास करती है जो शुद्ध रूप से भारतीय है। यह जाति 'पशाई' नाम से प्रसिद्ध है। इसकी भाषा शुद्ध संस्कृत से मिलती-जुलती है। इस भू-भाग के शिला-लेखों में हिन्दुओं तथा बौद्धों के शिलालेखों का बहुत कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पशाई-जाति बड़ी मनोरंजक जाति है। इसका

---

from observations of George Macmun in his book, *The Romance of the Indian Frontier.* The present author is of the opinion that the claim to Beni-Israel genealogy is a bogus one, and that most of the tribes from Kohistan beyond Kabul down to the Indus are descendents of the old Aryan colonists"

From—"Gold and Guns on the Pathan Frontier."

—*By Abdul Qaiyum.*

वीरगाथा-काव्य बड़ा मनोरञ्जक तथा लोकप्रिय है। यह अपने अड़ोस-पड़ोस की जातियों से, जिनमें हिन्दू-सभ्यता का प्रवेश नहीं हो सका है, भिन्न है।×××।"

इन प्रोफेसर महोदय ने भी जातियों के उद्‌गम सम्बन्धी विरोधों का उत्तर दिया है। पाठकों के लाभार्थ हम उसे भी उद्‌धृत कर देना आवश्यक समझते है।

"कुछ लेखकों का विश्वास है कि ये जातियाँ यूनानी उत्पत्ति की हैं। इस विचार के लोगों ने अपना यह सिद्धान्त प्रकाशित भी किया है। परन्तु यह सिद्धान्त तथ्यहीन तथा निराधार है। इसमें सन्देह नहीं कि नीली आँख तथा मुलायम बालवाली ऐसी बहुत-सी जातियाँ थीं जो रूपरेखा में उत्तरी यूरोप के निवासियों से मिलती-जुलती थीं। प्राचीन आर्य रूपवान होते थे। इसके सिवा अन्य कई विशेषताओं के अतिरिक्त अपने सामाजिक नियमों तथा उपासना पद्धति [इसकी समानता पाठक काफिरिस्तान की चर्चा के समय पायेंगे —ले०] के द्वारा ये लोग प्रमाणित करते हैं कि ये मूलत: आर्यों के ही वंशधर हैं।"*

उपरोक्त विशद विवरण से हम एक निश्चित मत पर पहुँचते हैं। संक्षेप में इस मत को इस प्रकार कह सकते हैं। सीमा प्रान्त के लगभग सभी वर्त्तमान वासी पठान हैं जो अफग़ानिस्तानियों से बहुत मिलते-जुलते हैं। इन पठानों के मूल पुरुष मध्य एशिया से चलने वाले आर्य हैं। दूसरा मत जो यह स्थिर करता है कि पठानों के आदि पुरुष बेनी इसराइली हैं, असत्य प्रमाणित होता है। इसके कारण दो मुख्य हैं। एक तो यह कि इस सिद्धान्त का आधार जो नामकरण, शरीर की गठन तथा रीति-रिवाजों का है, बहुत ही लचर है, दूसरे इसके पक्ष में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिलता कि कब ये यहूदी भारत की ओर आये थे। इसके विपरीत पहले मत के पक्ष में ऐतिहासिक आधार तो है ही साथ ही अन्य आधार भी हैं तथा सामाजिक, धार्मिक रीति-रिवाज

*उपरोक्त विषय हिन्दी की 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के भाग ३०, खंड २, संख्या ५, नवम्बर १९२९ वाले अङ्क के पृष्ठ ५६७ में छपा था। —लेखक

इत्यादि। सामाजिक समानता को पाठक आगे चलकर स्पष्टरूप से जान जायँगे। अन्त में यों कह सकते हैं पठान वस्तुतः मुसलमान आर्य हैं, अर्थात् वह आर्य हैं जिन्होंने समय की पुकार सुनकर इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया था।

भूगोल वाले परिच्छेद में हम लिख आये हैं कि सीमा प्रान्त एक दम पहाड़ी प्रदेश है, इसका परिणाम यह हुआ है कि पठान नामक बड़ी जाति में अनेक उपजातियाँ हैं। जिस प्रकार हमारे ही प्रान्त (संयुक्त प्रान्त) में "पुरबिया", "पछैया", "गोरखपुरी" आदि करके अनेकों उपजातियाँ हैं, उसी प्रकार सीमा प्रान्त में भी यह विभाजन है। परन्तु सीमा प्रान्त में यह विभाजन अधिक स्पष्ट है। वहाँ एक उपजाति का दूसरी उपजाति से यद्यपि धर्म समाज का कोई खास भेद नहीं है, परन्तु फिर भी उसमें से हर एक की मथुरा तीन लोक से न्यारी है। प्रत्येक अपनी-अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाता है। इस प्रकार एक जाति के बीच अनेक उपजातियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं।

उपजातियाँ या कबीले

सिन्धु पार का सारा पठानी देश अनेक उपजातियों से बसा हुआ है। इन उपजातियों की संख्या बहुत बड़ी है, परन्तु प्रत्येक का देश शायद एक बड़े गाँव जैसा ही होगा। इन उपजातियों की नामावली निम्न प्रकार है—

(अ) यूसुफजाई, मोहमंद।
(ब) अफरीदी।
(स) बनरेश।
(द) तूरी।
(क) खटक।
(ख) मारवात।
(ग) भिटानी।
(घ) शिरानी।
(ङ) गराड़पूर।

(च) बाबर।
(छ) मियाँ खेल।
(ज) वज़ीरी।
(झ) महसूद।
(ञ) पोविन्दा।

अब हम उपरोक्त कबाइलों का संक्षिप्त वर्णन देंगे।

यूसुफ़ज़ाई—

यूसुफ़ज़ाइयों के पहाड़ी प्रदेश में खेती नहीं होती, केवल घास चराना ही सम्भव है। अटक के समीप जब सिन्धु नदी मैदान में उतरती है वहीं से युसुफ़ज़ाइयों का देश आरम्भ होता है। इनका देश खैबर के दर्रे तक फैला हुआ है। थोड़ा स्पष्ट करने के लिये दूसरे शब्दों में इस देश का वर्णन यों भी कर सकते हैं। यूसुफ़ज़ाई और मोहमंदों का देश, अफ़ग़ानिस्तान में लालपुरा से आरम्भ होकर सिन्धु के कोहिस्तान तक फैला हुआ है। उनका विस्तार बजौर, दीर, स्वात, बनर, मर्दान ज़िले का बहुत बड़ा भाग तथा काले पहाड़ के पश्चिमी ढाल में छाया हुआ है। यूसुफ़ज़ाइयों ने प्राचीन काल में यह प्रदेश तत्कालीन निवासियों को भगाकर जीता था। स्वात की तत्कालीन जातियाँ सिन्धु के उस पार पूर्व में खदेड़ दी गई थी। अन्य भारतीय जातियों ने काश्मीर के पश्चिमी भाग में भागकर शरण ली कुछ इज्जत के और स्वतन्त्रता के पुजारियों ने तो यह देश छोड़ दिया परन्त कुछ ऐसे भी थे जो वहीं बस गये तथा इस नई विजेता जाति को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया और दासता में रहना स्वीकार कर लिया। स्वात और बजौर के प्राचीन निवासी बौद्ध लोग थे, बौद्ध होने का मतलब यह हुआ कि युद्ध कार्य में वे बिल्कुल निकम्मे हो गये।

यूसुफ़ज़ाई अपने को 'जोजेफ का पुत्र' (Sons of Joseph) कहते हैं।

यूसुफज़ाइयों की यह भूमि बजौर षडयन्त्रों की भूमि है। प्रतिदिन वहाँ नये षड्यन्त्र होते रहते हैं तथा राजनैतिक दिमाग़ के मुल्ला लोगों को अपना काम करने के लिये खूब जगह मिलती है। ये साजिशें

और षड़यन्त्र किसी भी सरकार के प्रति होते हैं। इन जोशीले योद्धाओं के तूफ़ान को रोकना सम्भव नहीं है। परन्तु अब स्वात का वली उठ खड़ा हुआ है। वह अपनी वाकशक्ति से इन यूसुफ़जाइयों को शान्त करने का प्रयत्न कर रहा है। निस्सन्देह वली का यह काम राजनैतिक दृष्टि से बहुत ही महत्व रखता है। कारण यह सीमान्त प्रदेश है और सीमान्त को शान्त रखना शासन की दृष्टि से परमावश्यक है।

काले पहाड़ का नाम इसके ढालों पर फैले जंगलों की सघनता के कारण उपयुक्त ही है। यह काला पहाड़ स्वान केवली के देश में आता है। पूर्व के पहाड़ो पर स्वात के आदिम वासी बसे हुये हैं। ये लोग पठान नहीं हैं। ये लोग वेष-भूषा समाज नीति आदि में आर्य हैं। पश्चिमी भाग यूसुफ़जाइयों से बसा हुआ है। यहाँ के छोटे रईस लोग हमेशा एक दूसरे से लड़ा करते है। युद्ध ही उनका जीवन है। इन रईसों में अम्ब का नवाब मुख्य है। सिन्धु में वहीं एक ऐसा है जो पूर्ण स्वतन्त्र कहा जा सकता है। वह इस स्वतन्त्रता का उपभोग अपनी शक्ति बढ़ाने में करता है। बन्दूक तथा अन्य हथियार गोला-बारूद बनाने के लिये उसका एक कारखाना भी है। इस कारखाने में बड़ी-बड़ी तोपें भी बनती हैं। इन तोपों की मार ३००० गज तक होती है और छोटी-मोटी गढ़ियों को ध्वंस करने में ख़ूब काम करती हैं।

पेशावर की घाटी और मरदान का ज़िला इन यूसुफ़जाइयों के हाथों में है। यूसुफ़जाइयों की सैनिक शक्ति अनुमानतः १ लाख ७० हज़ार मानी जाती है। यह सैनिक छटे-छटे वीर हे जो आधी रात को भी लड़ने को उठ खड़े होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं साहस और वीरता यूसुफ़जाइयों का जन्मगत गुण है। कठिन कार्योंसे उनका इतिहास भरा पड़ा है। जब मुग़ल शक्ति क्षीण होने लगी तो इन्हीं वीरों ने रुहेलखण्ड का उर्वर प्रदेश जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था। भाइट महोदय का मत है कि रामपुर का नवाब आज भी यूसुफ़जाइयों की शक्ति का ज्वलन्त उदाहरण हैं। रामपुर नवाब यूसुफ़जाई ही है।

मोहमंद लोग भी यूसुफ़जाइयों के साथी हैं। इनकी सैनिक शक्ति

भी बहुत बड़ी है और अनुमान है कि वह १५००० से भी अधिक होगी। ये मोहमंद लोग गर्मियों में गर्मी से बचने के लिये पहाड़ों पर चले जाते हैं। इनमें से अधिकांश खानों (Khans) के किसान हैं। इनका देश भी बहुत ज्यादा भयानक एवं पहाड़ी है। अफ़ग़ान के मोहमंद हमेशा अँग्रेजों से लोहा लेने में ही अपनी शक्ति लगाते रहते हैं। सीमा प्रान्त में जब साम्प्रदायिक या अन्य प्रकार के झगड़े होते हैं तो इनको भी अपना कौशल दिखाने का ख़ूब अवसर मिलता है। इन अफग़ान मोहमंदों पर अँग्रेज बम वर्षा करके अपना वैर भी नहीं निकाल सकते। इसका कारण अफ़ग़ान और उनके बीच की हुई सन्धि है, जिसके कारण दोनों देशों में सीमान्त निश्चित हो गया है। ये मोहमंद अफ़ग़ान सरकार की शरण में बैठ जाते हैं और अफ़ग़ान सरकार उनकी रक्षा करती है। अफ़ग़ानी मुल्ला प्रायः इन लोगों को अँग्रेजों के विरुद्ध उभाड़ते रहते हैं। चूँकि उस ओर के मोहमंद एकदम अपढ़, गँवार एवं जंगली हैं, इसलिये उनको उभाड़ने में मुल्ला लोग ख़ूब मजा लूटते हैं। उनकी अशिक्षा उत्तेजक सिद्ध होती है। नीचे की ओर के मोहमंद अँग्रेजों की भाषा में 'सभ्य' हैं तथा इसके लिये उनको सरकार [ब्रिटिश सरकार] रुपया भी देती है। सैकड़ों आक्रमण इस जाति पर हुए हैं और ब्रिटिश सरकार ने उनकी मदद भी की है।

यह यूसुफजाइयों का देश रहा। यूसुफ़जाई बड़ी शक्तिशाली जाति है, तथा अन्य पठानों की भाँति यह भी इसलाम धर्म के अनुयायी हैं। इसलाम धर्म पर वे भी बड़ी कट्टरता से जान देते हैं।

अफ़रीदी:—

अफ़रीदी विश्व विश्रुत हैं। उनका सहास, उनकी शक्ति, उनकी वीरता का कोई सानी नहीं है। उनके कार्यों का इतिहास हजारों लोम-हर्षक एवं रोमांचकारी घटनाओं से आपूर्ण है। सम्पूर्ण पठान जाति का सच्चा और पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व अफ़रीदी करते हैं। यदि पठानों का वीर तेज देखना है, उनका स्वाभिमान परखना है तो अफ़रीदियों के देश में चले आइये।

अफ़रीदियों की उत्पत्ति के विषय में प्रसिद्ध है कि वे राजपूतों के सहजाती भाई हैं। ग्रीक इतिहासकारों ने उन्हें अपरेटे (Aparoetae) कहा है। उनसे डरकर सिकन्दर को अपना मार्ग बदलना पड़ा था। अफ़रीदियों का देश है तीरा तथा खैबर का दर्रा। तीरा और खैबर के दर्रे में अफ़रीदियों का स्वच्छन्द आवास है। जब आप खैबर की ओर पहुँचेगे तो देखेंगे कि कन्धे पर लटकती कारतूस की पेटी हाथ में रायफल लिये अलमस्त कदमों से और कभी-कभी कान खड़ेकर चौकन्नी आखों से जब चारों ओर देखता है तब उसकी राइफल का कुन्दा उसकी छाती से लग जाता है, अफ़रीदी जवान चला आरहा है। यदि वह जवान भी न हुआ तो भी आपको निराशा होगी। बुड्ढा होने पर एक भेद आपको लक्षित पड़ेगा वह है उसके सफ़ेद बालों तथा दाढ़ी का। लेकिन सफ़ेद बालों और सफ़ेद दाढ़ी के कारण आप कहीं उसकी कमर झुकी हुई न समझ लें। समझ लेना सम्भव ही है कारण यदि आप हिन्दुस्तान के किसी सूबे के हैं तो आपकी आँखें तो ऐसे दृश्यों को देखती रही हैं।

तीरा बहुत बड़ा पहाड़ी भू भाग है जिसके बीच-बीच में हरियाली टेढ़ी-मेढ़ी घाटियाँ बिखरी हुई हैं। तीरा की स्थिति पश्चिम से पूर्व की ओर है। अर्थात् इसकी बनावट ऐसी है कि एक छोर पश्चिम में मालूम पड़ता है और दूसरा पूर्व में जाकर बनता है। तीरा की प्रमुख घाटियों में बजार और बारा के नाम उल्लेखनीय हैं। अफ़रीदियों के देश का बहुत बड़ा भू भाग जाड़ों में बर्फ से ढक जाता है, परिणाम-स्वरूप वहाँ रहना असम्भव हो जाता है। इसलिये शरद काल में अफ़रीदी पेशावर की ओर चले जाते हैं।

अफ़रीदियों की आठ मुख्य बस्तियाँ हैं। ये आपस में भी लड़ा करते हैं।

अफ़रीदियों की सैनिक शक्ति बहुत बड़ी है। लगभग ५१ हज़ार योद्धा निरंतर अपनी बन्दूकों पर हाथ रखे तैयार बैठे रहते हैं। इनका यही है किसी कठोर काम की, किसी मारपीट की तलाश करना। युद्ध

मानो उनकी दिनचर्या हो। परन्तु युद्ध ही युद्ध है अन्यथा फाके मस्ती पर ही वे लोग अपना पेट भरते हैं। अपने अन्य सहजातियों (पठान) की भाँति इनका भी देश एक दम उजाड़ है। यहाँ की भी वसुन्धरा बन्ध्या है। परिणाम स्पष्ट है कि बेचारों को रोटी के लिये बन्दूक उठानी पड़ती है, वे बेबस हैं। और फिर कंगाली में आटा गीला। कुछ जातियाँ हैं जिन्हें अँग्रेज़ सरकार ने साहस दिया है, कृपा कर अपनी सेना में भरती कर लिया है। तथा इसी प्रकार दो रोटियों का प्रबन्ध कर दिया है। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इन अफरीदियों के हाथों बड़ी कठिनाइयाँ सही हैं। लगातार चपतों से हमारी सरकार बहुत चिढ़ गई है, और चिढ़े भी क्यों नहीं। मार ही ऐसी पड़ी है। इस मार का बदला अँग्रेजों ने इस प्रकार लिया है कि कोई भी अफ़रीदी सेना में भरती नहीं हो सकता जिसका मतलब हुआ कि कोई भी अफ़रीदी अग्रेजी सेना के किसी अफसर का गला काटे बिना खाना नहीं पा सकता। लेकिन एक समय वह भी था जब इन्हीं अफ़रीदियों के चार हज़ार से ऊपर साथी यूनियन जेक की छाया में लड़े थे। आक्रमणों के कारण अफ़रीदियों को जो सम्पत्ति हानि होती है उसके एक-एक टुकड़े का प्रभाव बहुत बड़ा बनकर अफ़रीदियों को सताता है।

परन्तु सारी आफत की जड़ ये मुल्ला लोग हैं। जो प्रायः अपना उल्लू सीधा करने की तलाश में इनको लड़ाने की योजनायें बनाते रहते हैं परन्तु साधारण पठानों में अफरीदियों की बुद्धि और समझ का दर्जा ऊँचा है। 'इसलाम खतरे में हैं' जैसे नारों से ये लोग उतनी जल्दी नहीं भड़कते, जितनी जल्दी इनके अन्य साथी पठान। जो भी हो अफरीदियों की उद्दण्डता के मूल कारण हैं ये मुल्ला लोग ही।

दक्षिणी तीरा में ओरकजाईयों की बस्तियाँ हैं। ये भी अफरीदियों की ही भाँति शक्ति सम्पन्न हैं। परन्तु इन दोनों के व्यवहार में भारी अन्तर है इनकी सैनिक शक्ति अनुमान से ३०० हजार से भी ऊपर समझी जाती है। सामाना के पहाड़ी भूभाग तथा पहाड़ी तराई के निकट कोहाट जिले में इनका अड्डा जमा है।'

ओरकज़ई भी इसलाम धर्म के अनुयायी है। परन्तु इनमें, जैसा कि हमारे यहाँ भी हैं शिया और सुन्नी दो दल हैं। हमारे यहाँ की तरह ही इन दलों में भी चूहे बिल्ली जैसा सम्बन्ध है। चूँकि शत्रु का शत्रु मित्र हो सकता है इसलिये सुन्नी मुसलमानों से अपना वैर चुकाने उन्हें नीचा दिखाने की इच्छा से इनका शिया दल अँग्रेज़ोंसे मिला रहता है। परिणामस्वरूप जब कभी इनमें आपसी झगड़े चलते हैं। अँग्रेज़ों का बन्दर न्याय आ जमता है। तभी तो शिया लोगों से छीनी हुइ ज़मीन ब्रिटिश सरकार की शरण में आजाती है।

कोहार के वासी ओराकज़ई बहुत उत्पाती हैं तथा समय समय पर मौका मिलने पर खूब मन माने झगड़े फिसाद करते हैं। एक बार सन् १८६७ ई० में उठ खड़े हुये तो राजद्रोह खड़ा कर दिया। अँग्रेज़ों का एक छोटा सा क़िला था, उस पर बंदूक के जोर से अधिकार जमा लिया। जीजान से लड़े, परन्तु परिणाम शुभ नहीं हुआ, यानी भारी हार खाकर भाग गये। सन् १६१६ के अफगान युद्ध में इन्होंने ख़ूब दृढ़ होकर अपनी स्थिति स्थिर रखी। हाँ युद्ध में भाग किसी भी तरफ से नहीं लिया।

अफ़रीदियों और उरकज़ाइयों की प्रवृत्ति में एक मौलिक भेद यह कि जहाँ अफरीदी निरे जंगली से हैं, काम कुछ नहीं करते, अरकज़ाई उतने ठलुआ नहीं हैं हज़ारों उरकज़ाई आज बम्बई की मिलों में काम कर रहे हैं तथा अपनी जीविका चलाते हैं। बहुत से उरकज़ाइयों ने अँग्रेज़ी जलयानों में भी काम किया है। ये लोग स्वयं अपना पेट तो भरते ही हैं साथ ही अपने इस देश में घरवालों को भी रुपया भेजते हैं इस प्रकार दोनों की उदर पूर्ति भली प्रकार हो जाती है।

इस अंश में पाठकों को दो जातियों अर्थात अफ़रीदियों तथा उरकज़ाइयों की स्थित, दशा आदि का पता चल गया। अफ़रीदियों से उरकज़ाइयों में अधिक सभ्यता है, यह अँग्रेज़ों के शब्दों में। जो भी हो अफरीदी अपराजेय ही बने हैं उनकी शक्ति अँग्रेज़ों के लिये भारी समस्या है।

बंगेश

बंगेश लोगोंका घर कोहाट की मीरनजाईतथा अपर कुर्रम घाटियाँ हैं। बंगेश जाति यूसुफजाईयों या अफरीदियों की भाँति बड़े एवं उतने शक्ति शाली नहीं हैं। उनके रहन सहन में किसी उल्लेखनीय विशेषता का उल्लेख नहीं किया जा सकता। बंगेश लोगोंकी सैनिक शक्ति भी थोड़ी है। केवल ६ हजार के लगभग योद्धा बंगेश की इस उपजाति में हैं।

तूरीः—

सफेद कोह (पहाड़) की घाटियों के आस पास का ही प्रदेश आजाद कबाइलों का देश है। इस ओर फलदार वृक्षों से लदी हुयी मनोहर घाटियाँ हैं। सुन्दर वेगवती नदियाँ पहाड़ो की खोहों से उछलती कूदती मैदानों और घाटियों में उतरती हैं। सारा प्रान्त फलों से लदा है। हमारे यहाँ के रईस भी जिन सेब, अंगूर, नाशपाती आदि के लिये तरसते हैं वे वहाँ मारे मारे फिरते हैं ठीक उसी भाव से जिस भाव बेवूफ राजा की अन्धेर नगरी में सारी चीजें फिरती थीं अर्थात टके सेर। कुर्रम की घाटियाँ काश्मीर के बागों से होड़ लेती हैं। ऐसा है मनोरम देश इन तूरियों का। यही प्रदेश है जहाँ तूरी उपजाति की बन्दूकें दहाड़ती हैं। तूरियों के पूर्व यहाँ बंगेश लोग बसते थे, परन्तु अब तूरियों ने ज्यादातर जगहों से बंगेशों को निकाल दिया है। इनकी सैनिक शक्ति भी ख़ूब बढ़ चढ़कर है। लगभग ६ हजार सिपाही दिनरात अपनी मूँछे उमेठे बैठे रहते हैं।

तूरी सुन्दर व्यक्तित्ववाला होता है। उसका सुगठित शरीर, तथा दृढ़ माँस पेशियाँ देखकर कोई भी पहिचान सकता है कि यह तूरी है। तूरियों की स्त्रियाँ भी अपनी सुन्दरता में अद्वितीय हैं। उनका सुन्दर भरा हुआ शरीर, संगमरमर या दूध जैसा गोरा रंग अत्यंत मोहक है। किसी भी यात्री की दृष्टि में आकर्षण पैदाकर देने की शक्ति

इन स्त्रियों में अपनी है। पिछली १६ वीं शताब्दी के मध्य में इस प्रदेश पर अफ़गानों ने अधिकार कर लिया था। तब से बहुत दिनों तक यहाँ अफ़गानों का ही कब्ज़ा रहा। सन १८६७ ई० में जब ब्रिटिश सरकार ने आक्रमण किया, और अफ़गानों को इस देश से दूर भगा दिया, तब से अब तक वह अँग्रेज़ी राज्य की हद में आता है। कथन है कि अँग्रेज़ों के आगमन पर इन तूरियों ने उनका विरोध न कर स्वागत ही किया तथा उन्हें सहर्ष अपने देश में घुसने दिया। अफ़गानों को तूरियों के देश से निकाल देने के दो वर्ष बाद ही ब्रिटिश सरकार ने अपनी सेना लौटा ली, तथा तूरियों को निश्चिन्त छोड़ दिया।

तूरियों का देश झगड़ों और बलवों का देश है। वहाँ आये दिन मारकाट तथा खून ख़राबी होती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि उस देश में किसी भी प्रकार की सरकार स्थापित नहीं हो सकी है। यदि वहाँ कोई सरकार है तो वह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत से ही समझी जा सकती है। वहाँ तो सरकार के नाम पर मनमानी चलती है। जब से ब्रिटिश सरकार ने अपना क़दम हटाया तब से वहाँ कोई भी सरकार एक दिन भी ठहर सकी है, इसमें सन्देह है। एक बार सन् १८६३ इन लोगों को लेकर एक सेना बनाई गई, जो अपनी जाति गुण के अनुसार ही कर्त्तव्य परायणा तथा कर्मठ सिद्ध हुई। तूरियों के देश का युद्ध की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। गुरिल्ला युद्ध का अच्छा मैदान तूरियों की यह घाटियाँ हैं। अफ़गानी सेना की सहायक जो खोस्ट जाति है, उसके आक्रमणों का भय हमेशा बना रहता, यदि तूरियों का देश ऐसा न होता। तीरा देश से भी यह जुड़ा हुआ है।

तात्पर्य यह कि तूरियों की जाति यद्यपि उतनी आज़ाद नहीं है तथापि वीर अवश्य है। तूरियों की यह जाति उस गौरव से खड़ी नहीं हो सकती जिससे अफरीदी, और वज़ीरी खड़े हो सकते हैं। तूरियों का देश निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण है।

खटकः—

स्थाई जिलों में बसने वाली एक और जाति का नाम खटक है। ये लोग सुदूर दक्षिण में टेरी तथा पेशावर की नौशेरा तहसील में रहते हैं। इनका देश उपजाऊ एवं उर्वर है। ये अपेक्षाकृत शान्त हैं। उनकी सैनिक शक्ति भी ख़ूब बड़ी है और इसकी संख्या लगभग ३२ हजार होगी ऐसा अनुमान किया जाता है। खटक लोगों के बीच भी बड़े बड़े खान हैं। इन खानों में टेरी का खान प्रसिद्ध व्यक्ति है। टेरी के खान ने अपना प्रभाव इन लोगों पर ख़ूब जमा रखा है। जातीय दृष्टि से खटक लोग पठानी राजपूतों तथा पंजाबी मुसलमानों के बीच की कड़ी की तरह हैं। दोनों से रूप रंग में मिलते भी हैं।

मारवात, भिटानी, शिरानी, गंडपूर, बाबर, मियाँ खेल, और पोविंदा

ये उपजातियाँ छोटी-छोटी हैं, तथा उसी प्रकार हैं जैसे आठ कनौजिया नौ चूल्हे। यों ये जातियाँ भी किसी प्रकार अपनी आजादी को रखे हुये हैं। इनमें जो जातियाँ स्थाई जिलों में रहती हैं उनकी स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं, वे लगभग पूर्णतः ही अँग्रेज सरकार के हाथों में है। यथा मारवात लोग बन्नू जिले की लक्की तहसील में बसे हुये हैं। डेराइस्माइलख़ाँ में भिटानी तथा तख्ते-सुलेमान के आस-पास शिरानी लोगों की बस्तियाँ हैं। इसी भूमि के आस-पास गंडपूर, बाबर, मियाँ खेल और कुण्डी लोगों के गाँव हैं। टोची और कुर्रम के नीचे पोविन्दा लोग हैं जो अफ़ग़ानिस्तानी हैं। पोविन्दा लोग खिरग़ीजों की तरह हमेशा इधर-उधर घूमते-फिरते रहते हैं। हाँ यह गड़रिये नहीं हैं और न इनके पास भेड़ें ही हैं। इनका भी पेशा युद्ध है। साथ ही ये लोग थोड़ा बहुत व्यापार आदि भी करते हैं। जाड़ों के दिनों में ये लोग अपना देश छोड़ देते हैं तथा पूर्व की ओर सिन्धु नदी के पार पंजाब तथा और भी नीचे हिन्दुस्तान के प्रान्तों में चली आती हैं।

ऊपर दी हुई संख्या की सूची के क्रम को हमने सकारण छोड़ दिया है। जैसा कि हम अनेक स्थानों पर सूचित करते आये हैं वजीरी और

महसूद बहुत महत्व पूर्ण जातियाँ हैं। उनका विशद विवरण जान लेना आवश्यक है, इसलिये अब हम इन्हीं लोगों का हाल लिखते हैं।

वज़ीरी और महसूद:—

वज़ीरिस्तान की भौगोलिक स्थित का कुछ विवरण पाठक इस पुस्तक के दूसरे परिच्छेद में पा चुके हैं। ६००० वर्ग मील का यह देश पूर्व में डेरा इस्माइलखाँ और बन्नू के ज़िलों से घिरा हुआ है। पश्चिम में सुलेमान पहाड़ से बनी हुई अफ़गानिस्तान की सीमा है। उत्तर में कुर्रम की घाटी तथा दक्षिण में बिलोचिस्तान है। पश्चिमी वज़ीरिस्तान में भूमि एक दम उजाड़ है वहाँ निरे जंगल इत्यादि है। जहाँ सम्भव होता है वहाँ पैदावार भी हो जाती है। तात्पर्य यह कि पेशे से वज़ीरी लोग भेड़ इत्यादि चराने का काम करते हैं।

वज़ीरिस्तान का यह प्रान्त भी एक नहीं अनेक छोटी-छोटी जातियों में बँटा हुआ है। जातियों की दृष्टि से पूरे वज़ीरिस्तान को चार भागों में बाँटा जा सकता है जो इस प्रकार हैं—

१—उत्तर में टोची नाम का प्रान्त। यह उतमनज़ाई वज़ीरियों का घर है।

२—पूर्वीय प्रान्त। इसको अहमदज़ाइयों का देश कहते हैं। इसमें अहमदज़ाई ही प्रधानतः रहते हैं।

३—दक्षिण-पश्चिम का पहाड़ी भाग। इसके निवासियों को महसूद कहते हैं।

४—चौथा और अन्तिम प्रान्तर दक्षिण पूर्व का है। इसके निवासी भिटानी हैं।

श्री आसफअली जी का मत है कि ये वज़ीरी जो अनेक उपजातियों में विभक्त हैं दरवेश खेल के एक नाम से पुकारे जा सकते हैं। इस प्रकार महसूद भी दरवेश खेल ही हुये। किन्तु ब्राइट महोदय ने इन दोनों का उल्लेख अलग-अलग किया है। अब्दुल क़य्यूम साहब ने दरवेश खेल का उल्लेख इस गणना में अलग नहीं किया परन्तु वे भी वज़ीरी और महसूद कह कर भिन्नता दिखाते हैं। जो भी हो हमें भी

आसफ़अली का मत ही अधिक उपयुक्त मालूम होता है। सम्पूर्ण वज़ीरिस्तान के वासी तो दरवेश खेल हैं और महसूद उन्हीं की एक शाखा है।

ये सभी उपजातियाँ एक ही मूल की हैं। उनका उद्गम स्थल एक है। ये दरवेशखेल वज़ीरिस्तान ही में नहीं अफ़ग़ानिस्तान की सीमा पर भी पाये जाते हैं। अफ़गानिस्तान में इनका स्थान बिरमल है जो सभी वज़ीरियों का शताब्दियों पूर्व आदि स्थान था। वजीरिस्तान के दरवेशखेल लोगों की आबादी की गणना ठीक से नहीं हो सकी है, कारण वहाँ की गणना करना बहुत कठिन काम है, तो भी अनुमान से वे ३ लाख माने जाते हैं।

महसूदों के योद्धाओं की संख्या १८००० मानी जाती है, जिसमें कम से कम १४ हजार बन्दूकची हैं। शेष में, जिन्हें ब्राइट महोदय दरवेशखेल कहते हैं, २७ हजार लड़ाकू वीरों के होने का अनुमान किया जाता है। इनमें से १५ हज़ार की बड़ी संख्या अच्छे आधुनिक हथियारों से लैस समझी जाती है। दोनों ही लोग प्रायः आपस में सिर फुटौवल करते रहते हैं।

वजीरी गुरिल्ला युद्ध में, बहुत चतुर हैं। लूटमार करके अवसर पड़ने पर आक्रमण करके ये चतुर एवं फुर्तीले वीर झटपट जाने कहाँ गायब हो जाते हैं पता ही नहीं चलता और सरकारी सेना तमाशा सा ही देखती रह जाती है। जैसा कि कहा जा चुका है इन दरवेशखेल की कुछ उपजातियाँ अफ़गानिस्तान में भी रहती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि युद्ध के समय प्रायः ये लोग अफ़गानिस्तान से भी सैनिक सहायता पा जाते हैं। जब कभी अँग्रेजोंके आक्रमण होते हैं तो ये लोग अपना देश छोड़कर अफ़गानिस्तान में जा बसते हैं, जहाँ उन्हें शरण भी मिलती है।

वज़ीरियों में अराजकता अत्यधिक विकराल रूप से फैली है। किसी भी प्रकार का क़ानून जिसे सरकारी कहा जा सके वहाँ टिकना सम्भव नहीं। साथ ही वज़ीरियों का धार्मिक जोश भी बहुत अधिक तीव्र है। वे धर्म को खतरे में सुनकर जल्दी बिगड़ जाते हैं। फलस्वरूप मुल्लाओं की यहाँ खूब दाल गलती है। यद्यपि उन्हें युद्ध जैसे काम के लिये प्रेरित

करना बहुत सहज है तथापि ब्रिटिश सभ्यता नाम मात्र को भी उनके देश में नहीं पहुँच सकी है। अँग्रेज़ी सरकार उन्हें 'मार्ग पर लाने' के हज़ार प्रयत्न कर चुकी है परन्तु क्या वह आज भी सफल हो सकी है ? और अब भविष्य में तो होगी ही क्या ? सन् १८५२ ई० से लगाकर अब तक अँग्रेज़ों ने १७ बार वज़ीरिस्तान पर आक्रमण किया है परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। सन् १९१९--२० ई० का आक्रमण इतिहासमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। परन्तु यह महत्त्वपूर्ण स्थान केवल इसीलिये है चूँकि इस आक्रमण की तैयारियाँ बहुत भारी थीं। ढेर का ढेर रुपया भी खर्च किया गया था। बाद के हमले भी कुछ वैसे ही हुए थे। यद्यपि स्थिति कुछ शान्त होती जाती है परन्तु फिर भी बन्नू-निवासियों को आराम नहीं मिलता। टोची की घाटी के दावरों की दशा भी ऐसी ही करुण है। और वज़ीरी उनके भी प्राणों के सौदागर बने फिरते हैं।

आज महसूद चारों ओर शत्रुओं से घिर गये हैं। उनके लिये जीना दूभर हो गया है। परन्तु एक समय था, जब अँग्रेज़ों की शक्ति इतनी नहीं बढ़ी थी जब महसूद बन्नू को चारों ओर घेरकर उसी प्रकार बैठे थे जैसे मनुष्य माँस-भक्षियों का कोई दल चारों ओर से किसी शिकार को घेरकर बैठ जाता है। सच तो यह है कि तब वज़ीरियों का फैलाव कोहाट से लेकर गोमल तक था। और फिर उनका देश भी बड़े महत्त्व के स्थान पर है। डेरा जाट पर उनका रहना हिन्दुस्तान के लिये भारी राजनैतिक अर्थ रखता है।

जाड़ों में वज़ीरी लोग पहाड़ों से उतर कर खुले मैदान में आ जाते हैं। उस समय ब्रिटिश सरकार का दाँव होता था। परन्तु आज वह भी नहीं रहा। ऐसे स्थान पर भी वज़ीरी निर्द्वंद्व भाव से छाती खोलकर घूमता है, किसकी मज़ाल कि हाथ भी लगा सके। कारण आज उनके पास आधुनिक ढङ्ग के बढ़िया-बढ़िया हथियार हैं। जिनके सामने अँग्रेज़ी सिपाही भी काँप जाते हैं। सन् १८८० की दशाब्दी में अफ़ग़ान

के अमीरों ने वजीरिस्तान पर अपना हाथ फैलाना चाहा था, परन्तु अँग्रेजों ने उसे धकेल दिया, और तब से वह चुप हैं।

सामाजिक दृष्टिकोण को सामने रखकर देखने पर विदित होगा कि वजीरी लोग आर्यों से मिलते-जुलते हैं। उनमें भी संयुक्त परिवार की प्रथा है। पर्दा उनमें भी नहीं माना जाता। इसके अतिरिक्त पंचायत पुरोहित आदि की भी समानतायें हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र किया जायगा। वजीरी लोगों तथा राजपूतों में अनेक समानतायें हैं।

यह हुआ वजीरिस्तान के दरवेशखेलों का हाल। इस प्रकार पाठक संक्षेप में सीमा प्रान्त की लगभग सभी उपजातियों से परिचित हो गये हैं। परंतु इसके बीच भी हमें एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रान्त का नहीं भूलना चाहिये। पाठकों को स्मरण हो गया होगा कि एक स्थान पर हम काफिरिस्तान की बात कर आये हैं। उस समय वहाँ सम्भव नहीं था कि काफिरों का विशेष विवरण दिया जा सके।

किन्तु उस मनोरंजक विवरण के पूर्व हमें अन्य कई प्रश्नों के विषय में समझ लेना होगा। अभी तक हमने पठानों की विभिन्न उपजातियों से निवास स्थान, मूल, उनकी सैनिक शक्ति आदि के विषय में कुछ परिचय दिया था। अब हम पूरे पठान देश को लेकर पठानों के व्यक्तिगत चरित्र तथा सामाजिक जीवन की चर्चा करेंगे।

पठान का व्यक्तित्व

पठान के व्यक्तित्व की कल्पना पाठक किसी नवयुवक सुन्दर एवं स्वस्थ पंजाबी को देखकर तथा राजपूत को देखकर कर सकते हैं। पहाड़ों के हिमाच्छादित शिखरों को छूकर पठान भी गोरा बन गया है। उनका गौरांग रूप देखकर ही कदाचित कुछ उपन्यासकारों को स्वर्गीय देवताओं की कल्पना मिली थी, ऐसे सुन्दर हैं वे पठान। उनके शरीर की गठन अत्यन्त सुसंगठित होती है। जिस पर तुर्रा यह कि पठान बड़े निर्द्वंद्व तथा हँसमुख होते हैं। उनके इस स्वभाव का प्रभाव उनके शरीर पर, उनकी मुखाकृति पर यह पड़ता है कि आप कभी भी मिलें पठान आपको

प्रसन्नमुख ही मिलेगा। हाँ, दूसरी अवस्था क्रोध की भी है जब वह रौद्र रूप भी बना लेता है। खान अब्दुल ग़फ्फार खाँ के चित्र को देख कर हम पठान के शारीरिक रंग रूप की तो कल्पना कर सकते हैं, परंतु पहनावे आदि में पठानों का दूसरा ही रूप है। खान साहब तो गाँधीजी के भक्त हैं, और जिस प्रकार गाँधीजी की वेष-भूषा उनके प्रत्येक संगी-साथी का प्रतिनिधित्व नहीं करती उसी प्रकार खान अब्दुल ग़फ्फार खाँ की वेष-भूषा केवल कांग्रेसी लोगों का ही रूप दिखाती है। साधारणतः इस ठण्डे प्रदेश में पठान लोग प्रायः समयानुसार ख़ूब कपड़े पहनते हैं। लेकिन आप किसी पठान के पास जायें तो कृपया या तो अपनी नाक पर रूमाल लगालें या उससे चार क़दम दूर हटकर खड़े हों। यह चेतावनी इसीलिये दे दी है कि आपको जानना चाहिए कि पठान लोग भी गन्दे रहने में बहुत आगे हैं। जुआँ जैसे जानवरों का उनके शरीर में निस्संदेह ही ख़ूब स्वागत होता होगा, वे तो चाहे महल बनाकर रहते होंगे।

साधारणतया पठान आपको लम्बा-सा ढीला-ढीला कुरता पहने, सिर पर हमारे यहाँ के किसानों की तरह मुँड़ासा (साफा) बाँधे तथा एक ऊँची-ऊँची धोती पहने मिलेगा। कभी-कभी पाजामा भी पहनते हैं तथा वासकट भी। यही उनका युद्धवेश भी है। कन्धे पर लटकती हुई बन्दूक और कमर तक आती हुई कारतूस की पेटी पठान की खास पहिचान है। यदि पठान के हाथ से बन्दूक छीन ली जाय, और कारतूस की पेटी उतार ली जाये तो वह हमारे यहाँ के किसी अच्छे कसरती जवान की तरह रह जायगा। परन्तु कारतूस की पेटी और बंदूक कैसे छीन ली जाय, इसी से तो पठान पठान है। यह तो रहा आज़ाद कबाइलों के पठानों का रूप, परंतु स्थाई ज़िलों आदि के पठानों में अब थोड़ी आधुनिकता आ गई है। यदि आप हिन्दू हैं तो कदाचित सोचते होंगे कि अपने यहाँ की तरह वहाँ भी पहनावे से हिन्दू को पहचान लेंगे। परंतु इस धोखे में मत रहिये। वहाँ तुर्की टोपी और 'गाँधी कैप' नहीं है, वहाँ तो हिंदू-मुसलमान सभी एक रूप हैं। शरीर की सुन्दर

गठन पर जो उन्हें दैवी पुरस्कार में मिली है, छाई जातीय पोशाक में वे अत्यंत भव्य प्रतीत होते हैं।*

मार्गेटस्टीर्न ने पठानों के रूप का 'नीली आँख वाली तथा मुलायम बाल वाली' जाति कहकर उल्लेख किया है। सच तो यह है कि पठानों में अब भी आर्यत्व अधिकांश में शेष है। हिंदी के कवि की पंक्ति— "तुम आर्यों के पौरुष महान्" पठानों पर बहुत कुछ उतर सकती है।

पठान स्त्रियों की कल्पना के लिये हम पाठकों को जाट स्त्री की ओर ले जाना चाहते हैं। इन दो में समानता केवल शरीर की गठन की है। अन्यथा पठान स्त्री अधिक रूपवान एवं गौरवर्णी होती है। चूँकि पठानों में पर्दा का रिवाज नहीं है। इसलिये सम्भव है आप किसी पठान युवती को अल्हड़ता से मुँह उघाड़े जाते देख झिझक उठें। पठान स्त्रियाँ भी भारतीय किसान स्त्रियों की भाँति ही खेतों में काम करती हैं या पशु चराती हैं।

पठान का वैयक्तिक चरित्र

'पठान पठान है' कहकर ही हम पठान के चरित्र का निर्देश कर सकते हैं। संसार की कोई भी जाति पठान के समान होगी, ऐसी पूर्णोपमा की आशा हमें नहीं है। पठान का पौरुष, स्वाभिमान, शरणागत रक्षा की तुलना हम आदर्श क्षत्रियों से ही कर सकते हैं। आदर्श कहने से हमारा तात्पर्य कुछ विशेष है। आज जो 'क्षत्रिय' होने का 'टिकट' लगाये घूमते हैं उनमें कितना क्षत्रित्व शेष है यह तो वही जानें परंतु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि पठानों में यह क्षत्रित्व अवश्य बहुत मात्रा में है। यहाँ हम पठान की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे। किंतु इसके पूर्व एक उल्लेख करदें। जैसा कि पाठक विभिन्न उपजातियों के विवरण में पढ़ आये हैं, सभी जातियों के दृष्टिकोण में बहुत भेद है। पठानों की उपजातियों में यह भेद अनेक

* "Gifted with a remarkably fine physique, they look magnificent in their national dress."

—*Abdul Qaiyum.*

दिशाओं में लक्षित होता है। यथा एक पढ़ा-लिखा खान जब किसी अँग्रेज़ से मिलेगा तो बड़ी उत्सुकता तथा आदर के साथ उसका स्वागत करेगा, परंतु इसके विपरीत यदि किसी वज़ीरी को कोई अँग्रेज़ या यूरोपीय मिल जाय तो वह छुरा लेकर उसका गला काटने के लिये दौड़ पड़ेगा। और यह सुकृत्य वह खुदा के नाम पर करेगा, उसी खुदा के नाम पर जो .कुरान की भाषा में दयावान एवं कृपालु है। उनके इस काम को देखकर कुरान की यह आयत व्यंग्य मालूम पड़ती है। पठान का छुरा आँख मूँद कर चलता है। तात्पर्य यह कि अब हम जो वैयक्तिक चरित्र लिखेंगे उसे पाठक आज़ाद कबीलों के पठानों पर ही अधिक उपयुक्तता से लागू होते देखेंगे।

युद्ध-प्रियता—

पठान का सबसे बड़ा गुण युद्ध-प्रियता है। एक जाति के विषय में सुना जाता है कि उसके लड़के बचपन से ही नुकीले पत्थर मार मारकर पक्के किये जाते हैं। पाठक विश्वास कर सकते हैं कि निस्सन्देह कुछ ऐसी ही पठानों के बालकों पर बीतती होगी। तभी तो क़य्यूम महाशय लिखते हैं—

"वे जन्मजात योद्धा होते हैं, उनके साहस पर कौन उँगली उठा सकता है? उनके निशाने अचूक होते हैं, जिसके कारण एक भी मूल्य-वान कारतूस बेकार नहीं जाता।"

१४ वर्ष की सीमा पार करते ही पठान का लड़का बन्दूक बाँधकर चलता है जब कि हमारे यहाँ वह उम्र, हौवा, भूत, चुड़ैल आदि से डरने की होती है। आरम्भ ही में बच्चों में पठान लोग एक मंत्र और फूँक देते हैं। यह मंत्र है अविश्वास, सन्देह और शङ्का का। उन्हें शुरू से ही सिखाया जाता है कि अपने पड़ोसी की ओर हमेशा टेढ़ी निगाह करके देखें तथा कुछ भी होने पर यों ही डरपोक की तरह भाग न आयें डटकर मुकाबला करें। तभी तो पठान के बच्चे हैं।

इस युद्ध-प्रियता का एक कारण उनके देश की ज़मीन भी है। जिस प्रकार भीष्म पितामह के लिये रणक्षेत्र में अर्जुन ने बाण मारकर पानी

निकाला था, कुछ वैसा ही भीष्म प्रयत्न जीवन निर्वाह के लिये इन पठानों को भी करना पड़ता है। भोजन के अतिरिक्त दूसरी समस्या स्वतन्त्रता की है, उसकी रक्षा के लिये भी आवश्यक है कि शत्रु का टोप बन्दूक से उड़ा दिया जाय।

यद्यपि यह सत्य है कि पठानों के पास न तो 'चुगलख़ोर'* (वायु-यान) ही हैं और न यान विध्वंसक बड़ी-बड़ी तोपें ही। उनके पास राकेट बम्ब भी नहीं हैं और टैङ्क भी नहीं। परन्तु फिर भी वे बहुत पीछे नहीं हैं। अच्छी-अच्छी राइफिलें, और छोटी-मोटी तोपें भी उनके हाथों में, जिनका वे खूब अच्छी प्रकार उपयोग करना भी जानते हैं। यानी वे बड़े कुशल निशानेबाज़ हैं, जिससे उनकी एक-एक गोली सार्थक जाती है। पठान लोगों के युद्ध दोनों प्रकार के हुए हैं। यानी आक्रमक (Offensive) और रक्षात्मक (Defensive) भी। परन्तु प्रायः वे रक्षात्मक युद्ध में ही अधिक प्रवृत्त रहते हैं। जब जब ब्रिटिश सरकार के आक्रमण होते हैं तब तब उन्हें छिपकर या भागकर रक्षा करनी पड़ती है। आक्रमक युद्धों में वे स्थाई ज़िलों आदि के वासियों पर हमले करते हैं, तथा उनकी सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लेते हैं। आक्रमण में उनकी नीति डाकुओं जैसी होती है। यानी वे जब आक्रमण करते हैं तो पराजितों की हानि चार प्रकार की होती है। पहली मरे हुए लोगों की, दूसरे घायलों या हताहतों की, तीसरी सम्पत्ति की और चौथी क़ैदियों की। पठान लोग प्रायः शत्रुपक्ष के लोगों को, जिनमें कभी-कभी सेना के देशी और अँग्रेज अफसर भी होते हैं, पकड़ कर बन्दी करले जाते हैं और इन बन्दियों को प्रायः तो धन लेकर ही छोड़ते हैं. कभी-कभी बिना हरजाने के भी छोड़ देते हैं।

आज़ाद क़बीलों के पठानों की युद्ध करने की पद्धति हम कह चुके हैं गुरिल्ला ढंग की है। अर्थात् पठान पक्के अवसरवादी हैं। जब कभी मौक़ा देखते हैं, झपट कर आक्रमण कर देते हैं और लूट-पाट करके

* पठान हवाई जहाज़ को 'चुगलखोर' कहते हैं क्योंकि वह उनका भेद ले जाते हैं।

झटपट जङ्गलों या पहाड़ों में घुस जाते हैं। पठानों की लड़ाई प्रधानतः पैदल ही होती है, घोड़ों से भी कभी-कभी काम लिया जाता है।

पठानों की युद्ध-प्रियता का प्रमाण हमें उनके बन्दूक प्रेम में मिलता है। एक-एक राइफिल के लिये एक आजाद वीर खुशी खुशी अपनी चार वर्ष की आमदनी ५० पाउण्ड तक दे सकता है। इसका विशेष उल्लेख हम 'पठानों के हथियार' वाले अंश में करेंगे।

तात्पर्य यह कि पठान जन्म से ही युद्ध-प्रिय होते हैं तथा युद्ध के लिये आवश्यक शारीरिक और मानसिक शक्ति भी उनमें होती है। साहस उनका प्रधान गुण है। उनके साहस की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। कय्यूम के उद्धरण में हम लिख आये हैं कि उनके साहस की ओर कोई उँगली भी नहीं उठा सकता। ब्राइट महोदय ने भी लिखा है—

"(स्व-शासन से) उनमें आत्म-निर्भरता, साहस, सावधानी बढ़ती है।" और निस्सन्देह यह गुण उनमें खूब बढ़े भी हैं। तभी तो कठिन से कठिन काम करने में वे नहीं हिचकते। कैसे सुसज्जित सेना के बीच से वे बन्दूकें और घोड़े उड़ा ले जाते हैं, कैसे सशस्त्र पुलिस को चकमा देकर शत्रु का खुले बाजार में खून कर जाते हैं, ये सब आज भी कौतूहल बने हुए हैं। यह और कुछ नहीं साहस का करिश्मा है।

स्वाभिमान—

पठान का दूसरा गुण है स्वाभिमान। कोई भी पर्य्यटक इस गुण की ओर लक्षित किये बिना नहीं रह सकता। पठान बड़ा स्वाभिमानी व्यक्ति है। अपनी मान-मर्यादा के लिये वह अपना प्राण निछावर करना एक साधारण-सी बात समझता है। यही कारण है कि सब लोगों ने उसके इस गुण का उल्लेख किया है। उनके स्वाभिमान की सीमा बहुत दूर तक फैली है। अर्थात् छोटी छोटी बातों में भी वे किसी से दबना नहीं जानते। जब अ'लवी के सिपाही आन्दोलन के लिये आये तो पठानों ने उनका स्वागत किया, उन्हें प्रत्येक प्रकार की सुविधा सहायता दी। कारण यहाँ उनकी स्वतन्त्रता तथा धर्म का प्रश्न था, परन्तु जब,

अँग्रेज़ी के सिपाहियों ने पठान स्त्रियों की ओर निगाह उठाई तो पठान ख़ून जल उठा, और उन सिपाहियों को इसका अच्छा पुरस्कार दिया गया। इस प्रकार की सैकड़ों घटनायें हैं, जिनमें पठान के स्वाभिमान की तीव्रता तथा ऊँचाई मालूम होती है। यह स्वाभिमान कभी-कभी तो बढ़कर घमण्ड हो जाता है। पठान अपने को संसार में किसी जाति से हीन नहीं समझता तथा बड़े गर्व से अपने साथ रहने वाली अल्पसंख्यक जातियों का रक्षक बन जाता है। स्त्रियों के मान के विषय में भी पठान का विचार बड़ा ऊँचा है। पठान का स्वाभिमान कई बातों को लेकर है। अर्थात् कई एक ऐसे दृढ़ नियम से हैं जिन पर प्राणपण से चलना पठान अपना कर्त्तव्य समझता है। यथा स्वतन्त्रता, शरणागत रक्षा, अतिथि-सत्कार तथा प्रतिशोध। इसमें धर्म भी शामिल है। अनेक समानताओं के साथ पठानों की क्षत्रियों से इस गुण में भी समानता है। जिस प्रकार राजपूत बात के लिये, अपनी आन पर शीश कटा देते हैं ठीक उसी प्रकार पठान भी।

चूँकि पठान अशिक्षित है इसलिये कदाचित् उसका यह स्वाभिमान, आत्मगौरव का यह भाव हम शिक्षितों को स्वाभिमान नहीं घमण्ड दीखता है। और तभी प्रायः बहुत से लेखकों ने इसका उल्लेख अँग्रेजी के 'प्राउड' (Proud) शब्द से किया है, जिसका स्पष्ट अर्थ यह आत्माभिमान ही दीखेगा, घमण्ड नहीं। उनके इस ग़लत दृष्टिकोण का कारण कदाचित् भारत की ग़ुलामी है। तभी तो भारत की नारी जब किसी स्वतन्त्र देश की स्त्री को देखती है तो उसे उद्दण्ड उच्छृङ्खल एवं सिरचढ़ी समझती है। पाठक इस भेद को दूसरी ओर से भी देख सकते हैं। जब कोई जोशीला ख़ून किसी अँग्रेज़ अफ़सर पर हाथ चला देता है तो लोग उसे फिरा हुआ कहते हैं। जब कांग्रेस और गाँधी का असहयोग आन्दोलन चला तो बहुत से 'बुड्ढों' ने उसका यह कहकर स्वागत किया—'उँह, दिमाग़ फिर गया है। मरने को हुए हैं, पंख उपजे हैं जो अँग्रेज़ बहादुर से लड़ने चले हैं।' अँग्रेज़ बहादुर का डर ही ऐसा है। परन्तु इसके ख़िलाफ़ जब यही अँग्रेज़ बहादुर किसी पठान को देखते हैं

तो क्यों दुम दबाकर बिलों में घुस जाते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर कौन दे । इस प्रश्न का उत्तर है पठान का आत्मगौरव का भाव जिसे अँग्रेजी के 'सुपिरियारिटी कम्प्लैक्स' (Superiority Complex) नामक संयुक्त शब्द से व्यक्त किया जाता है ।

धार्मिकता—

पठान के चरित्र में तीसरी विशेषता पाठक धार्मिकता को पायेंगे । आप किसी पठान से मिलें और यदि अपने दुर्भाग्य से उसके धर्म की आलोचना भी करदें तो समझ लीजिये कि वह आपकी गर्दन नापे बिना नहीं मानेगा । पठान का धर्म इसलाम है, यह कहने की आवश्यकता नहीं होती । जब अरब के धर्मदूत एक हाथ में इसलाम की मशाल और दूसरे में तलवार लेकर भारत के सीमान्त की ओर झुके तो पठानों ने उनका ख़ूब स्वागत किया। इसलाम की हिंसात्मक प्रवृत्ति, जो उस समय बन गई थी, इन सीमान्तवासियों को बड़ी आकर्षक प्रतीत हुई, कारण यह उनके युद्ध-प्रिय जीवन से खूब मेल खाती थी । यों इसलाम से पठानों ने बहुत-कुछ कुछ भी नहीं लिया, केवल धार्मिक कट्टरता ही प्रमुख रूप से ली है । कय्यूम साहब लिखते हैं—

"वे सब मुसलमान हैं, और कदाचित् इसलामी दुनियाँ में कोई भी जाति इतनी अधिक धार्मिक नहीं है, जितने यह पठान ।"*

पठानों की धार्मिकता उनके ज़ीवन का प्रधान गुण है । लगभग सभी कार्यों के लिये वे शक्ति इसी धार्मिकता से लेते हैं । तभी तो मुल्लाओं की बन आती है, और वे प्रायः अपना उल्लू सीधा करने के लिये इसी 'मज़हब' की शरण लेते हैं । 'इसलाम ख़तरे में है' सुनकर कोई पठान चुपचाप बैठा रहेगा यह सम्भव नहीं । हो सकता है आज अब्दुल ग़फ्फार ख़ाँ के उपदेश से पठान ऐसे नारों की व्यर्थता तथा नारा लगाने

---

* "They are all Muslims, and perhaps no other people in the world of Islam are more attached to the faith as are the Pathans."

—*Abdul Qaiyum*

वालों की स्वार्थपरता समझ गये हों परन्तु अधिकांश में जोन ऐसे कठमुल्लाओं की ही होती है। इतिहास इसका प्रमाण देता है। अ`लवी साहब के आन्दोलन की जड़ में धार्मिकता की प्रधानता थी। अ`लवी साहब खुद बहुत बड़े आलिम थे और बड़े-बड़े मुल्ला उनकी पालकी कन्धों पर उठाकर चलते थे। उनकी आवाज़ खुदा की आवाज़ समझी जाती थी। और फिर उनके चेलोंने उनकी अद्भुत दैवी शक्तियों के विषयमें बहुत सी किंवदन्तियाँ फैला रखी थीं। इन्हीं सब बातों का प्रभाव था कि झुण्ड के झुण्ड पठान दौड़-दौड़कर अपनी-अपनी बन्दूकें लेकर अपने इस धर्म-गुरु की छत्र-छाया में आ पहुँचे। जिन थोड़ी-सी बातों पर पठान जान देता है उनमें धर्म भी प्रधान रूप से है।

परन्तु पठानों की धार्मिक कट्टरता के विषय में हम बहुत कह गये है। भय है कि आप इसका अतिरंजित अर्थ न लगालें। यदि आज की साम्प्रदायिकता की आग न होती तो हम खुशी-खुशी कह सकते थे कि पठानों की धार्मिक कट्टरता नीच साम्प्रदायिकता में नहीं बदल गई है। पठान साम्प्रदायिक न तो था और न है। यह कहने में हमारा तात्पर्य पाठक ज़रा धैर्य से समझ लें। आज जो लूट-पाट, आग मच रही है इसकी जड़ में थाड़े से इसलाम के स्तम्भ कहाने वाले हैं, उनका नाम आप जानते हैं, हमें बताने की आवश्यकता नहीं। मूल में पठान साम्प्रदायिक नहीं थे, इसका प्रमाण हम तब देंगे जब अल्पसंख्यकों की बात करेंगे। अल्पसंख्यक हिन्दुओं एवं सिक्खों के प्रति उनका कैसा व्यवहार था यह पाठक जान लेने पर हमारे उपरोक्त कथन की सत्यता जान लेंगे। परन्तु इसका भी अतिरंजित अर्थ न लगा लेने की हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं। उनमें साम्प्रदायिकता है अवश्य परन्तु वह इतनी कम कि उसे साम्प्रदायिकता कहना उचित नहीं जँचता।

जो हो पाठक यह जान गये कि पठान इसलाम के कट्टर अनुयायी हैं। परन्तु धर्म ने उनके घरों में कोई भारी परिवर्तन किया है, ऐसा नहीं है। पठान के घर में अब भी आर्यत्व के, यदि और भी स्पष्ट कहलाना चाहें तो कहेंगे कि हिन्दुत्व के चिह्न वर्त्तमान हैं। उनके रीति-

रिवाज इत्यादि हिन्दुओं से मिलते हैं यह पाठक समय आने पर जान सकेंगे।

स्वातन्त्र्य-प्रियता—

अपने को स्वतन्त्रता-प्रिय एवं देशभक्त कहने वाली किसी भी जाति के सम्मुख पठान कन्धे से कन्धा भिड़ाकर खड़ा हो जाता है और आश्चर्य नहीं कि वह सबसे ऊँचा दीख पड़े। पठान जाति का इतिहास स्वतन्त्रता के लिए लड़े हुए युद्धों से भरा पड़ा है। जब जब किसी जाति ने उसकी स्वतन्त्रता में बाधा डाली तब-तब पठानों ने उसका जान लड़ाकर मुक़ाबला किया और उसे निकाल कर पानी पिया। आज जो पठान अँग्रेजों के जानी दुश्मन बने हुए हैं, अफरीदी किसी विदेशी को देखते ही छुरा लेकर गला काटने के लिये दौड़ पड़ता है उसका मूल कारण यह है कि क्यों अँग्रेजों ने उनकी स्वतन्त्रता में बाधा डाली। पठान चाहता है कि उसे मनमाने ढंग से रहने दिया जाय। कोई भी बन्धन उसे स्वीकार नहीं है। सरकार और क़ानून को देखकर वह उसी प्रकार भड़क उठता है जिस प्रकार लाल कपड़े को देखकर साँड़। जब जब सरकार स्थापना का प्रयत्न किया तब तब उसे उखाड़ फेंका गया, इसके उदाहरण पाठक इतिहास के परिच्छेद में पा चुके हैं। पठानों की स्वतन्त्रता का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। अर्थात् कह सकते हैं कि पठान लगभग व्यक्तिवादी हैं। वह व्यक्ति को पूरी-पूरी स्वतन्त्रता देने के पक्ष में है। पठान के देश में यदि कोई भी नियमित संस्था है तो वह परिवार ही है। परिवार के ही नियमों को पठान मानता है, वह भी कदाचित इसलिये चूँकि परिवार के नियम माननीय हैं तथा प्राकृतिक भी। परिवार के बाहर न कोई नगर कोतवाल है और न कोई जिला मजिस्ट्रेट। उसका न्याय तलवार की धार से होता है। हाँ, जब तलवार भी टूटकर बेकार हो जाती है तो कभी-कभी पंचायत जैसी किसी संस्था का मुँह देखना पड़ता है।

'मान, धर्म और स्वतन्त्रता' में अन्तिम ही अधिक शक्तिशाली है। पठान बहुत-कुछ जो करता है वह स्वतन्त्रता के लिये। धर्म और मान

स्वतन्त्रता के सामने झुक जाते हैं। कोई भी पठान छाती फुलाकर कवि के साथ कह सकता है—

इश्को आजादी बहारे जीस्त का सामान है।
इश्क मेरी जिन्दगी, आजादी मेरा ईमान है।
इश्क पर करदूँ फिदा मैं अपनी सारी जिन्दगी।
लेकिन आजादी पै मेरा इश्क भी क़ुरबान।

अर्थात् आजादी की ख़ातिर प्रेम और धर्म को बलिदान किये जा सकते हैं। ऐसी ही है पठान की स्वन्त्रता प्रियता।

लेकिन अपनी आजादी के लिये पठान औरों का गला नहीं घोटते। हमारी अँग्रेज जाति का दावा है कि वह बहुत स्वतन्त्रता प्रिय है। बलिहारी आपके इस प्रेम को जो औरों को तो ग़ुलामी की बेड़ियों में तो बाँध कर रखे हुए हो और कहते हो कि हम स्वतन्त्रता प्रिय हैं। पठान का प्रेम सच्चा है। वह न तो किसी की स्वतन्त्रता का हरण करता है और न स्वयं किसी को अपनी स्वतन्त्रता में बाधा देने देता है। वह अपने ही देश में रहना चाहता है, उसे नये देश जीतने की लालसा नहीं है। हाँ, भूख का रोग बुरा। उसके आगे वह भी क्या करे।

पठान की स्वतन्त्रता का अर्थ बहुत व्यापक है। तभी उसका देश बिना सरकार, बिना क़ानून का देश है। कहा जा सकता है कि वे भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को मानते हैं। उनमें नागरिकता के सभी गुण हैं परन्तु फिर भी कोई सरकार वहाँ स्थापित नहीं हो सकी यही आश्चर्य है। पठान विचारों में भी बहु स्वतन्त्र है। उसे हम विचारों में प्रजातन्त्रीय (Democratic) कह सकते हैं। प्रत्येक को जीने का, अपने विचार रखने का अधिकार है, पठान इसका पक्षपाती है। यहाँ वह दयाभाव स्त्रियों के लिये नहीं है। परन्तु साधारणतः प्रत्येक पठान एक दूसरे को समान ही समझते हैं। किसी भी वर्ग (उपजाति) के मनुष्य को दूसरी जाति का व्यक्ति नीच अथवा हीन नहीं समझेगा। सम्भवतः इस समान भाव की प्रेरणा एवं शक्ति उसे इसलाम धर्म से मिली है।

हम लिख आये हैं कि पठान मान, धर्म और स्वाधीनता (Honour, Faith and Freedom) के लिये प्राण देता है। तीन चीजें और हैं जिस पर पठान का भारी ध्यान रहता है। ये तीन चीजें हैं शरणागत की रक्षा, अतिथि सत्कार तथा बदला।

शरणागत रक्षा के सम्बन्ध में हमें अपने प्राचीन राजाओं का स्मरण हो आता है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि किसी की रक्षा का भार किसी राजपूत या क्षत्रिय राजा ने अपने कंधों पर ले लिया है और तब उसकी रक्षा प्राण देकर भी की है। यहाँ तक कि इस काम में उनके राज्य परिवार तथा प्रजाजन भी ध्वंस हो गये हैं परन्तु जिसे एक बार वचन दिया, शरण दे दी उसकी रक्षा अवश्य की जायगी। भगवान् का शरणागत पालक होने का गुण प्रत्यक्ष हम अपने उन राजाओं में देख सकते हैं। भगवान् राम ने विभीषण की रक्षा, प्रणपालन कितनी तत्परता से किया था। कुछ इसी प्रकार की तत्परता हम पठानों में भी पाते हैं। ब्रिटिश राज्य के हजारों ग़ैरक़ानूनी लोग भागकर पठानों की शरण में पहुँच जाते हैं, और पठान उनकी रक्षा करते हैं। क्या एक भी शरणागत पठानों ने शत्रु के हाथों में दे दिया है ?

अतिथि सत्कार में भी पठान की तत्परता अद्वितीय है। यों तो भारत भूमि ही अतिथि सत्कार के लिये बेजोड़ है। पठान अपने मेहमान को अच्छी से अच्छी चीज देने में सुख अनुभव करता है। उसकी अतिथि सत्कार की भावना यहाँ तक बढ़ी हुई है कि यदि एक बार को उसका दुश्मन भी मेहमान बनकर आये तो वह सारा वैर भूलकर उसकी सेवा करेगा, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

बदले के लिये पठान जगत प्रसिद्ध हैं। पठान के ख़ून का बदला ख़ून होता है यह कहावत शत प्रतिशत सत्य है। शत्रु को छोड़ देना, क्षमा कर देना पठान नहीं जानता। तभी तो अँग्रेजों के कर्मों का अभी पूरा प्रायश्चित्त नहीं हुआ है। पठान दौज का बदला तीज देता है। मुहम्मद के धर्म ने और कुछ चाहे सिखाया हो परन्तु दयाभाव वह नहीं सिखा पाया। एक मुहम्मद साहब थे, जिन्होंने सात बार तंग

होकर भी यहूदिन से कुछ नहीं कहा, और एक ये उनके भक्त हैं जो क्षमा के माने भी मार और प्रतिशोध ही जानते हैं। उनका बदला फ़ौरन ही समाप्त नहीं हो जाता बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है।

इस संक्षिप्त चरित्र चित्रण से पाठक समझ गये होंगे कि पठान किस मिट्टी का बना व्यक्ति है। स्वाभिमान, धार्मिक कट्टरता, देशभक्ति एवं आजादी प्रियता, मान गौरव, शरणागत रक्षा का भाव क्या युद्ध-प्रियता उसके कुछ विशिष्ट गुण हैं जो प्रत्येक पठान जवान, बुड्ढे और बालक में पठानों को मिल जायेंगे। एक बात और है। पाठकों को सम्भवतः स्मरण होगा कि हमने एक स्थान पर लिखा था कि पठान भी हमारी तरह मानव है उसके भी हृदय है। और हमारे इस कथन का प्रमाण है कि उसकी संगीत, नृत्य कला आदि में रुचि। पठानों की सङ्गीत और नृत्य की जमातें प्रति रात को लगती हैं। उनका सङ्गीत भी कितना उच्चकोटि का है, इसका विवरण हम अन्यत्र देंगे, परन्तु यहाँ हम यही कहते हैं कि पठान बहुत संगीतप्रिय है। प्रकृति की गोद में खुले रहने के कारण यदि उसकी सौन्दर्यप्रियता हमसे बढ़कर हो तो कैसा आश्चर्य है? और फिर पठान पुरुष तथा स्त्रियाँ स्वयं भी बहुत सुन्दर एवं रूपवान होती हैं। तात्पर्य यह कि जहाँ सैनिक जीवन के कारण उसकी छाती चोटें खा-खाकर वज्र हो गई है, शिलावत दीखती है, वहीं विश्वास रहे इस शिला के नीचे मधुर मीठे जल की कलकल करती निर्झारिणी भी बहती है, जिसका स्रोत हम उनके दैनिक जीवन में अच्छी प्रकार देख सकते हैं। कदाचित् पठान वीरगाथा काल का कवि है।

पठान का जीवन सामाजिक पहलू से

पठान का जीवन अविराम युद्ध है। निरंतर कठोर संघर्षों के बीच से उसे अपने प्राण, मान, धर्म और स्वातन्त्र्य की रक्षा करनी पड़ती है। प्रकृति के दो नियम हैं—'जीवन के लिये संघर्ष (Struggle for Existence) और 'सर्वोत्कृष्ट की विजय' (Survival of the Fittest) इन नियमों को तोड़ने का प्रयत्न समाजवादी और साम्यवादी संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है, इसीलिये साधारणतः मानव जीवन में ये इतने सुस्पष्ट नहीं

दीखते जितने प्रकृति जीवन में। इन्हीं दो नियमों को हम पठानों में साफ़-साफ़ देख सकते हैं। जीवन धारण, रक्षा एवं पोषण के लिये पठान को भारी युद्ध करना पड़ता है और परिणाम स्वरूप निर्बल मारा जाता, सबल बचकर सम्पत्ति का भोग करता है। पिछले पृष्ठों में हम कह आये हैं कि धर्म पठान के जीवन की प्रमुख संचालन शक्ति है। यहाँ हम दो चीज़ें और जोड़ते हैं यानी प्रथम तो भूमि, दूसरा प्रेम। पठान भूमि के एक-एक बित्ते पर अपना .खून बहा देता है तथा उसे प्राप्त करता है। यह .खून खराबी पठानों में आपस ही में होती है। अर्थात् उपजातियाँ, आपस में लड़ती हैं। पठान जीवन का आर्थिक बिचार करते समय हम दिखायेंगे कि पठान प्रमुखतः कृषक है। पहले वह खेती करता है। परन्तु खेती के लिये ज़मीन कहाँ है ? इस कठिन प्रश्न का हल बन्दूक़ करती है। दूसरी संचालक शक्ति प्यार है। ब्राइट महोदय का तो विचार है कि पठानों की आधी लड़ाइयों का कारण तो 'स्त्री' होती है। किसी .खूबसूरत लड़की या औरत को देख कर पठान का दिल मचल उठता है, और फिर तो युद्ध अनिवार्य है। जैसे एक सिंहनी के लिये दो सिंह लड़ते हैं उसी प्रकार एक औरत के लिये दो पठान, कभी-कभी मय परिवार के लड़ बैठते हैं। हज़ारों लोग जो ग़ैर क़ानून होकर पठानों के देश में जाते हैं अपने प्रेम का अच्छा व्यापार करते हैं तथा इसी को लेकर .खूब लड़ाई होती है। ब्राइट महोदय की तरह हम भी कहते हैं:—

* सीमा प्रान्त की पहाड़ियों में आज भी जीवन की कठोर यथार्थता के होते हुये भी, रोमान्स के खेल खेले जाते हैं। वजीरिस्तान की एक

---

* "Romance still lingers in the Frontier hills despite the stern reabtior of life. The infatuation of a Pathan for a young Hindu girl led indirectly to the war in Waziristan; here a pretty face moved, not a thousand ships like Helan of Troy, but at least two British division. The Pathan is indeed a great lover always ready to risk his life for a pair of bright yees."

From—Frontier and its Ghandi

लड़ाई का एक परोक्ष कारण एक पठान की एक जवान हिन्दू लड़की के प्रति प्रणय लालसा थी। ट्राय की हेलेन की तरह यहाँ एक सुन्दरी के लिये हजारों जलयान यद्यपि नहीं दौड़ पड़े थे, लेकिन कम से कम ब्रिटिश सेना की दो टुकड़ियाँ अवश्य पहुँची थी। पठान सच्चा प्रेमी है, हर समय वह सुन्दरी के युगल नयनों पर प्राण निछावर करने को तैयार रहता है।

पठान के यहाँ भी स्त्री रुपये पर बिकती है। जिन खानों की जेब सोने से भरी होती है वे सुन्दरी स्त्रियों को अपनी दुलहन बना लेते हैं फिर चाहे वह खान खूसट बुड्ढा बन्दर ही क्यों न हो और लड़की सोलह वर्ष की पूर्ण युवती जिन रईस बन्दरों से बचने लिये कभी-कभी तो उन्हें अपना रूप भी कुरूप कर लेना पड़ता है।

अब पाठक समझ गये होंगे कि पठान में किस प्रकार का व्यक्तित्व उन्हें मिलेगा, उसी के अनुरूप उनका सामाजिक जीवन भी है।

जाति-प्रथा---पाठकों को स्मरण होगा कि एक स्थान पर हमने उन्हें 'डेमोक्रेटिक' कहा है। इसका सच्चा प्रमाण हमें उनके आपसी व्यवहार में मिलता है। हिन्दुओं के जीवन का कोढ़ 'जाति-प्रथा' पठानों में नहीं है। पठान अपने को किसी से नीचा नहीं समझता तथा साथ ही किसी और को भी अपने से नीचा नहीं मानता। उसका सबसे बड़ा दुश्मन वह है, जो उसे किसी भी प्रकार हीन या निकृष्ट समझता है। इसी कारण से पठानों के बीच यह बहु जातियों की प्रथा नहीं है।

पठान परिवार---पाठकों को उत्सुकता होनी चाहिये पठानों का गृहस्थ जीवन जानने की। हम कह सकते हैं कि पठानों के गृहस्थ जीवन में निस्सन्देह आर्य सभ्यता की स्पष्ट छाप लक्षित होती है। उनके रीति रिवाज तथा व्यवहार से पता चलता है कि यह जाति आर्यों की प्राचीनता को बड़ी मेहनत से संजोये रखे है। प्राचीन कहने से हमें मान लेना चाहिये कि आर्यों का जीवन बहुत सादा है, कारण यह

प्राचीनता गुप्त काल या मुगलकाल की नहीं है वरन् कुछ वैदिक काल की या उससे भी पहले की है। तभी एक विद्वान् यात्री ने जब पठान का गृह जीवन देखा तो लिखा :—

"जीवन के अधिकांश में पठान बहुत सादा तरह से रहता है, साथ ही इस सरलता में मौत को भी शरमिन्दा कर देने वाले वीरतापूर्ण कृत्य समाये रहते हैं। आजाद कबीलों में उनका गृहस्थ जीवन इतनी सुनिश्चितता से संगठित है कि उसमें आज भी इतिहास के सुदूर अतीत के दर्शन हो सकते हैं। उस अतीत के, जब गृह जीवन सबकी जीवन यात्रा के एक से बहुत जाति तथा राष्ट्र की ओर उन्मुख होने का उदाहरण है। इस विचार को रखकर देखने पर विदित होगा कि आजाद कबीलों के जीवन में आदिम सादगी है।"

आज के बहुरूगी फैशन तथा रंगढंग पठान देश में अभी नहीं पहुँच पाये हैं, हाँ स्वाई जिले के अपवाद अवश्य है। आज भी पठान का जीवन लगभग उसी प्रकार का है जिस प्रकार नगर से बहुत दूर स्थित भारत के गाँव में, जहाँ खाने के लिये लाले पड़ते हैं, वहाँ जमींदार का डंडा उसके ऊपर कंस की तलवार की तरह टँगा रहता है, फटे हाल किसान अपना जीवन ढोते हैं। ढोते इसलिये चूँकि हम अनेक स्थानों पर कह आये हैं कि पठान बहुत गरीब आदमी है।

घर——पठानों के मकान छोटे-छोटे तथा अधिक से अधिक दुमंजिले होते हैं। पत्थर और लकड़ी के टुकड़ों को इकट्ठा कर मकान का ढाँचा बनाया जाता है तथा फिर उस पर गारे या मिट्टी का लेप कर दिया जाता है। ये मकान छोटे होने के साथ ही गन्दे भी होते हैं। आवश्यक नहीं कि दिया जलाया जाय, इसलिये मच्छर, डाँस और खटमलों को खुशी-खुशी रहने तथा गाने की मजलिसें करने दिया जाता है। घर बनाने में किसी गृह-शिल्पकार से नक़्शा बनवाकर सलाह तो ली नहीं जाती, और न सफाई के प्राथमिक पाठ ही उन्हें पढ़ाये जाते हैं, इसलिये आप आशा नहीं करते कि उनके मकानों में भी रोशनदान और खिड़कियाँ होतीं। अपने यहाँ जो हम 'जुम्मे के जुम्मे नहाने की' या 'होली

दिवाली स्नान करने की' बात कहते हैं, वह पठानों के यहाँ सामूहिक रूप से सत्य है। पशु पक्षियों की तरह रात की खुमारी से आँखें मलते जब पठान उठते हैं तो पहला हाथ उनकी राइफिल पर जाता है और निगाह खेतों या जंगलों में चरते किसी जंगली पशु की खोज में। शिकार करने के विषय में आपसे कहने की आवश्यकता नहीं दीखती।

गृह व्यवस्था—पठानों के यहाँ न तो थाना होता है और न कोतवाली। उनके यहाँ 'ताजीरात हिन्द' भी नहीं है। मजिस्ट्रेट की वहाँ पहले पहल आवश्यकता नहीं पड़ती कारण सच्चा न्याय तो बन्दूक़ करती है, अगर बन्दूक़ भी नहीं कर पाती तो हार कर मुल्ला की दाढ़ी हिलाई जाती है। लेकिन मुल्ला का न्याय कोई तोप तो है नहीं, माना नहीं माना। बस इसीलिये कहेंगे कि यदि कोई नियमित बंधन पठान के ऊपर है तो वह घर और परिवार का है। पठान का परिवार व्यवस्था रोमन ढंग की है, ऐसा ब्राइट महोदय का मत है। लेकिन हमारा विचार तो यह है कि रोमन हो चाहे न हो भारतीय ढंग का वह सब से पहले है। घर का बड़ा बुजुर्ग ही सर्वेसर्वा है। उसका एक तंत्र निरंकुश राज्य चलता है। वह किसी नियम, किसी विरोध को नहीं मानता, उसका हुक्म, उसकी आज्ञा सारा घर मानता है। सन्देह पक्का होने पर वह अपनी बीबी को क़त्ल कर सकता है या उसे मारकर गाड़ सकता है और उसका हाथ पकड़ने कोई नहीं जायेगा। वह अगर घर की किसी लड़की को, फिर चाहे वह पुत्री, पोती, या धेवती ही क्यों न हो, कोई कुकृत्य करते पकड़ लेगा तो उसका मौत जैसा दण्ड देने से भी उसका हाथ कौन पकड़ सकता है। यों कहने को तो क़ुरान को क़ानून माना जाता है, परन्तु घर का प्रबन्ध रीति रिवाजों पर, परम्परा तथा प्राचीन संस्कारों के अनुसार ही चलता है। हिन्दुओं की भाँति ही पठानों के घर में भी बेटियों से बढ़कर बेटों की मौज है। घर के मालिक, सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बेटे ही होते हैं। बेटा अगर कोई 'रोमांस' कर आये तो शायद उसकी पीठ ठोंक दी जायेगी, अगर न ठोंकी जाय तो वह परवाह ही किसकी करता है, उसे डर ही किसका है, लेकिन अगर बेटी किसी

प्रेमाभिनय में अनुचित करते पकड़ी जाय तो उसका शायद गला ही काट देना पड़ेगा।

पठानों में संयुक्त परिवार की प्रथा है। बाप, बेटे, नाती, पोते, अम्मा, बहू बिटिया सब एक ही में रहते हैं। इस विचार से भी पठान भारतीयों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। उनके यहाँ अभी वह अँग्रेजियत नहीं फैली है, जो हमारे यहाँ आजकल ख़ूब आ रही है, जिसके प्रवाह में बेटा बाप व माँ की एक भी कड़ी बात सुनने पर अथवा यों ही माँ बाप को अपनी आजादी में बाधा मानकर अलग घर बसा लेता है। एक ही घर में रहना पड़ता है। हम मानते हैं उनके यहाँ भी अलग होने की कभी-कभी आवश्यकता पड़ती होगी, परन्तु ऐसे उन्मादी आवेग की आवश्यकता को दबाया जाता है और वह दब भी जाती है। कारण पठानों के यहाँ अभी वह अर्थहीन साम्यवाद का नारा नहीं पहुँचा है जो बे बूझ बुद्धुओं को ख़ूब उल्लू बनाता है। स्त्री है उसका भी अधिकार है, लेकिन अधिकार के मानी वहाँ यह नहीं कि स्त्रियाँ घड़े तो खेतों में फोड़ दें और राजनैतिक रंगमंचों पर आकर लगें व्याख्यान झाड़ने, घर पर चाहे बच्चे भूख के मारे माँ कहकर बिलबिलाते हों। और चूँकि स्त्रियाँ वहाँ गुड़ियाँ नहीं है, और वहाँ के पुरुष अभी कमजोर नहीं हो गये हैं, इसलिये पर्दे की आवश्यकता नहीं। हमारे देश का आदमी शायद वहाँ पहुँचने पर भौचक्का हो जायगा, आश्चर्य नहीं यदि कहानियों के जोगियों की तरह उसे भी गश न आ जाय क्योंकि वहाँ सौन्दर्य (स्त्री सौन्दर्य) छिपा लुका कर कोठरियों में नहीं रखा जाता बल्कि खुले आम खेतों में, बग़ीचों में घूमने-फिरने दिया जाता है। घूँघट शब्द शायद पठान जानता ही न हो। तीन 'पकारों' में एक पर्दा तो हो गया दूसरे दो हैं पुरोहित और पंचायत। जैसे हमारे यहाँ बात-बात में पुरोहितजी, अपने बहु रूपों पुजारी, पंडों, आदि में आते हैं उसी प्रकार वहाँ भी बात-बात में मुल्ला जी का दख़ल है। तीसरे पंचायत को भी आप देख सकते हैं। जिसे आप पंजायत कहते हैं उसे वहाँ जिरगा कह कर पुकारते हैं। जिरगा न्याय आदि का काम करता है छोटे-मोटे

मामलों का मुक़द्दमा ये जिरगा ही करते हैं। इनका उल्लेख हमें दूसरी जगह करना है। तात्पर्य यह कि हमने आपको पठानों के आर्य होने का प्रमाण देने का जो वचन दिया था वह पूरा कर रहे हैं। देख लीजिये किस प्रकार पठान के जीवन में आर्य सभ्यता के धागे गुथे हैं, जो अभी हाल तो छूट नहीं सकते 'धोबी' चाहे जितना सोडा और रेह रगड़ें। कहीं नालों से गंगा जल भी अशुद्ध होता है यद्यपि यह सच है कि 'धोबी' लोग पठानों के द्वार-द्वार पर पहुँचते हैं कि कपड़े धुलवा लो और समझाते हैं, या कहें फुसलाते है कि कपड़े मैले हो गये हैं, परन्तु उनका तो पेशा है, पठान क्या जानता नहीं वह आर्यों के वेद मन्त्रों सा साफ़ है।

कृषक—पठानों के घर को पाठक थोड़ा बहुत देख चुके हैं। हाँडी तवे की बात हम नहीं चलाना चाहते परन्तु एक चीज़ और रह गई उसे भी कह दें, नहीं तो अपूर्णता का दोष कौन लादेगा। पठान के घर में आपको हल, फाँवड़ा और बैल भी मिलेंगे, यह कह देना शेष है। पठान किसान आदमी है। कृषि उनका पेशा है, इसलिये पठानों के देश में नगर और शहर नहीं आपको गाँव और नगले मिलेंगे। ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर हल चलाते हुये फटे हाल किसान मिलेंगे, और कटाई तथा फटकाई के दिनों में खान साहब लाल-लाल आँखें किये अपना लगान माँगते दीख पड़ेंगे। किसान जोतते हैं, बोते हैं, काटते हैं खान साहब खाते हैं। पठानों की कृषक दशा का विशद विवरण हम आर्थिक विवरण में देंगे।

अभी कहना बहुत है। क्रमशः कहेंगे। पहले पठानों के परिवार में बच्चों की देखरेख और कर लें तब आगे बढ़ेंगे।

बच्चों का पालन—पठान घर में बच्चों का नियन्त्रण बड़ी कठोरता से रखा जाता है। यदि आपने अँग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकिन्स के उपन्यास 'डेविड कोपरफील्ड' (Trials and triumphs of David Copperfield) को पढ़ा है तो आप समझ सकेंगे कि बच्चों का पोषण किस कठोरता से किया जाता है। घर की चहार दीवारी में

ही ने बन्द रखकर पाले पोषे जाते हैं। जिन वैयक्तिक गुणों का हमने ऊपर उल्लेख किया है, पाठक देखेंगे कि उनमें से बहुत से पठान के बचपन में ही भर दिये जाते हैं। जैसे शत्रुता का भाव। छुटपन से ही सिखाया जाता है कि वे अपने पड़ोसी पर कभी विश्वास न रखें, उसको सदा सन्देह से देखें जाने कब धोखा दे जाय। इसका परिणाम पाठक अनुमान कर सकते हैं। यदि विश्वास श्रद्धा की जननी है तो अविश्वास जूती पैजार की। और इस सत्य का उद्‌घास पठान जीवन में खूब होता है। बात-बात में तलवारें चल जाती हैं और ये छोटे भूत भी खूब हाथ पैर फैंकना सीखते हैं। पठान का घर युद्ध की पाठशाला है, बच्चों को मारकाट सिखाने के लिये किसी कालेज या यूनीवर्सिटी की आवश्यकता नहीं होती। किसी भी अजनबी को देखकर पहले पठान बच्चे का ध्यान बन्दूक़ पर जायगा। प्राइट महोदय ने अपने इस मत को इन शब्दों में व्यक्त किया है। "पठान बच्चे अनजान आदमी को अपना शत्रु समझते हैं।"* हमारा विचार है कि उपरोक्त लेखक ने इस पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दे दिया है। यह सम्भव है कि साधारणतः वे प्रत्येक अपरिचित व्यक्ति को शंकित नेत्रों से देखें, और यह उचित भी है, परन्तु शत्रु समझना बड़ी बात है। अँग्रेजों के जाल की बात जब आप जान जायेंगे तो आप मान जायेंगे कि उनकी यह शंका उचित है, इतना ही नहीं इसका अभाव भूल होगी। अंग्रेजों की 'फूट डालकर राज्य करने की नीति (Divide and Rule) पठानों के देश में भी बहुत चलती है। प्रायः गुप्तचर भेजे जाते हैं तब भला कवि की यह परिहासात्मक उक्ति उचित क्यों नहीं है—

तुलसी या संसार में कबहूँ न मिलिये धाय।
ना जाने का वेष में सी० आई० डी० मिल जाय॥

हमारा तो विचार है कि उनकी शंका और सन्देह उचित ही है। पवित्र इसलाम धर्म का जो कुरूप उनके यहाँ रखा जाता है उसके

---

* "They look upon all strangers as enemies."

—*Frontier and its Gandhi pp. 63*

अनुसार किसी भी प्रकार की दया ममता अनावश्यक एवं कायरता है। कुछ ऐसी ही शिक्षा उन बच्चों को माँ के स्तनों से मिलती है। यह अतक्र्य सत्य है कि वे गांधी या बुद्ध के अहिंसक भक्त नहीं हैं। परन्तु वाहरे गांधी हाथ वहाँ भी पहुँचा दिया है, और पठान जैसी जाति भी अहिंसा की ओर दौड़ रही है। आश्चर्य! आश्चर्य!! कैसा पशु मरेगा ही, देव की विजय होगी ही। मनुष्य देवता बनना चाहता है न? अभी वहाँ बुद्ध के भक्त भी मौजूद हैं जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, पठान के बच्चे घर की चहार दीवारी में बन्द रहते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि बाहर को दुनियाँ की कुछ भी हवा उनके पास नहीं पहुँच पाती। हिटलर उनके लिए हौआ नहीं है, भारत आजाद होता हो, हो, उन्हें क्या। इसका एक और परिणाम होता है अशिक्षा। शिक्षा के नाम पर लगभग शत प्रतिशत पठान (आजाद कबीलों के) निरक्षर भट्टाचार्य हैं। हाँ, जातीय गौरव की भावना उन्हें पालने में ही दिखाई जाती है, और काबुल उन्हें अपना प्यारा वतन मालूम होता है हिन्दुस्तान नहीं। इस मन प्रवृत्ति का परिणाम पाठक देखेंगे कि पठान के राजनैतिक जीवन पर भी बहुत पड़ता है। जब हमारे यहाँ के लड़के अम्मा का दूध पीना चाहते हैं, या गुल्ली-डण्डा खेलना चाहते हैं तब पठान बच्चा १४ वर्ष का होने की छाप लगवा कर बन्दूक कन्धे पर रख लेता है तथा पंचायतों में या हुरजों में जाने लगता है। परन्तु स्वभावतः ही वह कुछ विचित्र स्वभाव का बनाया जाता है। अपने परिवार के लोगों के अतिरिक्त वह किसी से भी मिलना पसन्द नहीं करता। इस नये जवान में कुछ गर्व की भावना आजाती है तथा वह निर्भीक भी हो जाता है। यही कारण है कि जब हमारे बच्चे लाल पगड़ी वाले को देखकर घरों में घुस जाते हैं और ऐसा बुखार आता है कि चार चार छः छः दिन चारपाई से नहीं उठते तब पठान का बेटा अँग्रेजों के बड़े से बड़े कठोर सेनापति, हवलदार, कमांडर को भी देखकर न तो झिझकता है और न किसी प्रकार का डर ही दिखाता है बल्कि उल्टे ईंट का जवाब पत्थर से देने को तैयार रहता है। यों पश्चिम सभ्यता की चमक दमक पठान को नहीं

लुभा सकती परन्तु अब जो लोग अँग्रेज़ियत के प्रभाव में आरहे हैं उन पर रंग ज़रूर चढ़ रहा है। वे अपने बच्चों को स्कूल और कालेज भेजते हैं लेकिन जिस प्रकार हम लोग अँग्रेज़ी शिक्षा पाकर अँग्रेज़ के दास हो गए वह हालत पठान की नहीं है। कालेज में जाने पर राजनीति और राजनीति के वाहक अख़बार में उसका ख़ूब मन रमता है। परन्तु अख़बारों की ख़बरों का अर्थ कुछ और ही लगता है। और ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वंस होने तथा मुसलिम साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखता है।

पठान बच्चा उत्पन्न होने से लगाकर पोषण होने की अवस्था तक इस प्रकार की शिक्षा पाता है। जिस प्रकार जीजाबाई ने अपने पुत्र शिवाजी को आरम्भ ही से राष्ट्रीयता तथा जातीयता के भावों से ओत-प्रोत कर दिया था वैसी ही शिक्षा पठान बालक को उसके माँ बाप देते हैं।

सामाजिक प्रथाएँ—पठान देश की सामाजिक प्रथाएँ भी उन्हीं के अनुकूल होतीं हैं। त्योहारों आदि में यद्यपि विशेष कुछ उल्लेखनीय नहीं है परन्तु उनके कुछ उत्सवों की ओर संकेत कर देना आवश्यक होगा। अपनी मनोवृत्ति के ही अनुकूल पठान की विजय उत्सव साधारण बन्दनवारों से नहीं वरन् तोपों से मनाया जाता है। जब पठान विजयी होते हैं तो जी भर कर तोपें छोड़ी जाती हैं। विवाह आदि के सम्बन्ध में वर-वधू को थोड़ी स्वतन्त्रता मिल जाती है। अर्थात् हुरजे में (नाच की मजलिस) यदि कोई युवक किसी कुमारी युवती का हाथ पकड़ ले और युवती भी हाथ को छुड़ाये नहीं तो समझ लिया जाता है कि दोनों की स्वीकृति है और तब बाक़ायदा विवाह कर दिया जाता है। पर्दे और जाति गोत्र का तो कोई झंझट है ही नहीं इसलिये पठानों के विवाह को हम भी प्रेम विवाह (Love Marriage) कह सकते हैं। हाँ गंधर्व और असुर विवाह पठानों के नहीं होते।

पठानों के जीवन की सब से मुख्य चीज़ है हुरजा। हुरजा पठान जीवन की जागर्ति का चिन्ह है, इससे मालूम होता है कि पठान जाति

भी जीवित है, और यह जीना रोना नहीं, हँसना खेलना है। हुरजा क्या है? यह कौतूहल आपको स्वभावतः होगा। संक्षेप में हम उसी का उल्लेख करते हैं।

हुरजा एक ग्रामीण संस्था है जिसे हम शहरात् भाषा में क्लब कह सकते हैं। यह क्लब से कुछ बढ़कर होती है क्योंकि इसके दो काम हैं। एक तो नाच-कूद मनोरंजन तथा दूसरा अतिथि घर। हुरजा में एक या दो कमरे होते हैं जिनके आगे एक बड़ा सा आँगन रहता है। अब पाठक समझ गये होंगे कि हुरजा अतिथि घर कैसे हैं। होता यह है कि मेहमानों को, गाँव भर के मेहमानों को घर में न टिका कर इसी हुरजे में टिकाया जाता है। यह हुरजे गाँव की शामिल सम्पत्ति होते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार हमें ऐसा मिला है कि ये साधारण ग्रामीणों की चीज़ न होकर केवल रईस मलिकों और खानों की चीज़ होती है। परन्तु हमें अन्य विवरणों से पता चलता है कि प्रायः यह भेद नहीं है, इसलिये कह सकते हैं कि हुरजा गाँव की सम्पत्ति होती है। प्रत्येक गाँव में कम से कम हुरजा तो होता ही है, परन्तु यदि गाँव बड़ा होता है तो एक से अधिक हुरजे भी बन जाते हैं। हुरजों में कुछ चारपाई रखी जाती हैं। जब दिन भर के कठोर परिश्रम से रात्रि उद्धार करती है तो सब ग्रामीण आकर हुरजों में इकट्ठे होते हैं। उस समय अपने-अपने दुःख सुख की चर्चा छिड़ती है। मौसम, खेती, बाजार की मंदी या सस्तापन तथा पैदावार की चर्चा तो चलती ही है साथ ही पुलिस या मजिस्ट्रेट की ज्यादतियों तथा सामायिक राजनीति पर भी गर्मागर्म आलोचना होती रहती है। और साथ ही साथ हुक्के या चिलम की दम भी।

दिन भर के थके माँदे किसान अपने-अपने जी की जलन और तपन इस प्रकार ठण्डी करते हैं। कभी-कभी नाच कूद या गाने की मजलिसें भी इन्हीं हुरजों में लगती हैं। पाठक समझ गये होंगे कि इस दृष्टि से पठानों के हुरजे वस्तुतः हमारे किसानों की चौपालें हैं। भेद इतना ही है कि चौपालों के लिये जहाँ कोई निश्चित स्थान नहीं है, हुरजे के लिये एक मकान ही अलग बना दिया जाता है। इन दोनों में एक समानता

अवश्य है। यानी स्त्रियों को न तो हमारी चौपालों में जगह है और न हुरजों में। यद्यपि हमारा अनुभव है कि स्त्रियों की भी एक प्रकार की चौपालें लगती हैं उसी प्रकार की चौपालें पठानों के यहाँ भी होती हैं। हुरजों में ही कभी-कभी पंचायतों का भी काम लिया जाता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि हुरजा पठान जीवन का इंजन है जहाँ से नई शक्ति प्राप्त होती है

पठानों की मेहमान नेवाज़ी की चर्चा हम कई स्थानों पर कर आये हैं यहाँ और भी करने का लोभ इसलिये संवरण नहीं कर सकते कि इस स्पष्टीकरण से पाठक समझ जायेंगे कि पठान निस्सन्देह बड़े अतिथि सेवी होते हैं। परन्तु हम अपनी ओर से कुछ न कह कर सीमा प्रान्त वासी कयूम साहब का ही मत उपस्थिति करते हैं। अब्दुल कयूम साहब लिखते हैं—

*"पठान, कदाचित् संसार में सब से अधिक अतिथि सेवी लोग हैं। जिसे कभी यह सेवा भोगने का सौभाग्य मिला है वह जानता है कि उनका आतिथ्य सत्कार दिखावा नहीं है, जो सर आई बला को टालने की इच्छा से किया जाता है। उनके सत्कार में जितना उत्साह एवं

---

* "The Pathans are perhaps the most hospitable race in the world. Any one who has had occasion to enjoy their hospitality knows that it is not of the conventional type. There is so much of warmth and enthusiasm behind it, that it would be hard to find a parallel anywhere else in the world. Whenever a great arrives clean sheats and pillows are at once fetched from inside the house and spread out on the bed for him. The arrival of the guest is immediately followed by tea which is served with eggs and buttered bread. In the evening dinner is served to the guest, who sleeps in the 'Harja' for the night."

—From—Gold and Guns on Pathan Frontier.
By Abdul Qaiyum.

सच्चाई होती है उसका शानी दुनियाँ में कहीं पा सकना सम्भव नहीं है। जब भी कोई मेहमान आता है, घर के अन्दर से साफ़ सुथरी चादर और तकिया निकाले जाते हैं और उसकी चारपाई पर बिछते हैं। उसके आने के साथ ही चाय, अन्डे और मक्खन रोटी के साथ में आते हैं। शाम को मेहमान की दावत होती है, और रात में वह हुजरे में सोता है।" उस समय घर के और लोग तो चले आते हैं केवल कुँवारे पुरुष ही वहाँ मेहमान के पास रह जाते हैं। बच्चों के पालन-पोषण का यह भी एक अङ्ग है कि कुँवारे घर में नहीं हुजरे में सोते हैं।

यहाँ हमें पठान के खाने का भी पता चल जाता है। भोजन में माँस तो होता ही है, परन्तु शराब क़तई नहीं होती। दूसरे खाद्य पदार्थों में मक्खन, शहद, दूध और अन्डे हैं। जो अन्न उत्पन्न होता है उसी के अनुसार गेहूँ आदि की रोटी भी होती है।

पठानों के सामाजिक जीवन में उनकी एक और प्रथा का उल्लेख कर देना नितान्त आवश्यक होगा। यह प्रथा युद्ध काल की है। यह सभी जानते हैं कि अँग्रेज़ बहादुर की पंचायत के कारण प्रायः सब उपजातियाँ आपस में लड़ती रहती हैं। उनके बीच मारकाट हमेशा बनाये रखने में ही अँग्रेज़ों का स्वार्थ हित भी है। और अन्धे होकर ये कबाइली लड़ते भी ख़ूब हैं। परन्तु कभी-कभी जब यह अन्धापन कुछ हटता है और वे अपने सम्मिलित (Common) शत्रु को पहिचान लेते हैं तो इस प्रथा का चलन होता है।

होता यह है कि सम्मिलित शत्रु को देखकर ये कबाइली एक क्षणिक सन्धि (Truce) करते हैं, इस नवीन शत्रु से लड़ने के लिये। इस सन्धि पक्की जिरगा के स्थान जहाँ उनकी सभा होती है, पर एक पत्थर रखकर होती है। ये पत्थर कबाइलों के अगुवा लोग रखते हैं। उस समय उनकी सन्धि पक्की होती है अर्थात् इसका मतलब यह होता है कि वह सन्धि सभी पक्षों को मान्य है। इस प्रथा को पठान अपने अनुसार टीगा या कनरे (पत्थर) कहते हैं। सन् १६३८ के लगभग भी एक ऐसा ही टीगा ईपी के फ़क़ीर की अध्यक्षता में किया गया था।

संक्षेप में यह कबाइलों की मुख्य-मुख्य सामाजिक प्रथायें हैं। किन्तु हम यहाँ कबाइलों का, या पठानों का सामाजिक जीवन लिख रहे हैं इसलिये आवश्यक होगा कि पठानों के स्त्रियों के प्रति विचारों का भी थोड़ा उल्लेख करदें।

स्त्रियों के प्रति कह सकते हैं पठान का दृष्टिकोण उदार नहीं है। वह उसे खेल की चीज समझता है जिसका काम है बच्चे जनना और उनका पोषण करना तथा पति का मनोरंजन करना। एक बार जर्मन अफसर ने कहा था—"स्त्रियों का स्थान घर है, तथा कर्त्तव्य है थके सैनिकों का मनोरंजन करना।"*

ये शब्द जब कहे गये थे तब द्वितीय युद्ध का जमाना था इसलिये वहाँ सैनिक शब्द का इतना महत्व है। अन्यथा हम कह सकते हैं कि पठान का भी कुछ ऐसा ही दृष्टिकोण है। स्त्री घर की गुड़िया बनकर रहती है। यद्यपि पर्दे की प्रथा नहीं है, लेकिन फिर भी स्वतन्त्रता केवल चेहरा खोलने की है मुँह खोलने की नहीं। वे देख तो सकती हैं, इसी के लिये आँखें खुली हैं, परन्तु बोल नहीं सकतीं। उदाहरण के लिये हुजरे को ही लें। स्त्रियों को घुसने का अधिकार उसमें नहीं है। इसी प्रकार घर के काम काज में हुक्म मर्द का ही चलता है स्त्री तो अनुगामिनी है। पुरुष चाहे जो करे परन्तु स्त्री की भूल पर उसका सिर भी काटा जा सकता है और काटने वाले से कोई कुछ भी नहीं कहेगा। हाँ विवाह के मामले में थोड़ी स्वतन्त्रता अवश्य है यानी विवाह लड़की की स्वीकृति से होता है। शिक्षा के नाम पर पहले तो मर्द ही नहीं पढ़े हैं फिर स्त्रियों की कौन पूछे। इसी तरह घर की सम्पत्ति के विषय में भी हिन्दू रीति नीति के अनुसार घर स्त्री का धन सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है।

परन्तु इस सबके होते हुये भी पाठक देखेंगे कि स्त्रियों का इसी स्थान पर मान भी किया जाता है। वे लाख गुड़ियाँ हों गुलाम शायद नहीं हैं। स्त्री पठान देश में उसी प्रकार से देखी जाती हैं जिस प्रकार वीर-

---

* "Woman her place home, duty the recreation of tired warriors."

गाथा काल में हिन्दुओं में स्त्री के लिये बड़े-बड़े युद्ध होते थे, लाखों जानें चली जाती थीं, आज पठानों में भी सैकड़ों खून हो जाते हैं।

तात्पर्य यह कि पठान समाज में स्त्री का स्थान अच्छा नहीं है यही कहा जा सकता है। यद्यपि यह ठीक है कि उन्हें घर में देवी की तरह पूजा नहीं जाता, परन्तु अपने स्वार्थ के लिये (स्वर्ग में सेवा पाने के लिये) उसे सती भी नहीं किया जाता। यह पठान की स्त्री का चित्रण रहा।

इस प्रकार पाठकों को पठान के सामाजिक जीवन में झाँकी मिल गई। कैसे परिवार में बुजुर्ग का एकतंत्र राज्य चलता है, कैसे बचपन ही से बच्चों में युद्धप्रियता, जातीय गौरव तथा घमण्ड भर दिया जाता है पाठक जान गये। इसके साथ ही पठानों की सामाजिक प्रथायें किस प्रकार क्षत्रियों से मेल खाती हैं, पठान कितना अच्छा आतिथ्य सत्कार करते हैं, यह भी हमने इन पंक्तियों में लिखा है। पठानों का स्त्री के प्रति व्यवहार भी पाठक देख चुके हैं। हम भी ब्राइट महोदय की तरह पठानों के जीवन विवरण का अन्त इस प्रकार करते हैं। अँग्रेजी की कहावत—प्रेम और युद्ध में सब कुछ ठीक है (Everything is fair in love and war) पठान के जीवन में बहुत ठीक-ठीक उतरती है। पठान के लिए जीवन केवल दो कामों के लिए होता है। एक तो प्यार करने तथा दूसरा युद्ध करने के लिये। और इस दृष्टि से उसका जीवन पश्चिमी सभ्यता के अनुकूल ही बैठता है।

जो भी हो पठान का जीवन है विचित्र।

यहाँ तक हमने पठान के गृह-जीवन की चर्चा की थी। अब हम अगले पृष्ठों में पठान की शिक्षा, संस्कृति, साहित्य आदि का जिक्र करेंगे।

पठान की शिक्षा

पठान अशिक्षित है, परन्तु बुद्धू नहीं। यह सच है, उसने कालेजों से अभी डिग्री नहीं पाई है, परन्तु फिर भी वह 'कोरी राजा' नहीं है।

पठान की समझ का औसत बहुत ऊँचा होता है। किसी भी चीज़ को जल्दी पकड़ने और अपनाने तथा उसका उपयोग करने की शक्ति पठान में बहुत होती है। साधारण हिन्दुस्तानी से पठान अधिक चतुर और समझदार होता है। यही कारण है कि अब पठान शिक्षा का महत्त्व समझ रहे हैं। ब्राइट महोदय पठानों की शिक्षा का व्यङ्ग्य इस प्रकार करते हैं—

"मेरा अनुभव है कि सीमा प्रान्त बोलता नहीं है। सीमा प्रान्त बोल भी नहीं सकता है। ××××मैं जानता हूँ कि पठान का देश मूक जीवों का देश है।"*

सीमा प्रान्त काली कोठरी है। अशिक्षा और अज्ञान वहाँ पर पैर फैलाकर सोते हैं। सारे प्रान्त में एक भी अँग्रेजी का दैनिक पत्र ऐसा नहीं है जो अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों को पठानों तक पहुँचा सके। पेशावर जैसे बड़े शहर से भी एक भी अँग्रेजी दैनिक पत्र प्रकाशित नहीं होता। पेशावर के वाचनालय और पुस्तकालय लाहौर के पत्रों से ही अपना सन्तोष करते हैं। समाचारों के नाम पर पठानों के पास पहले तो खबर पहुँच नहीं पाती और अगर पहुँचे भी तो बासी होकर। शायद पठान अब कहीं जान सके होंगे कि हमारे वायसराय महोदय बदल गये हैं, या कि अँग्रेज सरकार ने भारत को आज़ादी देने का वचन दिया है। अशिक्षा की सीमा जब पार हो जाती है जब आप यह जान लेंगे कि सीमा प्रान्त में ऐसी भी जगहें हैं जहाँ चार चार पाँच पाँच दिन तक कोई अखबार नहीं पहुँचता। उदाहरण के लिए हम दक्षिण वज़ीरिस्तान के जण्डोला को रखते हैं। जण्डोला ऐसी जगह है जहाँ चार चार पाँच पाँच दिन तक एक ही अखबार पर लौट-पलट कर कसरत होती रहती है। यों दो-चार दुटिहर अखबार आपको मिल जायेंगे परन्तु समाचार

* "My impression is that the Frontier does not speak. The Frontier cannot speak. I know that this is the province of dumb masses."

—*J. S. Bright.*

पत्र नाम की चीज़ आपको देखने को भी नहीं मिलेगा। एक भी हिन्दी, उर्दू या पश्तो का [जो उनकी मातृभाषा है] अख़बार, अख़बार कहे जाने योग्य वहाँ आपको नहीं मिलेगा।

हाँ जबसे पश्चिमी सभ्यता का प्रकाश पठान के देश में पहुँचा है, विद्यार्थियों का रुझान साहित्य की ओर बढ़ रहा है। साहित्य की ओर कहने से हमारा विशेष मन्तव्य है। पठान अख़बारी कीड़ा नहीं है। पार्लियामेंट की बहसें, हर हिटलर की वक्तृतायें और कचहरियों की घोषणाएँ उसे पसन्द नहीं है। वह वाक्वीर नहीं, कर्मवीर है।

लेकिन अब जड़ता दूर हो रही है। संसार की गतिविधि देखकर पठान समझ गया है कि यदि संसार में अपनी स्वतंत्र प्रतिष्ठा क़ायम रखनी है तो शिक्षा आवश्यक है। मर्दों की शिक्षा ही नहीं अब पठान लोग यह भी अनुभव कर रहे हैं कि स्त्री-शिक्षा भी दुनियाँ की घुड़दौड़ में अत्यन्त आवश्यक है। वे चाहते हैं कि उनकी लड़कियों को भी शिक्षित होने का अवसर मिले। स्त्री-शिक्षा की दिशा में कुछ कार्य भी हुआ है, परन्तु वह नाममात्र का है, कारण यह कार्यक्रम केवल नगरों तक ही सीमित है, और सीमा प्रान्त क्या सारा हिन्दुस्तान ही नगरों का नहीं वरन् गाँवों का देश है। हिन्दुओं और सिक्खों, जो सीमा प्रान्त में अल्पसंख्या में हैं, के बीच स्त्री-शिक्षा अवश्य कुछ चल पड़ी है और आशा की जाती है कि शीघ्र ही पठानवर्ग भी इस ओर आकृष्ट और किसी से पीछे न रहेंगे।

लड़कों की शिक्षा में अलबत्ता पठानों ने भारी उन्नति की है। नये स्कूल और कालेज बने हैं। एक समय था जब पठानों के गुरु अन्य प्रान्तीय होते थे। अध्यापक, डाक्टर, वकील, इञ्जीनियर और न्यायाधीश तक अप्रान्तीय होते थे। परन्तु आज समय बदल गया है। वह कंगाली अवस्था बहुत पीछे रह गई है। अब इन स्थानों पर सीमा-प्रान्त के वासी ही बड़ी योग्यता से कार्य कर कर रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि प्रान्त की लगभग सभी जगहों में अब सीमाप्रान्तीय कर्मचारी ही दीख पड़ते हैं। बड़ी-बड़ी संख्या में लड़के पाठशालाओं में पहुँच

रहे हैं। सैकड़ों स्कूल एक तो पहले ही से स्थापित हैं और नये स्कूलों के खोलने की अब जब वहाँ काँग्रेसी सरकार है, नित योजनाएँ बन रही और कार्यान्वित हो रही हैं। शिक्षा की दिशा में खैबर दर्रे के छोर पर, पेशावर के बाहर खड़े हुए इस्लामियाँ कालेज ने प्रशंसनीय कार्य किया है। इस्लामियाँ कायेज रेजीडेन्शल कालेज है। यहाँ प्रसिद्ध नेता, शिक्षा शास्त्री एवं प्रभावशाली व्यक्ति सर अब्दुलक़यूम का नाम लेना अप्रासङ्गिक न होगा। क़यूम साहब आज इस लोक में नहीं हैं, परन्तु उनकी सेवायें आज भी पठान भूमि पर मूर्तिमान हो उनका यशोगान कर रही हैं। क़यूम साहब ग़रीब घर में उत्पन्न होकर क्रमशः अपनी योग्यता तथा कर्मठता से इतने ऊँचे पद (प्रधान मन्त्रित्व) पर पहुँच गये थे। क़यूम साहब के नाम के साथ ही हमें एक दूसरे व्यक्ति का स्मरण हो आता है। यह थे चीफ़ कमिश्नर सर जार्ज रौस कैपल। जार्ज रौस पठान शिक्षा के बड़े भारी हिमायती एवं सहायक थे। अपने कार्यकाल में उन्होंने क़यूम साहब की बहुत मदद की थी। हम उनके कृतज्ञ रहेंगे। इस्लामियाँ कालेज के महानदार उलउलुम की स्थापना क़यूम साहब ने की थी। यह पंजाब विश्वविद्यालय से जुड़ा हुआ है तथा कला (आर्टस्) विज्ञान, कृषि तथा अध्ययन शिक्षा की पढ़ाई सुचारु रूप से होती है। यह रेजीडेन्शल कालेज है तथा इसी से एक रेजीडेन्शल हाई स्कूल भी जुड़ा हुआ है। ज्यादा से ज्यादा तादाद में हिन्दू, सिक्ख तथा मुसलिम बच्चों को केवल किताबी शिक्षा ही नहीं वरन् चरित्र निर्माण की शिक्षा भी इस कालेज में दी जाती है। प्रायः विद्यार्थियों का अधिकांश स्थाई जिलों से आता है, यों थोड़े बहुत आजाद कबाइलों के बच्चे भी हैं परन्तु थोड़े बहुत ही। अभी तक के विदेशी शासन के कारण आजाद कबीलों के बच्चों को उचित प्रोत्साहन नहीं मिल सका था, परन्तु अब आशा की जाती है कि राष्ट्रीय सरकार की छत्रच्छाया में शिक्षा का प्रचार उचित रूप से हो सकेगा। वजीफ़ों तथा छात्रवृत्तियों की कमी के कारण भी पठानों के ग़रीब बच्चे पढ़ नहीं पाते, आवश्यकता इस बात की है कि कुछ और छात्रवृत्तियाँ बढ़नी

चाहिये, जिससे भुखमरे पठानों के बच्चे पढ़ सकें। अब जब जागृति होने लगी है तो पठानों में मातृभाषा गौरव का भाव भी उदय हुआ है। ये इस्लामियाँ कालेज को विश्वविद्यालय बनाना चाहते हैं जिससे शिक्षा का प्रकाश और भी समुज्वल हो उठे।

इतिहास इसका साक्षी है कि एक दिन यह सीमाप्रान्त शिक्षा का सर्वोत्कृष्ट केन्द्र था। तक्षशिला के खण्डहर इसके प्रमाण हैं। परन्तु आज यह देश अज्ञान अन्धकार में डूबा है। धन और आर्थिक सहायता की कमी शिक्षा की प्रगति में बहुत बाधक है। एक बार केन्द्रीय असेम्बली में इस्लामियाँ कालेज को विश्वविद्यालय बना देने का प्रस्ताव निर्विरोध रूप से पास हो गया था, परन्तु आज तक वह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं हुआ है। क्या राष्ट्रीय सरकार इस ओर ध्यान न देगी ?

पठानों की शिक्षा की यह दशा है। उनका भी भाग्य भारत के भाग्य से जुड़ा सा दीखता है। जिस प्रकार भारत के ४० करोड़ में से ५ प्रतिशत भी शिक्षित नहीं हैं उसी प्रकार सीमाप्रान्त भी अशिक्षित है। यह अशिक्षा का ही परिणाम है कि बात-बात में पठान मारकाट पर उतारू हो जाते हैं, तथा असभ्यों जैसा जीवन बिताने में मग्न हैं।

शिक्षा की बात करते समय आवश्यक होगा कि पठान की भाषा का कुछ जिक्र कर लें। हम कह आये हैं कि पठान की भाषा 'पश्तो' है। पश्तो शब्द का शुद्ध पठान उच्चारण 'पुख्तो' है। यही 'पुख्तो' भाषा है जो सिन्धुपार से लगाकर अफगानिस्तान तक बोली जाती है। ब्रिटिश सरकार द्वारा शासित उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में सन् १९३१ की जनगणना के अनुसार १२ लाख, ९० हजार ४८४ नर नारी 'पश्तो' या 'पुख्तो' भाषा बोलते थे, और सीमा प्रान्तीय सरकार का अनुमान है, कि आज़ाद इलाके में २२ लाख १२ हज़ार ८३७ जन इसके बोलने वाले थे। अफगानिस्तान में बहु संख्या 'पश्तो' भाषा भाषियों की है। अन्य प्रान्तीय भाषाओं तथा बङ्गाली, मराठी, गुजराती आदि की भाँति पश्तो का साहित्य समृद्ध नहीं है। पश्तो भाषा आर्यभाषा है, इसके प्रमाण

हम पीछे दे आये हैं। पश्तो में आज भी बहुत से संस्कृत शब्द मिलते हैं। डाक्टर अख्तर हुसैन रामपुरी साहब लिखते हैं—

"चितराली बोली आदिम संस्कृत और तुर्की भाषा का विचित्र सम्मिश्रण है जिसमें फारसी भी थोड़ी सी पुट मिली हुई। इसमें संस्कृत के शब्द अपने शुद्ध रूप इस तरह आते है कि अचम्भे की हद तक नहीं होती 'श्री' अजु' 'हिम' 'कोमीरू (कुमारी) तो बातों ही बातों में कान पड़ जाते हैं।"

तात्पर्य यह कि पश्तो भाषा मूलतः आर्य भाषा संस्कृत है। पश्तो के बोलने वालों की संख्या बहुत होने पर भी पूरा पूरा मान नही मिलता। राजकार्यों में फारसी का प्रयोग होता था। पश्तो को उन्नत बनाने के कई अन्दोलन चले हैं। पठान लोग अपनी भाषा को अन्य प्रान्तों की भाषा की तरह शक्तिशाली बनाना चाहते हैं। जैसा कि कह चुके हैं अफ़गानिस्तान में भी पहले राजकार्यों में फारसी का उपयोग होता था। इसके विरुद्ध पहले पहल बादशाह अमानुल्ला ने जिनकी मातृ भाषा पश्तो ही थी, आवाज़ उठाई। परन्तु दीर्घकाल तक वे सफल न हो सके। हाँ अब उनका प्रयत्न सफलीभूत हुआ है और राजकार्यों में अब पश्तो प्रयुक्त होती है। यद्यपि पठान यह समझते हैं कि पश्तो राष्ट्रभाषा, या आपसी व्यवहार की भाषा नहीं हो सकती और इसके लिये उर्दू ही उपयुक्त है, तथापि वे चाहते हैं कि पश्तो को प्रान्त में भी ऊँची जगह मिलनी चाहिये। उसका साहित्य आदि अच्छा होना चाहिये। इसके लिये कुछ साहित्य सेवी प्रयन्त भी कर रहे हैं और वे कुछ पश्तो अखबारों का सम्पादन भी करते हैं। पहले जब १९३७ ई० से १९३९ तक काँग्रेसी मंत्रिमंडल स्थापित हो गया था तो पाँचवी कक्षा तक पश्तो अनिवार्य कर दी गई थी। इस ओर खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ के प्रयत्न सराहनीय हैं। उन्होंने जब अपना पत्र पख्तूनी निकाला था तो लोगों ने उसका खूब स्वागत किया तथा चाव से पढ़ते थे। बाद को यह पत्र खान साहब के जेल में जाने से बन्द भी होगया था किन्तु अब वह उसी आनबान से पुनः निकलने लगा है।

पठान में अपनी भाषा के प्रति प्रेम खूब है। आपस में जब भी एक दूसरे से मिलता है तो पश्तो ही बोलता है, अँग्रेजी या फारसी नहीं यहाँ तक कि विद्वान खुद तथा अँग्रेजी पढ़े लिखे लोग भी बातचीत पश्तो में ही करेंगे। सन् १६१६ के असहयोग आन्दोलन के बाद तो पठानों का ध्यान अपने साहित्य की ओर भी बड़ी शीघ्रता से गया है। अब अनेकों उच्चकोटि के राष्ट्रीय कवि, लेखक तथा वक्ता पठानों में नित्य उत्पन्न हो रहे हैं। भाषा के सम्बन्ध में भी लोगों का मत बड़ा सुधारात्मक है। वे सरल तथा सुबोध शब्दों के प्रयोग तथा सहज बोधगम्य वाक्य विन्यास की ओर अधिक आकृष्ट हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों पश्तो भाषा में कोई विस्फोट होना चाहता है जिसके उपरान्त भारी परिवर्त्तन तथा सुधार होगा।

यह तो रही पश्तो भाषा की बात। जैसा कि हमने ऊपर कहा है पश्तो भाषा में अब नित्य नये कवि और लेखक उत्पन्न हो रहे हैं तथा अपनी कृतियों से भाषा सहित्य के भण्डार को भर रहें हैं। यहाँ हम एक दृष्टि पश्तो के साहित्य की ओर डालेंगे।

करीब दो शताब्दियाँ हुईं जब पश्तो भाषा का प्रसिद्ध कवि कुशल खाँ खटक उत्पन्न हुआ था। वह पठानों का गौरव था। उसकी कृतियाँ आज लिपिबद्ध उपलब्ध नहीं हैं परन्तु पठानों के देश में उसके गीत गूँजते हैं। पश्तो का दूसरा महाकवि बवजीद अन्सारी है, जिसका तखल्लुस पीर-ए-रोशन था। यही प्रथम कवि है जिसकी रचनाएँ आज भी प्राप्य है। पीर-ए-रोशन का काल १६ वीं शताब्दी है। उसकी मृत्यु सन् १५८५ ई० में हुई थी। उसी युग के दूसरे उल्लेखनीय कवि का नाम अखुन्देदरवेज़ है। लोगों का कहना है कि उसने ५० ग्रन्थ लिखे थे। यदि यह संख्या अतिरञ्जित भी हो तो भी इतना तो समझ में आ ही जाता है कि इस महाकवि ने बहुत लिखा था। इस कवि की दो प्रसिद्ध पुस्तकें 'मखज़न-ए-इसलाम' तथा 'मखज़न-ए-अफगान' हैं। पहली पुस्तक में कवि ने अपने विरोधियों को उत्तर दिया है। दूसरी पुस्तक इतिहास सम्बन्धी है। इसमें कवि ने अफगानिस्तान

का अत्यादि युग से लेकर इतिहास लिखा है। पीर-ए-रोशन की परम्परा ही में एक और उल्लेखनीय कवि मिर्ज़ा अन्सारी नाम से हुआ है।

जो भी हो पश्तो का प्रथम कवि कुशल खाँ ही सर्वोत्कृष्ट एवं शिरोमणि ठहरता है। कुशल खाँ का जीवन काल सन् १६१३ से लेकर सन् १६६१ ई० तक है। पश्तो के प्रथम कवि कुशल खाँ और हिन्दी के प्रथम कवि चंदबरदाई में एक विचित्र समानता है। चंदबरदाई की ही भाँति कुशल कवि होने के साथ साथ योद्धा सैनिक भी था। सैनिक की दृष्टि से कुशल खाँ चन्दबरदाई से भी आगे बढ़ जाता है। यह महाकवि जीवनपर्यंत तत्कालीन मुग़ल सम्राट औरङ्गजेब से लड़ता रहा। कुशल खाँ नेता था। उसने अपनी वाणी का उपयोग सीमा प्रान्त में क्रान्ति जगाने में किया है। यह क्रान्ति मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध थी। कुशल खाँ ने कवि का कर्म पहिचाना था।

अफ़ज़ल खाँ कुशल खाँ का उत्तराधिकारी था। उसने प्रसिद्ध पुस्तक 'तारीख़-ए-मुरासा' लिखी थी। इन कवियों के अतिरिक्त अन्य भी महत्त्वपूर्ण कवि हुए हैं जिनमें अब्दुल रहमान, अब्दुल हमीद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अहमद शाह अब्दाली, इतिहास का प्रसिद्ध हत्यारा [सन् १७४७—१७७२] भी कवि था और अच्छा कवि था। आश्चर्य ? आधुनिक युग में चारसुद्दा के अब्दुल मलिक ने अत्यन्त सुन्दर रचनाएँ की हैं। इन राष्ट्रीय रचनाओं का महत्त्व अब दिन प्रति दिन बढ़ रहा है, कारण पठानों में स्वतंत्रता के भाव भी तो प्रबल हो रहे हैं। राष्ट्रीय जागरण के अतिरिक्त समाज सुधार के लिए भी यह कविताएँ महत्त्वपूर्ण हैं। अब्दुल मलिक जन भाषा का राष्ट्रीय कवि है। उसकी कविताओं में कांग्रेस तथा 'खुदाई खिदमतगारों' के सन्देश निहित रहते हैं।

ऊपर हमने पठान साहित्य के इतिहास का ज़िक्र किया है। पश्तो के साहित्य में गीतों का बहुत बड़ा स्थान है। यहाँ गीतों के विषय में कुछ कह देना अत्यन्त आवश्यक होगा।

'गीतों' को पठानों की भाषा में 'सन्दरा' कहते हैं। सन्दरा पठान

गवैयों का प्राण है, इसे सुनते ही उनका हृदय नाच उठता है। इसके उच्चारण में ही कुछ ऐसी रवानी है कि सुनते ही दिल में एक प्रकार की गुदगुदी मच जाती है। सन्दरा जनसाधारण की कवि सुलभ भावनाओं का साहित्यिक रूप है।

पठान गीत केवल वीर रस के ही नहीं हैं, उनमें अन्य विषयों का पूरा पूरा समावेश है। सन्दरा एक परम्परा से चले आरहे हैं। आज भी आदिम युग के गीत प्रचलित हैं परन्तु उन पर काल का पानी फिर गया है इसलिये उनका रूप ही सर्वथा बदल गया है। ये गीत पठान जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

पठान लोग स्वभावतः ही सङ्गीत प्रेमी होते हैं, और अविराम मार-काट के बीच भी वे क्यों सङ्गीत सभाओं में डूबे रहते हैं, इसका एकमात्र उत्तर उनकी सङ्गीतप्रियता है। गीतों को गा-गा कर गवैया सुनाते हैं अपने अपने प्रिय वाद्य रुबाब के साथ। इन गवैयों में जो कवि होते हैं वे स्वयं भी रचना करते हैं। गीतों की रचना का विषय साधारण दैनिक जीवन भी हो सकता है और कोई काल्पनिक 'रोमांस' भी।

कवि और सङ्गीतज्ञों के लिये यद्यपि कोई स्थान या समय निश्चित नहीं है तथापि हुजरों को गवैयों से विशेष मान मिला है। हुजरे तो गवैयों के अखाड़े ही होते हैं। इन हुजरों में बड़े बड़े उस्ताद अपनी कला और कौशल का खुलकर प्रदर्शन करते हैं। इन हुजरों में नये सङ्गीतज्ञ तथा कवियों को भी प्रोत्साहन मिलता है। हुजरों के लिए समय की अवधि नियत नहीं है। जितनी देर तबीयत रमें हुजरे चलते ही रहते हैं। हम कह भी आये हैं कि स्त्रियों को इन हुजरों में स्थान नहीं मिलता परन्तु उनकी सङ्गीत सभाएँ भी अलग लगती हैं।

गीतों में कई किस्में होती हैं। 'लंडई' इनमें प्रमुख है। लंडई का अर्थ संक्षिप्त होता है। प्रत्येक लंडई गीत दो पंक्तियों के छन्दों का छोटा सा संग्रह होता है। यह छन्द 'टप्पा' या 'मिसरा' कहलाता है। इन टप्पों में न तो तुकान्त का ध्यान रखा जाता है और न मात्रा का।

उदाहरण के लिये एक लंडई गीत पेश करते हैं—

"च स्परले तीरशी क्या बराशी
ज्वानई च तीरशी क्या न राज़ी मइना !
कलम* दस्तो काग़ज़ द-स्पिनो;*
यो सो मिसरे पबिनी स्ते यार ताले गमा ।
वतन* दे स्ता त पके आँसा;*
ज़ द मरगै प पूटो श्ये दरताकोमा ।
द* डज़ और डुज़ दे ज़ामन कीगी;*
ज द मोज़ी प कारे के तोंदा बचाशुमा ।
द* जिने द्रे खीजुना; मज़ै कड़ी;*
द स्त तावीज़ स्पिनै पंजै लंड कदमुना ।
बार* दे तरे शो ज्यड़ा गुला* ।
क्या व बौरा व फ़रियाद शौ तंदे बोबई ।
यार* मे द सभे ज़ द स्वात* यिम;
समा दी वरान शी चे डुयाड़ा स्वात लज़ुना ।"

—"बसन्त ऋतु चली जाती है और (अपने समय पर) फिर लौट आती है; (पर) हे सखी, गई-गुज़री जवानी फिर कभी नहीं लौटती !

—स्वर्ण-निर्मित लेखनी है और रुपहला काग़ज़ । अपने प्रीतम के प्रति मैं कुछ गीत भेज रही हूँ, जो मेरे रक्त से लतपथ हैं ।

—यह तेरा अपना वतन है । खुदा करे, तू इसमें आबाद रहे । मैं तो एक चिड़िया (मुसाफ़िर) हूँ, और तेरी स्मृति में वृक्षों पर ही रात काटती हूँ ।

—(पड़ोस से) गोलियाँ चलने की आवाज़ आ रही हैं; (कई घरों में) पुत्र जन्मे हैं । मैं भी एक फलदार भाड़ी सिद्ध हो सकती थी; पर अपने इस मौजी पति के घर में आकर मैं बिलकुल ही सूख गई ।

—लड़की की तीन वस्तुएँ नयनाभिराम होती हैं—(उसके गले का) स्वर्ण निर्मित 'तावीज़, गोरी-गोरी पिंडलियाँ और छोटे-छोटे कदमों की चाल ।

—अरे बसन्ती पुष्प ! तेरी बारी गुजर गई। अब अमर फरियाद करेगा और पछतायेगा।

—मेरा प्रीतम मैदानी प्रदेश का रहने वाला है और मैं हूँ 'स्वात'-वासिनी। ईश्वर करे, मैदान प्रदेश उजड़ जाय, ताकि हम दोनों स्वात में चले जायँ।

लंडई गीत अपनी सहज सुबोधता के कारण बहुत लोकप्रिय हैं। उनमें छायावादी कविता जैसी सिरपच्ची नहीं होती। थोड़ी भी काव्य प्रतिभा का व्यक्ति लंडई गीत लिख सकता है। आरम्भ में लंडई गीतों में बहुत से मिसरे या टप्पे होते थे परन्तु होते होते ऐसा समय आया जब उनमें एक ही मिसरा रह गया। यह बड़े भारी कौशल का परिचायक था। यथा—

"जाने जड़ी जामो के ओक् फड़;
लक्का प बरान कलीके बाग द गुलोवीना।"

—"उस [कन्या] ने अपने आपको फटे पुराने वस्त्रों से बनाया—सँवारा। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे ग्राम के खण्डरों में फूलों का बगीचा लगा हुआ हो।"

हमारा विश्वास है कि पाठक इस छोटे से गीत की भाव तीव्रता को अवश्य सराहेंगे। गागर में सागर भरने की बात यहाँ कितनी ठीक उतरती है। पठानों के शृङ्गार लंडई गीतों का आपने नमूना देखा है। युद्ध काल में युद्ध गान में लंडई ढंग पर लिखे जाते थे और उन्हें गवैये इधर-उधर गाते फिरते थे। एक नमूना देखिये—

"तीरा कशमीर द् नंगयालो दे;
दा बे गैरत दलता न ओसी मएँ ना !"

—तीरा [घाटी] वीरों का काश्मीर है। हे प्रिये ! इसमें भीरु पुरुषों के लिए स्थान नहीं है।

लंडई गीतों के ढंग पर जहाँ युद्धगान और शृङ्गार गीत लिखे जाते थे वहाँ प्रशस्तियों और लोरियों का भी प्रादुर्भाव होता था।

लेकिन पठान जीवन में एक परिवर्त्तन काल आया। लंडई की

प्राचीनता से अब लोग ऊब गये थे, किसी नवीन शैली की तलाश सबको थी। उसी समय पठान-जीवन की रंगभूमि में यूनान देश से 'स्ट्रोफ एण्ड ऐण्टी स्ट्रोफ' (Strophe and Anti Strophe) नामक प्राचीन गान की शक्ल में 'लोबा' नामक नवीन गान उपस्थित हुआ। लोबा का अर्थ खेल होता है जो उसकी नाटकीय शैली को देखते हुये बहुत ही उपयुक्त है। लोबा की एक पुरानी रचना का उदाहरण देखिये—

"गुलुना वाड़ा शा रसूल द बाग़ा वड़िना।
प शग्रा के दे गुल रावड़ा।
'बरशा बौरा नसीम त बाया ;
वे द रातलो दे गोटई न स्पकी गुलुना।'
गुलुना वाड़ा······
'प गुल द खुदाये फज़ल पकार दे,
स ब नसीम बी सबा बस्पकी गुलुना।'
गुलुना वाड़ा······"

—"हर कोई शाह रसूल के बाग़ से फूल ले आता है। तू भी जा और अपने हाथ के अँगूठे तथा उसके साथ की उँगली के बीच पकड़कर एक फूल ले आ।

—हे भ्रमर! जा और बादे-नसीम [बसन्ती-वायु] से कहदे कि यदि उसका आगमन न होगा, तो फूल नहीं खिलेंगे।

—फूलों पर खुदा की रहमत चाहिये। बादे-नसीम की क्या ताक़त है कि फूल खिलाए?"

लोबा के रचयिता लंडई गीतकारों के कृतज्ञ होंगे ऐसा दोनों की शैली को देखकर समझा जाता है। लोबा का प्रचार हो रहा है और वह भी लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। लोबा में आनन्द वृत्तियों के साथ साथ मनोवृत्तियों का भी चित्रण होता है और नाटकीय ढंग से। लोबा की करुणा प्रसिद्ध है।

इस प्रकार पाठक उपरोक्त पंक्तियों से पठानों के साहित्य का कुछ परिचय पा गये होंगे। हमने यहाँ पद्य साहित्य का ही उल्लेख किया,

गद्य पश्तो का उतना उन्नत नहीं है। पश्तो का साहित्य ग्राम गीतों की तरह का है। और इसीलिए जन साधारण की मनःप्रकृति का अच्छा प्रकटीकरण करता है।

उपरोक्त पंक्तियों में हमने पाठकों को पठानों के सामाजिक जीवन तथा साहित्य का परिचय कराया है। यह सत्य है कि पठान बहुत पिछड़ी हुई जाति है, उसे पश्चिमी सभ्यता के मापदण्ड पर रखकर सभ्य नहीं कहा जा सकता। दो शताब्दि पूर्व वे हिटलर और मुसोलिनी की साम्राज्य लिप्सा, स्टैलिन या लेनिन का साम्यवाद और अँग्रेजों का तथाकथित प्रजातंत्र भी नहीं जानते थे। किन्तु पठान की नई पीढ़ी यह अनुभव कर रही है कि संसार की प्रगति से क़दम मिलाकर चलना नितान्त आवश्यक है। और इसके लिये वह प्रयत्न भी कर रही है। स्कूल और कालेजों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने का यह रहस्य है। जबसे खान अब्दुल ग़फ्फार ख़ाँ ने कांग्रेसी सन्देश सीमा प्रान्त में पहुँचाया है तब से आशातीत सुधार हुए हैं। 'खुदाई खिदमदगार' इसके जीते-जागते प्रमाण हैं। पठान बड़ी तेज़ी से नवीनता की ओर बढ़ रहे हैं।

पठानों के सामाजिक जीवन का विवरण हम उसके सांस्कृतिक पक्ष को देखकर समाप्त कर देंगे।

पठानों की सांस्कृतिक परम्परा

पिछले अनुच्छेदों में हम पठानों का सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन लिख चुके हैं, यहाँ हम उनके सांस्कृतिक जीवन की एक झाँकी देंगे। सांस्कृतिक जीवन के अन्तर्गत हम पठानों के धर्म, जाति, भाषा, कला तथा दर्शन का ऐतिहासिक उतार दिखायेंगे। यों इतिहास के परिच्छेद तथा सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन विवरण के अन्तर्गत पाठक धर्म, जाति, भाषा का कुछ आभास पा गये हैं। हम यहाँ उसका स्पष्टीकरण तथा विशदीकरण करेंगे।

आर्यों के अतीत में जाने पर जिज्ञासुओं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनमें एक सबसे बड़ी कठिनाई आर्यों की जन्म-भूमि के विषय में है। इस सम्बन्ध में दो बड़े-बड़े और दो छोटे छोटे

मत हमें मिलते हैं। यों और भी बहुत से मत हैं। प्रमुख रूप से, पहला मत कहता है कि आर्य मध्य एशिया के मूल वासी थे। दूसरा मत उन्हें उत्तरी ध्रुव का भी मानता है। तीसरा बड़ा मत वह है जो आर्यों का मूल स्थान भारतवर्ष को ही मानता है। एक छोटा मत वह भी है जो उन्हें यूरोप में ले जाकर बिठा देता है। इन उपरोक्त मतों से हम साधारणतया परिचित हैं। एक मत और है जो आर्यों को अफ़गानिस्तान, तत्कालीन नाम 'आरियाना' का निवासी मानता है। इस मत के समर्थन में काबुल के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री अहमद्अली कोहज़ाद ने हाल में एक लेख लिखा था। उसका मत वेद और अवस्ता की समानताओं पर स्थित है। लेखक ने भौगोलिक नामों, तथा दोनों की भाषा में बहुत कुछ मेल और एकमएक देखकर लिखा है—

"वेद और अवस्ता के पाठों में जो असाधारण समानता है, एवं उनकी भाषा, उनके दर्शन, कथाओं, धर्म और सभ्यता के अन्य तत्वों में जो एक रूपता हैं, उससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक और आवस्तिक धर्म के अनुयायियों की जन्मभूमि आरियाना [अफ़गानिस्तान] थी। यहीं से वैदिक सभ्यता विभिन्न शाखाओं के द्वारा उत्तर-पश्चिम भारत में फैली, तथा यहीं से आवस्तिक धर्म उस भूमि के निवासियों को मानसिक शान्ति प्रदान करने लगा, जिसे आज तक ईरान कहते है।"

यदि लेखक के इस मत से कि आर्यों का मूल निवास आरियाना था हमारा मतभेद भी है तो इतना निष्कर्ष तो बिना विरोध के निकल आता है कि उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में प्रथम सांस्कृतिक ज्योति आर्यों की ही थी। हाँ यदि अन्य मतों को भी लें, जिनके अनुसार आर्य मध्य एशिया, उत्तरी ध्रुव अथवा यूरोप के माने जाते हैं तो भी इतना तो सत्य है कि यह ज्योति प्रथम नहीं तो दूसरी अवश्य थी। इस दशा में प्रथम ज्योति उन द्रविड़ों की होगी जिनके अवशेष अभी कुछ दिन पूर्व पुरातत्त्व के जिज्ञासुओं ने हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो को खोदकर निकाले हैं। इन अवशेषों को देखने से विदित होता है कि द्रविड़ लोग

निस्सन्देह सभ्यता की दौड़ में बहुत आगे थे। उनके घर, नगर देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। द्रविड़ लोगोंके वे नगर आज भी हिन्दुस्तान के कई नगरों से मुकाबला कर सकते हैं। द्रविड़ों के वैभव के आगे आर्यों को भी झुकना पड़ा था, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।

द्रविड़ों के पश्चात् भी यदि आर्यों को मानें तो भी आर्यों के समय की एक जाति का हमें नाम मिलता है जो आज भी अपने मूल नाम में मौजूद हैं। हम फिर उपरोक्त लेखक का ही मत लिखते हैं जो अफगानिस्तान और वहाँ से आगे हिन्दुस्तान की ओर आने वाली जातियों के सम्बन्ध में है। लेखक उन जातियों में से एक का उल्लेख इस प्रकार करता है—

"पशता, या पखता, पशतान या पखतान इनका एक वचन है पशतून या पखतून। हीरोडोटस इन्हें पकैटाइसस नाम से पुकारता है। यह शब्द अभी तक पखतिकाह के रूप में सुरक्षित है। यह जाति अब भी अफ़गानिस्तान की आबादी का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।"

अफ़गानिस्तान में तो वह है ही उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के पठान भी वही पख्तून हैं, यह हम दिखा आये हैं,। यह पख्तून ही अनेक जातियों का प्रभाव पा पा कर और प्रान्त में इसलाम धर्म स्वीकार करके पठान बन गई है, यह निस्संशय सत्य है। आज की पठान जाति यद्यपि मूल में आर्य है परन्तु उस पर अनेकों अनार्य जातियों का रंग चढ़ा है यह हमारे इतिहास से स्पष्ट है।

दूसरी बात भाषा के सम्बन्ध में। हम कह आये हैं कि पठानों की भाषा 'पश्तो' है, और यह भी सिद्ध कर आये हैं कि यह पश्तो भी संस्कृत की ही बेटी है। वैदिक युग में हिन्दूकुश पर्वत के इस और उस पार भी संस्कृत और विशेषकर वैदिक संस्कृत बोली जाती थी, ऐसा विद्वानों का मत है। वैदिक मंत्रों के पूत गान कपिशा से लेकर पंजाब तक के वायु-मण्डल को गुँजाते रहते थे, वातावरण वैदिक ही था। "विश्व विख्यात वैयाकरण ऋषि पाणिनि ने जो ईसा से ४०० वर्ष पूर्व अटक के आस-पास किसी स्थान पर रहते थे, भाषा का संस्कार किया। तब ही से उसे संस्कृत संज्ञा मिली।" यह संस्कृत भारत में युगों तक

फलती-फूलती रही परन्तु बीच में कुछ अटकाव आने से शृङ्खला टूट गई थी जो पुनः अशोक के शासन काल में आकर जुड़ गई। इस संस्कृत ने भी अपने आश्रयदाताओं की भाँति अनेक पानी देखे हैं। अन्त में अरबी, फ़ारसी का रंग जो इस पर चढ़ा तो इतना गहरा बैठा कि वह संस्कृत से अधिक फ़ारसी बन गई। अब संस्कृत के शब्दों को खोज खोज कर यह निश्चय किया जाता है कि यह भाषा मूल में संस्कृत की ही दुहिता है। संस्कृत पर पहला महत्त्वपूर्ण पश्चिमी आक्रमण महमूद गजनवी ने किया। महमूद स्वयं जब आया तब और उसके बाद भी भारत में अफ़गानिस्तान के उलमा और कवि आते रहे, जिन्होंने साहित्यिक सम्बन्ध को दृढ़ किया। फरुखी, अनसरी, असजदी, आओफी और बरूनी जैसे अफ़गान कवि और विद्वानों ने भारत में सर्वथा नवीन साहित्यिक प्रकाश जगाया। उस समय ख़ुरासान में जो दारी भाषा चल रही थी, जिसे आम तौर पर फ़ारसी कहा जाता है, बड़ी समृद्ध भाषा थी जो काव्य शैली के लिये बहुत उपयुक्त थी। इस भाषा का केन्द्रस्थल गज़नी था, और फिर क्रमशः यह उत्तर-पश्चिमी भारत में फैल गई। यह फ़ारसी ही थी जिसने आज की पश्तो भाषा के अधिकांश को प्रभावित कर रखा है।

भाषा के पश्चात् हम धर्म का विषय लेते हैं। सीमा प्रान्त का पहला धर्म आर्यों के काल में ब्राह्मण धर्म था। ब्राह्मण धर्म वैदिक धर्म है। जब भारत में महात्मा बुद्ध की क्रान्ति आरम्भ हुई तो सीमा प्रान्त भी उस प्रभाव से वंचित न रह सका। सम्राट अशोक ने पहले तो अपने ही देश में अहिंसा का धर्म फैलाया और उसे हिन्दूकुश के दक्षिणी ढलानों तक ले गया। बाद को विदेश में भी यह ज्योति फैलने लगी। ए० फौशर के अनुसन्धान से ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म नगरहार वर्त्तमान नान्गरहर या जलालाबाद से लेकर लंपाका [वर्त्तमान लगमान] तक और वहाँ से तगाओं, नेजेराओं, काबुल और बामियाँ घाटियों की राह यह धर्म हिन्दूकुश के उत्तर में हैबक तक पहुँच गया तथा वहाँ से बैक्ट्रिया तथा तुखारिस्तान तक फैल गया।' किन्तु क्रमशः वह वैभव

टूटता गया। कनिष्क के स्तूप और बिहार ध्वस्त होते गये यहाँ तक कि एक समय आया जब बौद्धधर्म सीमा प्रान्त से लगभग लुप्त ही हो गया। यद्यपि आज भी बौद्धधर्म के अवशेष और उनके धारणकर्त्ता कुछ लोग सीमा प्रान्त में मौजूद हैं परन्तु उनकी संख्या अत्यन्त नगण्य है। बौद्धधर्म का ह्रास हो रहा था कि तभी इसलाम धर्म आ पहुँचा। कुरान और मोहम्मद साहब का धर्म अत्यन्त पवित्र था परन्तु उसका नवीन रूप कदाचित कुरूप हो गया था और इसी कारण शायद सीमा प्रान्त के निवासियों के कठोर जीवन के लिये बहुत उपयुक्त था तभी उन्होंने दौड़ कर उसे उठा लिया। इसलाम का अर्थ होता है 'ईश्वरेच्छा के आगे आत्म समर्पण' परन्तु लोगों ने उसका मनमाना अर्थ किया और त्याग के स्थान पर भोग उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। सीमा प्रान्त के वासियों पर इस नये धर्म का प्रभाव कोई बहुत गहरा नहीं पड़ा। चूँकि तलवार और ताक़त के बल पर इसलाम को घसीटा गया था। इस कारण मारकाट और खूँखारी का समर्थन ही होता था। यही कारण था कि पठानों को यह धर्म उनके जीवन के अनुरूप ही लगा था। ब्राइट महोदय का मत है—

*"इसलाम धर्म ने पठानों को नया कुछ भी नहीं दिया। और उनका पहले का कुछ लिया भी नहीं।"

यह कहते समय लेखक का मतलब आध्यात्मिक गुण से मालूम देता है। न तो इस्लाम ने कोई नया सद्गुण दिया और न लिया। इतना तक तो ठीक है परन्तु बहुत सी बातें जिन्हें अवगुण कह सकते हैं अवश्य दी हैं, यह मानने में सन्देह नहीं। धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता आदि ऐसे ही गुण हैं। सीमा प्रान्त की यह धार्मिक परम्परा रही।

दार्शनिक विचार से सीमाप्रान्त की स्थिति लगभग पूर्णतः वही रही है जो भारतवर्ष की। हाँ एक बात अवश्य है। चूंकि सीमाप्रान्त अफगा-

*"Islam gave the Pathans nothing new. And nothing old did it take away."

—*J. S, Bright.*

निस्तान के निकट है, इस कारण अफगानिस्तान की दार्शनिक भावनाएँ सदा ही साधारणतः भारतीय और विशेष कर सीमा प्रान्तीय दार्शनिक भावनाओं पर अपना प्रभाव डालती रही हैं। प्रारम्भिक वैदिक काल में सीमाप्रान्त का दर्शन वेद के दर्शन से भिन्न नहीं था, दोनों समान ही थे। आज इसके प्रमाण विशेष नहीं मिल रहे हैं कारण बहुत पुरानी बात है। हाँ बौद्ध युग के अवशेष अब भी सीमा प्रान्त की दार्शनिक उद्‌भावनाओं को दिखाने के लिए मिलते हैं। जिस समय मगध और उसके आसपास महात्मा बुद्ध दार्शनिक एवं धार्मिक क्रान्ति के शंखनाद कर रहे थे उस समय सीमाप्रान्त एक बहुत बड़ा चोटी पर का साँस्कृतिक केन्द्र था। इसके प्रमाण हैं तक्षशिला के अवशेष। तक्षशिला वह मध्य-बिन्दु था जहाँ पर अनेक रेखायें अनेक दिशाओं से आकर मिलती थीं। भारतीय भावनाओं का केन्द्रस्थल तो वह था ही साथ ही फारसी और सुदूर यूनान की हवाएं भी वहाँ विश्राम लेती थीं और अपनी गन्ध छोड़ जाती थीं। बौद्ध दर्शन के बुद्धिवाद से सीमा प्रान्त भी आक्रान्त था। अशोक के राजत्वकाल में सैकड़ों नयनाभिराम स्तूपों और बिहारों की स्थापना कंधार और कपिशा में की गई थी। हम कह चुके हैं कि सीमा प्रान्त मध्य बिन्दु था। जिस समय बौद्ध दर्शन सर्वोपरि छाया हुआ था उसी समय अफगानिस्तान की जरथुस्त्र भावना भी उसमें आ मिली और इससे पहले रंग में कुछ नई चमक आ गई। बौद्ध दर्शन अपेक्षाकृत उदार हो गया। अशोक के शासन काल और उसके कुछ पीछे तक बौद्ध धर्म एक ठोस संज्ञा रही, परन्तु परवर्त्ती युग में वह एक न रह सका। "ईसा से ६ शताब्दी पूर्व मगध और बनारस में अद्‌भुत बौद्ध धर्म की एक ही शाखा थी जिसे 'हीनयान' अर्थात मुक्ति का संकुचित मार्ग कहते हैं।" परन्तु जब विश्व विख्यात सम्राट कनिष्क राजगद्दी पर बैठे तो 'नये मगध' अर्थात् कंधार के भिक्षुओं ने एक नई शाखा को जन्म दिया, जिसे संसार 'महायान' के नाम से जानता है। सम्राट कनिष्क ने सम्राट अशोक की ही भाँति अपनी कीर्ति-ध्वजा भारत [सीमा-प्रान्त] में तथा अफगानिस्तान में फहराई थी।

'पुरुषपुर' आधुनिक पेशावर कनिष्क की शीतकालीन राजधानी थी। उसी ने बामियाँ की प्रसिद्ध ३५ फीट ऊँची महात्मा बुद्ध की मूर्त्ति बनवाई थी तथा उसके समीपस्थ स्तूप का श्रेय भी उसी को मिलता है। पुरुषपुर में निकला वह भव्य संघाराम तथा १५० फीट ऊँचा स्तूप भी कनिष्क कीर्ति ध्वजा के ही स्तम्भ हैं। मौर्य काल के पश्चात गुप्तकाल में जब सम्राट की सीमायें बढ़ी थीं तो सीमा-प्रान्त भी ब्राह्मण धर्मसे प्रभावित रहा होगा, इसमें संदेह नहीं है। परन्तु जब गुप्त सम्राटों की शक्ति टूटने लगी सीमा प्रान्त अशान्त हो गया। आक्रमणकारियों के अड्डे लगभग वहीं पर जमते थे। क्या हुआ यदि एक बार स्कन्द गुप्त ने बाह्लीक तट तक अपना दण्ड पहुँचा दिया? उस समय की सीमा प्रान्तीय भावनाओं का कोई निश्चित और सम्बद्ध इतिहास नहीं है। यह निश्चिन्तता इसलाम के साथ ही आई। इसलाम के आगमन तथा प्रभाव के कारण ही सब बुद्ध मूर्त्तियाँ स्तूप बिहारादि तोड़ दिये गये। क्यों? क्योंकि मूर्त्तिपूजक क़ाफिर थे। ईश्वर के सम्बन्ध में पहले अद्वैतवाद था तो अब पैगम्बरी खुदावाद आ पहुँचा। तब से आज तक वही दार्शनिक विचारधारा चल रही है और ईसा का धर्म वहाँ नहीं पहुँच सका है। उसके पहुँचने की दार्शनिक विचार से कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं है। कारण दोनों धर्म इस दृष्टिकोण से समान तथा सजातीय मालूम पड़ते हैं।

संस्कृति की चर्चा के अन्तर्गत हम अन्तिम विचार कला का करते हैं।

हमने एक स्थान पर कहा है कि बौद्ध धर्म ने अपने तत्वों का दान अफ़गानिस्तान को भी दिया था। अतः अफ़गानिस्तान भारत का ऋणी हुआ। विद्वानों का मत है कि अफ़गानिस्तान ने यह ऋण 'धार्मिक भावनाओं की प्रतीक चित्रकला के रूपमें' वापस कर दिया। कला के विकास पर विचार करते समय कलाकारों का मत यों मिलता है—'तीसरी शताब्दी ईसी पूर्व के उत्तरार्द्ध में प्राचीन बैक्ट्रियन कलाकारों के विचारों से अनुप्राणित यूनानी सुरुचि ने उस कला को जन्म दिया जो

यूनान—बैक्ट्रियन के नाम से प्रसिद्ध है । इस यूनान—बैक्ट्रियन कला का प्रभाव तत्कालीन समाज पर अत्यंत व्यापक रूप से पड़ा । भारत, ईरान, सिनक्यांग और मंगोलिया तक अप्रकट रूप से सही, इसके ऋणी हैं । इसी कला की वायु से अनुप्राणित होकर अफगानिस्तान के बौद्ध कलाकारों ने बाद को यूनानी—बौद्ध कला की उद्भावना की । कुछ समय पूर्व विद्वानों का मत था कि इस कला का जन्मस्थान कंधार [काबुल की घाटी] है, परन्तु अब वह विचार बदल गया है और परिणाम एक लेखक के अनुसार कुछ इस प्रकार निकलता है—"यूनान—बौद्ध कला ने बैक्ट्रिया में जन्म लिया तथा ईसा की पहली शताब्दी के अन्त में एवं दूसरी के प्रारम्भ में विशेष कर कंन्धार में, कनिष्क के शासन-काल में इसका विकास हुआ । अतः कहा जा सकता है कि सीमा-प्रान्तीय कला की जननी यह यूनानी बौद्धकला ही है । सीमा प्रान्त के आगे के कला-इतिहास को समझने के लिये तत्कालीन भारती कला को भी समझ लेना उपयुक्त होगा ।

भारतीय कला विकास के दो युग हैं । प्रथम युग मौर्य सुङ्गवंश का समकालीन है । इस बीच में साँची, मथुरा, अमरावती और गुप्तकला की प्रणालियाँ प्रचलित रही थीं । साँची कला के प्रथम दर्शन ईसा से चार शताब्दी पूर्व हुए थे । इस युग की कला की विशेषता थी प्रतीकात्मकता । चित्रों में पशु-पक्षी और फूल-पत्तियों की ही भरमार दीखती है । मूर्त्तिरूप में तो वे बुद्ध की मूर्त्ति बनाने का साहस भी न कर सके ।

भारतीय कला का दूसरा युग ईस्वी सन् के आरम्भ से शुरू होता है । यह ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक चलता माना जाता है । इस युग में मुख्य रूप से तीन कला-प्रणालियाँ फल-फूल रही थीं । स्थान के विचार से पहली—केन्द्र उत्तर में मथुरा की प्रणाली थी, दूसरी—दक्षिण पूर्व में अमरावती की प्रणाली तथा तीसरी—उत्तर-पश्चिम में यूनानी बौद्ध-कला-प्रणाली चल रही थी । इस यूनानी-बौद्ध प्रणाली ने पहली और दूसरी प्रणालियों पर भी अपनी छाया डाली थी । इस

प्रकार सीमा प्रान्त में विकसित होने वाली यह यूनानी-बौद्ध-कला सीमा प्रान्त ही नहीं, वरन् भारत के भीतरी भाग में भी जा पहुँची।

कला-विकास के अन्तिम युग में बौद्ध-कला का भारतीयकरण हुआ तथा वह दो स्थलों पर दो आदर्शों में जाकर फैली। पहला आदर्श 'अजन्ता' का है तथा दूसरा 'अलोरा' का।

कला की दृष्टि से सीमा प्रान्त का महत्त्व बहुत बड़ा रहा है। सीमा प्रान्त वह बाजार है जहाँ सब प्रकार का लेन-देन हुआ। पश्चिम की कला, धर्म, भाषा आकर सीमा प्रान्त की मण्डी में एकत्र हुई है और उसी प्रकार पूर्व की कला, धर्म और भाषा भी। जब लेन-देन हो चुका तो दोनों देशों के यात्रियों के पास कुछ नया ही सामान था और जिस प्रकार आज के बम्बई के बाजार में मद्रासी, गुजराती, महाराष्ट्री, बंगाली, पंजाबी आदि आदि लोग जुड़ते हैं और बम्बई कुछ अजीब ही अजायबघर होती है उसी प्रकार की दशा सीमा प्रान्त की भी थी। संस्कृति के विचार में साहित्य का भी विचार आवश्यक होता है, परन्तु वह हम पहिले ही कर आये हैं।

इस परिच्छेद के अन्तर्गत यहाँ तक हमने पाठकों के सम्मुख पठानों के भूत और वर्त्तमान जीवन को रखा है। इस प्रकार 'कैसे हैं वहाँ के निवासी' का लगभग पूरा उत्तर मिल जाता है। लगभग इसलिये चूँकि अभी अल्पसंख्या का तथा काफ़िरों का प्रश्न रह गया है। उसका उत्तर दे देने पर हमारा यह विषय समाप्त हो जायगा। इस परिच्छेद के अन्तर्गत हमें एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न को उठाना है। वह है—'कितने हैं वे लोग।' अर्थात् यह प्रश्न जन-संख्या का है? इसलिये सबसे पहले अब इसी को लेते हैं।

पठानों के देश में जन-गणना एक कठिन कार्य है। उनके देश की दुर्गमता, और फिर ऊपर के निवासियों की अकृपा आदि कुछ ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से सीमा प्रान्त की जन-गणना अभी तक ठीक से नहीं हो सकी है। इसलिए हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे इस पुस्तक में दी हुई संख्या को बावन तोले पाव रत्ती सही कदापि न मानें।

इन आँकड़ों से केवल अनुमान किया जा सकता है। हाँ, एक बात अवश्य है। वह यह कि कठिनाई और उससे उत्पन्न भूल आजाद कबीलों के देश में अधिक है। इसकी अपेक्षा स्थायी-जिलों में स्थिति शांत होने के कारण, वहाँ की जन-गणना कर सकना सहज है। इसलिए स्थाई-जिलों की जन संख्या पर हम विश्वास कर सकते हैं। भूल दोनों के योग में है। इन आँकड़ों के अन्तर्गत अल्प संख्यकों का अलग उल्लेख नहीं है, इससे यह न समझना चाहिये कि सीमा प्रान्त में सब पठान ही हैं। हिन्दू और सिक्ख लोग तो हैं ही, कुछ संख्या ऐसी भी है जो न तो हिन्दू हैं, और न सिक्ख, तथा पठान भी नहीं है। इस जाति को काफिर के नाम से पुकारा जाता है, तथा उन्हीं के नाम के अनुसार उनके देश का नाम भी काफिरिस्तान पड़ गया है।

यहाँ हम सन् १९२१ ई० की जन-गणना के अनुसार निर्णीत आबादी लिखते हैं। हम लिख आये हैं कि सीमा प्रान्त में जन-गणना कर सकना सहज नहीं है, इसलिये हमें दो प्रकार के आँकड़े मिलते हैं। एक तो अनुमान पर आश्रित हैं दूसरे गणना पर।

एजेन्सियों की आबादी

	गणना के अनुसार	अनुमान से
१—मालकन्द (दीर, स्वात, चित्राल)	६,०६०	८,५६,८००
२—खैबर	६,०५४	२,१८,०५५
३—कुर्रम	४,०७२	६६,०७०
४—टोची	६,५५६	१,३२,३००
५—वाना	२२,७२२	१,२७,८३०
कुल	४८,४६७	१४,३७,०५५

स्थाई ज़िलों की आबादी

	गणना के अनुसार	अनुमान से
१—हज़ारा	×	१,४६,६५६
२—पेशावर	×	१०,३४,०१५
३—कोहाट	×	१,१६,६००
४—बन्नू	३४	११,०००
५—डेरा इस्माइल खाँ	५,६०६	२५,३४०
कुल	५,६४३	१३,३३,६११

सन् १९२१ के अनुसार उ० प० सीमा प्रान्त की आबादी

	गणना के अनुसार	अनुमान से
१—एजेन्सियाँ	४८,४६७	१४,३७,०५५
२—स्थाई जिले	५,६४३	१३,३३,६११
कुल	५४,४१०	२७,७०,६६६

उपरोक्त आँकड़े सीमा प्रान्त की सन् १६२१ ई० की जन-गणना के अनुसार आबादी दिखाते हैं। प्रति शताब्दी में १० प्रति सैकड़ा की वृद्धि की जा सकती है। जो हो हमें सन् १६४१ ई० की जन-गणना मिलती है जो इस प्रकार है—

१—आजाद कबाइलों की आबादी	२३,७७,५६६
२—स्थाई जिलों की आबादी	३०,३८,०६७
	५४,१५,६६६

उपरोक्त आँकड़ों से पाठक देखेंगे कि सीमा प्रान्त की आबादी में आशातीत वृद्धि हुई है। यहाँ एक बात कह देनी उचित है। यह वृद्धि या भेद हमें बताती है कि किस प्रकार, सीमा प्रान्त की जन-गणना में भूल हुआ करती है। लोगों के आ बसने और देश छोड़कर चले जाने से जो कमी या बढ़ती आबादी में हो रही है उसका भी हिसाब लगाना मुश्किल

है। भविष्य में यदि सुव्यवस्था हो सकी तो सम्भव है कि जन-गणना ठीक-ठीक लग सके।

पठानों के हथियार

इस पुस्तक के भिन्न-भिन्न स्थानों पर पाठक पढ़ आये हैं कि पठान बड़ी लड़ाकू जाति है। लड़ाकू कह देने से यह स्पष्ट नहीं होता कि उनकी लड़ाई होती किस प्रकार है। दूसरे शब्दों में इस सवाल को यों भी रख सकते हैं कि पठान लड़ते किस चीज से हैं ? उनके हथियार कैसे हैं ? पठान के जीवन में नई सभ्यता का अभाव देखकर आप सोच सकते हैं कि उनके हथियार भी पुराने ढग के होंगे, अर्थात् भाला, तलवार और धनुष। बहुत हुआ तो पुरानी तरह की देशी बन्दूक। परन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। हथियारों के मामले में पठान बहुत आगे हैं। यह सत्य है कि उनके पास ध्वंसक विमान, राकेट बम्ब, या अणु बम्ब नहीं हैं परन्तु फिर भी उनके हथियार बड़े मारू हैं।

पठान का प्रधान अस्त्र है राइफल या बन्दूक। इसके अलावा उन्होंने छोटी-मोटी तोपें भी या तो छीनकर या ढलवा कर इकट्ठी करली हैं। और इस प्रकार उनका युद्ध आधुनिक प्रकार का होता है। पठान बड़े चतुर निशानेबाज होते हैं। एक-एक कारतूस की कीमत उनके लिये बहुत अधिक होती है इसलिए वे उसकी बरबादी नहीं सह सकते। अँग्रेजी सेना की एक-एक राइफिल की बड़ी से बड़ी क़ीमत वे लोग हँस हँसकर दे डालते हैं। साधारण पठान की चार वर्ष की औसत आमदनी जितनी होती है उतना रुपया तक एक राइफल के लिये देने में वे नहीं डरते। पचास पाउण्ड तक देना उन्हें नहीं अखरता। पठान की जिन्दगी की सबसे बड़ी सम्पत्ति यह बन्दूक है।

सरकारी तौर पर अनुमान किया जाता है कि आजाद कबाइलों के पास कम से कम २५,००० बढ़िया हथियार हैं। अगर आप स्थाई जिलों की सीमा पार करके जायें तो देखेंगे कि हर एक मर्द चाहे बूढ़ा हो या जवान, हिन्दू हो या मुसलमान, पूरी-पूरी तरह हथियारबन्द है। हथियार बेचना-खरीदना तो अफ़रीदियों का पेशा ही है। सन् १८९७

में ब्रीचिंग पाउडर वाली बन्दूकें पठानों के हाथों में दिखाई दीं और उसके बाद तो फ़ारस की खाड़ी से लगाकर सीमा प्रान्त तक बन्दूकों का अच्छा-खासा व्यापार होने लगा। काबुल से भी राइफिलों को रास्ता मिला और आ-आकर सीमा प्रान्त में गिरने लगीं। उसी समय कुछ बन्दूक चोर भी उठ खड़े हुए। इन बन्दूक चोरों ने हमेशा से बड़ा गजब ढाया है। अँग्रेजों की छावनियों में से किस सफाई के साथ बन्दूकें, घोड़े और कारतूस उड़ा लाते हैं यह जानना कठिन हो जाता है।

कबाइली लोगों के पास बन्दूकों का एक और रास्ता है। कोहाट के दर्रे में बन्दूकों का एक कारखाना स्थापित हुआ है, जिसमें नित्य नई नई बन्दूकें बनकर आती हैं। यह ठीक है कि यह देशी बन्दूकें उतनी टिकाऊ नहीं हैं जितनी विलायती, लेकिन उनकी मार कम नहीं है।

इतना होते हुए भी यह समझ में नहीं आता कि भारत सरकार क्यों इस कारखाने को चलाने देती है। सच बात तो यह है कि अँग्रेजों में हथियार छीनने की ताकत नहीं है। कबाइलियों के हथियार नहीं छीने जा सकते। इसके लिए वे अपना खून भी बहा देंगे। इसका नतीजा यह होता है कि पठान की बन आती है और वह नये उत्साह से शक्ति संचित करता है और फिर नया आक्रमण करता है।

सरकार की ओर से कुछ कबाइलियों को खस्सादार या स्काउटों के काम में ले लिया गया है। जो लोग नहीं लिये गये हैं उनको शान्त रखने के लिये 'मावजीब' (जो सरकार को रिश्वत है) भेंट की जाती है। कभी कभी ये लोग ठेके पर भी काम में लगा लिये जाते हैं। उस समय उनके काम सेना की रखवाली करना, लारियाँ चलाना आदि होते हैं।

आजाद कबाइलियों की सैनिक शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है। परन्तु उनमें से हरएक प्रायः आपस में लड़ते रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप यह शक्ति छिन्न-भिन्न रहती है। प्रत्येक उपजाति की सैनिक शक्ति का उल्लेख हम पीछे कर आये हैं।

गैर-क़ानूनी-भगोड़े

सीमा प्रान्त गैर-क़ानूनी-भगोड़ों का रक्षा स्थान है। सारे हिंदुस्तान के अपराधी जो क़ानून की निगाह बचाकर भाग जाते हैं उन्हें सीमा प्रान्त शरण देता है। मुल्ला लोग इन भगोड़ों को छिपाकर उनका अच्छा उपयोग करते हैं। साथ ही कबाइलों के लिये भी ये बड़े काम के आदमी होते हैं। चूँकि वे पड़ोसी जगहों के रहस्य को जानते हैं, एक एक मोड़ और गली से परिचित हैं इसलिये अफरीदी डाकुओं के लिये यह लोग विभीषण का काम करते हैं। और फिर यहाँ उनकी ज़िन्दगी भी मजे से कटती है। भेष बदल कर छिप-छिपाकर ये लोग अपने घर वालों से भी मिल सकते हैं।

सच तो यह है कि सीमा प्रान्त के बहुत से झगड़ों की जड़ भी यह भगोड़े ही हैं। एक स्थान पर हम कह आये हैं कि यह भगोड़े शत्रुओं की बहू-बेटियों को ले भागते हैं और यह झगड़े की जड़ बन जाता है। और फिर इनसे बचने का कोई उपाय भी नहीं है, कारण कबाइली इनकी रक्षा करना अपना परम धर्म समझते हैं। परिणाम स्पष्ट है। दिन दूनी रात चौगुनी गति से झगड़े और अपराध बढ़ते जारहे हैं। पड़ोसी स्थानों (स्थाई ज़िलों) की शान्ति इनके मारे सदा काँपती रहती है। एक-एक साल में नौ-नौ सौ हत्याएँ होती हैं। एक लेखक के अनुसार—

"साढ़े बाईस लाख की आबादी के इस छोटे से प्रान्त, सीमाप्रांत, को उसके झगड़ों का अन्दाज़ ही दुनिया के सबसे अधिक उच्छृङ्खल देशों में पहुँचा देता है।"

और फिर इनसे बचने का उपाय सरकार बन्दूकों से पूछती है। परिणाम सदा निरर्थक होता है। इन झगड़ों और उनके कर्त्ता भगोड़ों को मार कर ठीक नहीं किया जा सकता। वे भूखे हैं। खाने को अन्न नहीं मिलता तब भला वे करें भी तो क्या करें? इस सम्बन्ध में क़य्यूम साहब का मत है—

"जैसा कि वहाँ के अँग्रेज़ अफ़सर आज तक सोचते हैं, कबाइली

लोगों की गैर क़ानून की समस्या सैनिक आक्रमणों से यह नहीं सुलझाई जा सकती। प्रधानतः यह आर्थिक समस्या है।"*

सीमा प्रान्त के अल्प-संख्यक

आज अल्प संख्यको की बात कहने के पूर्व ही पाठक इस सम्बन्ध में अपने बड़े-बड़े विचार बना लेते हैं और तब लेखक की बात सुनते हैं। और यह सकारण है। कल अमुक गाँव जला दिया गया, परसों अमुक व्यक्तियों की हत्या करदी जैसे दर्दनाक विवरण रोज़ाना ही सुन पड़ते हैं। जो साम्प्रदायिकता की आग लगभग सम्पूर्ण भारत में लगी है, सीमा प्रान्त भी उससे बरी नहीं है। अल्प-संख्यकों की हत्याएँ और क़त्ल वहाँ भी हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में जब हम अल्प-संख्यकों की बात करते हैं तो पाठक कभी कभी एकदम कल्पना करने लगते हैं, इनकी हीन दबी और कुचली हुई दशा की। जो हो, पहला सवाल यह उठता है—अल्प-संख्यक हैं कौन ?

जब हम पूरे हिन्दुस्तान की बात करते हैं तो उस समय अल्प संख्यकों में मुसलमान, तथा देशी ईसाई इत्यादि आते हैं तथा बहु संख्यकों में हिन्दू लोग। परन्तु सीमा प्रान्त में यह सम्बन्ध उलटा है। वहाँ हिन्दू और सिक्ख अल्प संख्यकों में हैं तथा मुसलमान बहु संख्यकों में। कहा जा सकता है कि सीमा प्रान्त सर्वथा मुसलिम प्रान्त है। स्थाई ज़िलों में ग़ैर मुसलिम, जिनमें हिन्दू और सिक्ख आते हैं, ८।। प्रतिशत के हिसाब से हैं। प्रान्त के दक्षिणी भाग में उत्तरी भाग की बनिस्पत अधिक हिन्दू और सिक्ख रहते हैं। आज़ाद कबाइलों के देश में चूँकि जन-गणना ही नहीं हो सकती है, इसलिए निश्चित रूप से यह मालूम नहीं कि इन अल्प संख्यकों की संख्या कितनी और क्या है। किन्तु इससे यह न समझा जाय कि वहाँ हिन्दू और सिक्ख हैं ही

*"The problem of lawlessness in the Tribal areas cannot be solved by military expeditions as the British officers on the spot believe even to this day. It is mainly an economic problem."

—*Abdul Qaiyum.*

नहीं। उनके होने का प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं वह स्वयम् सिद्ध सा सत्य है। कभी जाकर देखिये तो दीख पड़ेगा कि दोनों ही जातियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक हथियारों से लैस घूम रही हैं। किन्तु हमें भूलना नहीं चाहिये कि यह सत्य आज विकृत हो गया है। जिस स्वच्छन्दता की बात हमने कही है वह अब नहीं है। अधिकतर भागों में या तो साम्प्रदायिक दंगे ही शुरू हो गये हैं या उनका जहर फैल गया है जिसके परिणामस्वरूप वह मेल और प्रेममय सम्बन्ध लुप्त होता जा रहा है। यह सुनकर आप विश्वास नहीं कर सकेंगे कि कभी ऐसा भी समय था जब हिन्दू और मुसलमान इतने विषम अनुपात में होते हुये भी गहरे प्रेम और सद्भावों के साथ रहते थे। इसलिए हम अपनी ओर से कुछ न कहकर काँग्रेस की सीमा प्रान्त सम्बन्धी रिपोर्ट, जो सन् १६३८ ई० में बनी थी, से ही उद्धरण देते हैं।

"सीमा प्रान्त और सीमान्त पर बसने वाले मुसलमान और अमुस्लिमों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में सबसे बड़ी मार्के की बात यह है कि आजाद कबाइलों और अर्द्ध स्वतन्त्र प्रदेशोंमें रहने वाले हिन्दू और सिक्ख पूरी पूरी आजादी और सुरक्षा का उपभोग करते हैं। वे मलिकों और जातियों के प्रधान, खानों की रक्षा में रहते हैं तथा पूरी पूरी आजादी और सुरक्षा पाते हैं।"

"अभी तक मिलने वाले सभी विवरणों से पता चलता है कि स्थाई ज़िलों में मुस्लिम और गैर-मुस्लिम जातियों के बीच के सम्बन्ध सन् १६२३ ई० के पहले तक बहुत अच्छे थे। सामाजिक विचार से तो वे आज भी शान्त हैं। हाँ, कभी-कभी राजनैतिक उठान की शिकायतें जरूर अपवाद स्वरूप खड़ी हो जाती हैं। परन्तु इनके भी कारण कुछ तो पूर्व वर्णित घटनाओं में और कुछ दोनों ही जातियों के मौजूदा और सम्भावित नेताओं के प्रभाव से उत्पन्न स्थिति में पाये जाते हैं, जब चुनाव के जोश में (वोट पाने के लिये) ये लोग झूठी सच्ची शिकायतें इकट्ठी करने को चल पड़ते हैं।"*

---

*"By far the most striking feature of the entire situation

इस विवादास्पद प्रश्न पर अधिक कुछ कहने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि समाज के चक्र में इन अल्प संख्यकों का क्या है। साधारण हिन्दू और सिक्ख दबे हुये रहते हैं वे संख्या में कम हैं इसलिये उनकी रक्षा का भार खानों और मलिकों के कन्धे पर है। हिन्दू का काम सीमा प्रान्त में बनियों का होता है। इसमें तिजारत और महाजनी दोनों ही आते हैं। सच बात तो यह है कि हिन्दू पठानों का महाजन है जो हर तरह से सुख सुविधा पहुँचाता है और बदले में आराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं। राजकीय विभाग की रिपोर्ट इनके पेशे की ओर संकेत करते हुये लिखती है—

" वाणिज्य व्यापार का काम इनके (हिन्दुओं) के हाथों में है और वे स्वभावत: शहरों या कस्बों में ही केन्द्रित हैं। "*

---

in respect of the relations subsisting between Muslim and non-Muslim population of the North West Frontier Province and that of the trans-border territory is absolute security which the Hindus and the Sikhs, who reside in the Independent and the Tribal Territory, enjoy. They live under the protection of the Maliks or tribal chiefs and Khans, and enjoy the fullest measure of freedom and security."

"The relations between the Muslim and non-Muslim population of the Settled District, by all the accounts available, were of the best before 1923, and even now they are specially normal, except for complaints of a political origin, which may easily be traced to happenings described elsewhere, and more so to the influence of actual or potential politicians of both communities, whose electoral aspirations spur them to the task of compiling a catalogue of genuine or imaginary greivances to secure a following."

—Report on N.W.F.P. and Bannu Raids 1938.

* "The bulk of the trade and commerce of the Province is in their (Hindus) hands, and they are naturally concentrated in the towns." *—Administration Report 1921.*

तात्पर्य यह है कि हिन्दू लोग वाणिज्य व्यापार करते हैं तथा अन्य लोगों की भाँति ही जीवन गुजारते हैं। वाणिज्य व्यापार अल्प संख्यकों का खास पेशा है, लेकिन इसके अतिरिक्त और भी अनेकों छोटे-छोटे काम हैं, जिनमें उनको उचित स्थान मिलता है। महाजनी की बात हम कह चुके हैं। सेना में भर्ती पाना और लड़ाई के सामानों की ठेकेदारियाँ भी इनके लिये खुली हैं। इसी प्रकार सरकारी नौकरियों में भी उनको समुचित भाग मिलता है। बीच में अर्थात् १९३८ से लेकर १९४४ तक का जो सुपुप्ति का युग भारत में रहा है उसमें सरकार ने अपनी 'फूटडाल कर शासन करना' (Divide and rule) की कूटनीति के अच्छे कारनामे दिखाये हैं। इसी के परिणाम स्वरूप हमारी 'समुचित-स्थान वाली बात कुछ झूठी सी होती जा रही थी, परन्तु अब राष्ट्रीय सरकार की कार्रवाइयों ने उस अन्याय को तोड़ने का प्रयत्न किया। हाँ इस समय और पहले भी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के दोनों जातियों के कुछ तथाकथित नेताओं ने खूब विष बोया है। स्वार्थसिद्धि के लिये वे झूठी सच्ची बातें गढ़कर प्रायः कहते फिरते हैं कि सरकार अन्याय कर रही है। ये हिन्दू नेता कहते थे कि हिन्दुओं को समुचित स्थान नहीं मिल रहा है और उसी प्रकार मुसलिम इमाम मुसलमानों के बेबुनियादी दुखों के लिये रो रहे थे। यहाँ हम संक्षेप में यह बात कह सकते हैं कि ये दोनों ही संख्यक कुछ इस प्रकार के हुये हैं कि एक दूसरे का रहना कठिन हो जाता है। इसमें कुछ भी अतिरंजित या अत्युक्ति नहीं है। प्रमाणस्वरूप हम पाठकों के सम्मुख एक घटना रखते हैं और उसके अर्थ का समर्थन एक लेखक द्वारा करते हैं।

रँगीले रसूल को लेकर जब सारे हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगे तो सीमा प्रान्त भी उस आग से नहीं बच सका। उसी उमता और आवेश में अफरीदियों ने एक-एक हिन्दू को चुनकर बाहर निकाल दिया। लेकिन जब झगड़ा शान्त हो गया तो उन्हीं अफरीदियों ने हिन्दुओं को एक प्रकार से आदर के साथ बुलाया और वे पुनः आकर बस गये। इस घटना से विदित होता है कि किस प्रकार बहु संख्यक

जातियाँ जीवन के कठोर क्षेत्र में अल्प संख्यकों पर आश्रित हैं। ब्राइट महोदय लिखते हैं—

"इससे (हिन्दुओं को सहर्ष बसने देने से) विदित होता है कि सीमाप्रान्त में मुसलिम बहु संख्यक हिन्दू अल्प संख्यकों पर आश्रित या अवलम्बित हैं।" *

एक स्थान पर हम कह आये हैं कि इन दो वर्गों का सामाजिक जीवन साधारणतः शान्त है फिर भी कभी कभी कुछ ऐसी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं जिनका परिणाम बहुत घातक होता है। हाँ एक बात अवश्य है कि राई का पहाड़ होते देर नहीं लगती। थोड़ी बात का बतंगड़ बना देना कुछ लोगों का काम होता है परन्तु फलस्वरूप आफत आती है जनता की। ऐसी ही कुछ घटनाओं में एक दुर्घटना कुमारी रामकौर की है। रामकौर एक हिन्दू कुमारी थी। कहा यह गया कि किसी मुसलिम लड़के ने उसको बहका कर उड़ा लिया। और यह रामकौर साहिबा रामकौर से इसलाम-बीबी बन गईं। दोनों ही वर्गों के कुछ भिड़ाऊ कार्य कर्ताओं ने इस पर खूब पानी चढ़ाया। उसी समय पंजाब और सीमा प्रान्त के भी, कुछ पत्रों ने भी इसे खूब तूल दिया। परिणामतः दोनों ही पक्षों के लिये भारी हानि हुई। इस हानि का भारी बोझ तो उन तथाकथित नेताओं और समाचारपत्रों पर है। उन्होंने यह आग लगाकर हाथ सेके हैं। इतना सब होते हुये भी, यदि आज के अमानवीय कृत्यों को थोड़ी देर के लिये भूल जांय तो कह सकते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बड़ी शान्ति पूर्वक रहते थे।

इस उपरोक्त घटना का उद्रेक और आवेग जब समाप्त हो रहा था उसी बीच कुछ स्त्रियों के भगाये जाने की घटनाएँ और भी सुनाई दी थीं। यह वह समय था जब पिछली बार सूबों में कॉंग्रेस मंत्रिमंडल बना था। उसी समय जवाहरलाल नेहरू के नाम एक पत्र आया जिसका लेखक

*"It shows the dependence of Muslim majority on Hindu minority in the Frontier."

—*J. S. Bright.*

ईपी का फकीर बताया जाता था। इस पत्र का स्पष्ट उद्देश्य यह बतलाना था कि इन कुकृत्यों के कर्त्ताओं से वजीरिस्तान में ईपी के फकीर और उसके अनुयायियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ पाठकों को यह जान लेना आवश्यक है कि ईपी का फकीर आजाद कबाइलियों का बहुत लोकप्रिय नेता है। उसका संगठन बहुत सुदृढ़ है। ईपी के फकीर का विशेष विवरण पाठक अन्यत्र देखेंगे। ईपी का फकीर तो हिन्दू और मुसलमानों की इज्जत की समानरूप से रक्षा करता है ऐसा उस पत्र से स्पष्ट होता है। उसी पत्र से यह भी विदित होता है कि अँग्रेज सेना से लड़ने में उसका उद्देश्य मात्र वजीरिस्तान की आजादी की रक्षा करना ही है। सच बात तो यह है कि आवागमन विचार प्रदर्शन के साधनों (समाचार पत्र-इत्यादि) के अभाव के कारण ही प्रायः इन लोगों को कुछ का कुछ सिद्ध कर दिया जाता है। कठोर राजनैतिक नियंत्रण के कारण वे अपने विचार भी प्रकट नहीं कर पाते हैं और इसके परिणाम स्वरूप ही हम लोग उनके सम्बन्ध में भी या तो काल्पनिक अथवा सरकारी प्रचार पर अवलम्बित विचित्र विचित्र विचार बना लिया करते हैं। सच तो यह है कि जब इन लोगों का भी शत्रु अँग्रेजी साम्राज्यवाद है तब हमारे साथ उनका घनिष्ट एकोद्देश्य का सम्बन्ध जुड़ जाता है। ऐसी अवस्था में हम लोगों का उनसे विचार सम्पर्क अत्यंत आवश्यक है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि किस अटूट सम्बन्ध में दोनों वर्ग बँधे हैं। ऐसी स्थिति में उनका यह साम्प्रदायिक मनमुटाव कितना हानिकारक हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसी गुण्डाई और नीच साम्प्रदायिकता को रोकना सरकार का परम कर्त्तव्य है। इस सम्बन्ध में एक बात की ओर हम सरकार का ध्यान और आकृष्ट करना चाहते हैं। जो लोग सरकारी संरक्षण में रह रहे हैं उन्हें यह नहीं चाहिये कि वे भी सरकारी सेना में सहयोग दें, कारण इसका परिणाम होता है उन्हीं के भाइयों की भारी आर्थिक हानि, रोटी की हानि।

इन आपसी झगड़ों और अत्याचारों (जिसमें औरतें भगाना, लूट, मार करना, और दूसरे वर्ग के लोगों को सताना आदि काम आते हैं) का

एक और भी प्रमुख कारण है। कुछ तो पाठक देख चुके हैं और कुछ आगे भी देखेंगे कि सारा सीमाप्रान्त और विशेषकर वज़ीरिस्तान लड़ाइयों की भूमि बना रहा है। पर पिछले इतिहास से विदित है कि हमेशा ही सीमा प्रान्त में ब्रिटिश दमन चलता रहता है, जिसके परिणाम स्वरूप पूरा प्रान्त घोर अशान्ति से आपूर्ण रहता है। होता यह है कि जब यह अशान्ति रहती है तभी गुण्डों और उचक्कों की बन आती है और वे ही ये अत्याचार करते हैं जिनके परिणामस्वरूप बड़े-बड़े दंगे हो जाते हैं। और यदि हम दूसरे प्रकार के झगड़ों की बात कहें, जो न तो प्रादेशिक अशान्ति के कारण हैं और न ब्रिटिश दमन के, बल्कि बिल्कुल लूट-पाट के उद्देश्य से हुये हैं, तो पूरी एक शताब्दी का इतिहास बताता है कि इस प्रकार के झगड़े बहुत कम हुए हैं। यह ठीक है कि कभी-कभी हमले और आक्रमण केवल लूटने के उद्देश्य से होते हैं लेकिन वे भी संख्या में बहुत न्यून हैं। निस्सन्देह हम आज की स्थिति को भुला नहीं सकते जिसमें लगभग सभी आक्रमण सिर्फ इसी मतलब से होते हैं कि शत्रु-पक्ष को हानि पहुँचाई जाय। और यह भी सत्य है कि लुटने और पिटने वाले हिन्दू और सिक्ख ही हैं। कारण वे संख्या में कम हैं कि ठीक उसी प्रकार जैसे गेहूँ में सरसों। लेकिन इन्हीं झगड़ों को देखकर हम पूरी जाति को दोष नहीं दे सकते हैं। संसार में कोई भी जाति ऐसी नहीं है जिसमें इस प्रकार के दुष्टजन न हों, और वे अपनी दुष्टता न दिखाते हों। तब भला सीमा प्रान्तीय उनसे कैसे बच सकते हैं। और फिर एक और भी कारण है। संसार का इतिहास बताता है कि जहाँ-जहाँ सीमायें मिलती हैं वहीं-वहीं इन पेशेवर गुण्डों के अड्डे बन जाते हैं। हिन्दुस्तान में भी देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत की समान सीमाओं पर अक्सर ऐसी गुण्डाई और लूट-पाट होती है। कारण एक जगह (यानी एक देश में, जैसे ब्रिटिश भारत में) लूट करके लुटेरे दूसरी जगह (यानी दूसरे देश में, जैसे देशी रियासतें) चले जाते हैं और क़ानून की मार से बचने की भी सुविधा उन्हें मिल जाती है। हमने कहा कि

सर्वथा साम्प्रदायिक झगड़े बहुत कम होते हैं। इसके कारण ही लूटपाट भी बहुत कम होती है। सम्पत्तिहानि पाठक देखेंगे कि पिछले दिनों में बहुत ही न्यून हुई है। यदि बहुत बढ़ाकर भी कहें तो कहना पड़ता है कि किन्हीं भी दस वर्षों में सम्पत्ति हानि पाँच लाख रुपये से अधिक की नहीं हुई है। इस शताब्दी के दूसरी दशाब्दी में तो यह हानि बहुत ही कम थी यानी कुल एक लाख, चौबीस हजार, सत्तानवे रुपये सात पाई (रु० १,२४,०६७—०—७) की। अपनी नासमझी और जल्दबाजी का एक अच्छा प्रमाण कुछ लोग तब देते हैं जब वे कहते हैं कि पठान लुटेरे हैं और लूट-मार करके ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यदि पिछली वर्षों की आबादी को ही मानें तो पठान एक-दो नहीं पूरे पच्चीस छब्बीस लाख थे। तब भला यह कथन कितना हास्यास्पद होगा कि भला यह कभी भी सम्भव है कि पच्चीस छब्बीस लाख लोग पाँच लाख रुपये से दस वर्ष तक पेट भर सकें? तब शायद, जब उन दस वर्षों में केवल १ लाख २४ हजार रुपये की ही आमदनी हुई थी, वे लोग लगभग सभी भूखों मर जाते। तात्पर्य यह कि यह कहना कि पठान अपने समृद्ध पड़ोसियों को लूट मारकर अपना पेट भरते हैं, निरा व्यंग्य दीख पड़ता है। और फिर अगर वे लोग कहें कि हम तो सिर्फ वजीरिस्तान और तीरा वालों की बात कहते हैं तो यह भी बिलकुल पागलपन दीख पड़ता है। वजीरिस्तान और तीरा की आबादी अगर पाँच लाख ही लें तो भी हिसाब लगाने से दीख पड़ेगा कि इस लूट-पाट की सम्पत्ति में से बाँट होने पर प्रति आदमी पर एक वर्ष में शायद दो आने भी पूरे न पड़ें। तब भला क्या यह सम्भव है कि एक आदमी पूरे एक साल तक यानी बारह महीने तक कुछ छः सात पैसों से पेट भर सकें? और फिर शान्ति के दिनों में तो कदाचित ये लोग सूखकर ठठरी ही बन जायेंगे। उदाहरण के लिये सन् १९३२—३३ और १९३३—३४ में पूरे प्रान्त में लूटमार की सम्पत्ति का मूल्य केवल कुछ ३०००) रुपये हुआ है। इसी प्रकार जो लोग वजीरिस्तान की उजाड़ भूमि को देखकर वहाँ के तीन लाख निवासियों पर ही यह दोष लगाते हैं कि वे किसी भी प्रकार

बिना लूट-मार के नहीं रह सकते तो यह भी असङ्गत और युक्तिहीन मालूम पड़ता है। इन झगड़ों में कुछ स्वार्थी और दुष्ट प्रकृति के आदमी अपना उल्लू सीधा करने के लिये तरह तरह के उपाय रचकर ख़ूब हाथ मारते हैं। वस्तुतः इन झगड़ों के मूल में हम एक ही बात देखते हैं और वह है पठानों का तेज स्वभाव। किसी भी प्रकार के बाहरी बन्धन को देखकर उनका ख़ून उबलने लगता है और ऐसी दशा में यह कभी संभव नहीं (कम से कम आज से दस वर्ष पहले तो नहीं था) कि वह शत्रु को देखकर शान्तिपूर्वक बैठ जाय और पूजनीय मुहम्मद साहब की तरह सात-सात बार अपने ऊपर पाख़ाना फिकने दे और फिर भी उफ़ न करे। पठान बड़ा स्वाभिमानी होता है यह पाठक देख चुके हैं। इस कारण उसके आत्माभिमान को जहाँ थोड़ी सी भी ठेस लगती है वहीं वह बिगड़ पड़ता है और बदला लिये बिना नहीं मान सकता। जब जब अँग्रेजी दमनचक्र चला, जिस तेजी से चला, तब तब और उसी तेजी से पठान के आक्रमण और प्रत्याक्रमण भी बढ़े। लेकिन ये आक्रमण किसी भी दशा में साम्प्रदायिक भावना लेकर नहीं चले थे, यह हमारा निश्चित मत है। स्थाई जिलों तथा बन्नू के निवासियों पर आक्रमण करने, सम्पत्ति लूटने में किसी भी धार्मिक कट्टरता की प्रेरणा नहीं थी, वह तो सिर्फ़ इसलिये था कि जिससे शत्रु (अँग्रेजी सरकार) के देश में अशान्ति हो। और यदि पठानों के शत्रुओं की भाषा ही में बोलें तो युद्ध और प्रेम में सभी कुछ वर्ज्य है (Every thing is fair in Love and War)। हम अपने मत का प्रमाण प्रत्यक्ष उदाहरण से दे सकते हैं। पाठक नीचे के तालिका देखें।

इस तालिका में सन् १९२३–२४ से लगाकर १९३६–३७ तक के आक्रमणों में हुई स्थाई जिलों में हिन्दू मुसलमानों की प्राण-हानि आदि का इकट्ठा विवरण है।

सन् १९२३-२४ से १९३६-३७ ई० तक

मृतक

आक्रमण	हिन्दू	मुसलमान	अन्य	कुल	हिन्दू प्रतिशत
३४८	२१	७८	१	१००	२१%

घायल

आक्रमण	हिन्दू	मुसलमान	अन्य	कुल	हिन्दू प्रतिशत
३४८	१८	९३	×	१११	१६·२%

चुराये या उड़ाये गये लोग

आक्रमण	हिन्दू	मुसलमान	अन्य	कुल	हिन्दू प्रतिशत
३४८	४०	१०९	१	१५०	२६·६%

छुड़ौती या दण्ड लेकर छोड़े गये

आक्रमण	हिन्दू	मुसलमान	अन्य	कुल	हिन्दू प्रतिशत
३४८	२	२	×	४	५०%

बिना दण्ड लिये छोड़े हुए लोग

आक्रमण	हिन्दू	मुसलमान	अन्य	कुल	हिन्दू प्रतिशत
३४८	२७	९८	१	१२६	२१·४%

सम्पत्ति हानि

वर्ष	हानि
१६२३—२४	५६,६६० रुपये
१६२४—२५	७,८७२ ,,
१६२५—२६	१६,३७२ ,,
१६२६—२७	७,०६५ ,,
१६२७—२८	१५,०३५ ,,
१६२८—२६	१६,१२६ ,,
१६२६—३०	७,५०० ,,
१६३०—३१	३०,६२२ ,,
१६३१—३२	१८,५७३ ,,
१६३२—३३	२,७४७ ,,
१६३३—३४	२,६०७ ,,
१६३४—३५	७,६३६ ,,
१६३५—३६	४,३५८ ,,
१६३६—३७	८,१६६ ,,
१४ वर्ष में	२,०८,०२६ रु० कुल

उपरोक्त तालिकायें देने से हमारा तात्पर्य बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। यह सत्य है कि लुटने वालों में आबादी के विचार से हिन्दू अधिक लुटे-पिटे या मारे गये हैं, परन्तु इससे यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि वे आक्रमण धार्मिक कट्टरता के कारण कदापि नहीं थे। यदि वैसा होता तो क्यों एक भी मुसलमान का घर लुटता और जान जाती। लुटने में हिन्दुओं की संख्या प्रतिशत आबादी के विचार से क्यों अधिक है? या यों कह सकते हैं कि जब हिन्दू कुल ६॥ प्रतिशत हैं तब लुटने या पिटने में उनकी संख्या इतनी अधिक क्यों है? यह प्रश्न उठ सकता है। इसका उत्तर हम इस प्रकार देते हैं। चूँकि यह आक्रमण स्थाई जिलों में हुये थे और कबीला प्रदेश की बनिस्बत स्थाई जिलों में हिन्दू आबादी अधिक है, इसलिये उनका नाम लुटने वालों में आने

के कारण वे प्रति सैकड़ा अधिक होंगे। दूसरे यह कि पाठक देख आये हैं कि हिन्दू महाजन की तरह रहते हैं। उनके पास सम्पत्ति अधिक होती है। और डाकू का काम जिसे करना है वह तो सम्पति देखेगा, अब चाहे वह सम्पत्ति हिन्दू के पास हो या मुसलमान के, मन्दिर में हो या मस्जिद में। ऐसी दशा में हिन्दुओं का अधिक संख्या में मारा जाना और लुटना सम्भव ही नहीं एक प्रकार से आवश्यक ही है। यह इसलिये कहना पड़ा कि पाठक अधिक प्रतिशत देखकर कुछ का कुछ अर्थ न लगाने लगें।

ग़ैर क़ानूनी भगोड़ों की बात हम कह आये हैं। ये लोग प्रायः क़ानून की निगाह बचाकर भाग जाते हैं। कुछ दिनों से औरतों के भगाये जाने तथा पुरुषों को रुपये के लिये उड़ाये जाने का जो रोग चला है उसके कीटाणु यह ग़ैर क़ानूनी भगोड़े ही हैं। अपने नगरों की भौगोलिक दशाओं से जानकार होने के कारण किस प्रकार यह लोग लूट मचाते हैं यह हम उनके विवरण में कह आये हैं। ब्रिटिश सरकार पर आज़ाद कबाइलों के आक्रमणों को यदि बहिरंग कहें तो इन गुण्डों के आक्रमणों को अन्तरंग आक्रमण कहना उचित होगा। यह इसलिये चूँकि उनके कर्त्ता वहीं के वासी गुण्डे होते हैं और वे एक प्रकार की चोरियाँ हैं। हाँ, कभी-कभी जो सरकारी अफ़सरों और जनरलों के पकड़े जाने की ख़बरें सुन पड़ती हैं वे यह ठीक है कि ये आज़ाद कबाइली ही करते हैं। परन्तु क्या उनका वह कार्य अनुचित है? पाठक स्वयं विचार करलें कि जब यह अफ़सर बदले के लिये पकड़े जाते हैं तो उसमें बुरा भी क्या है? बात यह है कि सरकार कुछ कबाइली लोगों को पकड़ लेते हैं और उनके बदले में ये लोग इन अफ़सरों को पकड़ लेते हैं। हाँ, होता यह है कि एक प्रकार के अर्थात् बहिरंग आक्रमणों में अन्तरंग आक्रमण भी होने लगते हैं, और उसी के परिणामस्वरूप इस गुण्डाई की बदनामी कबाइलों के सिर पर आती है।

जिस साम्प्रदायिकता की आग सुलग रही है उसके दो स्पष्ट कारण दिखाई देते हैं—(१) स्वाभाविक, अर्थात् धार्मिक व सामाजिक

संस्कारों के कारण घृणा हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों और मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं के स्वभाव में पड़ गई है, (२) राजनैतिक मतभेद। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर बहुत घटनाओं के कारण का पता चल जाता है।

स्त्रियों के भगाये जाने के कारण के लिये हो सकता है कि कुछ लोग यों तर्क करें। चूँकि अमेरिका और इङ्गलैंड में कुछ वर्षों से अमीरों की स्त्रियों को भगाने की दुर्घटनाएँ होने लगी हैं, इसलिये सीमा प्रान्त में भी इस कुकर्म की हवा वहीं से आई है, और यह साम्प्रदायिक कदापि नहीं है। लेकिन यह तर्क ठीक नहीं मालूम होता। जैसे-जैसे भारत में साम्प्रदायिक दंगे होते गये वैसे ही वैसे सीमा प्रान्त में भी आग बढ़ती गई। और फिर विशेषकर हिन्दू स्त्रियों का भगाया जाना भी सन्देहास्पद है। और एक तीसरा सामयिक उतार-चढ़ाव तब हुआ जब काँग्रेस मंत्रि-मण्डल बना। यह सत्य पहले मंत्रि-मण्डल के समय भी दीख पड़ा था। अब की बार भी दीख पड़ता है। इस प्रकार औरतों का भगाया जाना कोई नई बात नहीं है। देशी रियासतों की सीमाओं पर भी तो यह होता है। अन्तर इन दो स्थानों के अपराध में एक ही है। यानी देशी रियासतों में जो स्त्रियाँ भगाई जाती थीं वे किन्हीं नैतिक आधारों पर परन्तु सीमा प्रान्त में तो यह एकदम राजनैतिक बदला लेने के लिये होते रहे हैं।

तात्पर्य यह कि यदि इधर की इन दो वर्षों की घटनाओं को भूल जायँ तो कह सकते हैं कि सीमा प्रान्त के इन दो वर्गों का जीवन बड़ा शान्त एवं स्वस्थ था। परन्तु इन दिनों की घटनाओं को तो हम भूल नहीं सकते फिर भी इतना अवश्य कह सकते हैं कि साम्प्रदायिक से अधिक यह झगड़े राजनैतिक हैं। सत्ता के लोलुप दासों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये धर्म की ओट ली और नारे लगाये—'इसलाम खतरे में है' और 'हिन्दू धर्म रसातल को जा रहा है।' भोली जनता धर्म भीरु होती है वह भिड़ पड़ी। उसे कहाँ पता था कि पड़ोसी को मारना पाप है। परिणामस्वरूप आज हम जिन्हें हिन्दू-मुस्लिम दंगे कहते हैं, हुये।

इस प्रकार हम पठानों के लगभग सभी पहलुओं पर आर्थिक और राजनैतिक छोड़कर बात कर आये हैं। हमने एक स्थान पर काफ़िरिस्तान की चर्चा की थी। नीचे अब उन्हीं का एक संक्षिप्त विवरण देते हैं।

काफ़िरिस्तान : या काफ़िरों का देश

कोई कितना भी नीरस और दुखी क्यों न हो, काफ़िरों के देश में जाते ही उसका मन मुग्ध हो जायगा, हृदय फूल की तरह खिल उठेगा। इसके कारण है—वहाँ के शोभनीय प्राकृतिक सौन्दर्य, तथा काफ़िरों का उल्लासपूर्ण जीवन। वहाँ सर्वत्र हर्ष और आह्लाद का साम्राज्य है। आमोद-प्रमोद वहाँ के प्राण हैं। जीवन स्वच्छन्द है, किसी के विकास पर अनावश्यक रोक लगाकर उसे पंगु नहीं बनाया जाता। जैसा कि सुनते हैं—चीन में स्त्रियों के पैर छोटे-छोटे रखने के लिये उन्हें बचपन से ही लोहे के जूतों में कस देते हैं। इस प्रकार की रोक-थाम काफ़िरों की स्वतन्त्र भूमि में नहीं पनप सकती। काफ़िरों का देश हमारे लिये बड़े कौतूहल का विषय है।

हम, इधर के लोग 'काफ़िरिस्तान' के नाम से परिचित नहीं हैं। हाँ, 'काफ़िर' शब्द से तो हमारी पुरानी जानकारी है। कारण इसलामी मज़हब ने हम हिन्दुओं का काफ़िर नाम दे रखा है। इस विचार से तो जहाँ जहाँ हिन्दू बसते हैं (मूर्त्ति-पूजक हिन्दू) वहीं वहीं काफ़िरिस्तान (काफ़िरों के रहने की जगह) हो गया और सारा हिन्दुस्तान, मुसलमानों की भूमि को छोड़कर काफ़िरिस्तान ही कहलायेगा। परन्तु बात ऐसी नहीं है। काफ़िरिस्तान एक प्रान्त विशेष का नाम है। काफ़िरिस्तान अफ़ग़ानिस्तान के पूर्व का ही एक प्रान्त है और इसका एक सिलसिला पहाड़ों को चीरकर चितराल रियासत तक पहुँचा है। नाम से विदित हो जाता है कि काफ़िरिस्तान के वासी काफ़िर (यानी मूर्त्ति पूजक) होंगे। ये काफ़िर कौन थे ? क्या थे कहाँ के थे ? आदि प्रश्नों का कोई ठीक समाधान नहीं मिलता। इतिहास के पंडितों का मत भी इस विषय में भिन्न भिन्न है। एक मत के अनुसार ये काफ़िर अपने देश से भगाये, भूले भटके वे यहूदी

होते हैं जो जान माल की रक्षार्थ किसी अज्ञात समय इस देश में आकर बस गये। दूसरा मत इससे भिन्न है। इस मत के प्रवर्त्तकों एवं समर्थकों की मान्यताओं के अनुसार यह कहा जाता है कि काफिर उन यूनानी वीरों की सन्तानें हैं जो सिकन्दर के साथ और उसके बाद इस देश में आकर बस गईं। इस सम्बन्ध में जो तीसरा मत है वह भी विचारणीय है। तीसरा मत है—वह काफिर प्राचीन आर्यों की सन्तानें हैं, जो अनेक संकटों और कठिनाइयों, धार्मिक 'जिहादों' के सम्मुख भी अपने धर्म को सुरक्षित रख सके हैं। यह धार्मिक संकट विशेष कर मुसलमानों की ओर से आया था, तथा उसी से अपनी रक्षा के लिये ये लोग दुरूह पहाड़ों में तथा वनों में जाकर छिप रहे।

इन तीन मतों पर विचार करने में हम पहले मत को (यहूदी वाला मत) तो छोड़ सकते हैं कारण वह आधारहीन मालूम पड़ता है। इतिहास से यहूदी लोगों के भागकर इधर आने की पुष्टि नहीं होती यह हम अन्यत्र लिख आये हैं। दूसरे और तीसरे मतों में दोनों ही सम्भव दीख पड़ते हैं। सिकन्दर के पश्चात जो यूनानी रियासतें अफ़गानिस्तान के आसपास रह गई थीं वे अधिक न टिक सकीं। वक्षुतट (आक्सस) पर जब सिथियन सेना का जोर बढ़ने लगा तो सिकन्दर के साथी पूर्व की ओर भारत में धकेल दिये गये थे। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह यूनानी इस समय तक आर्य रंग में रंग चुके थे। जब वे भागकर आये तो सहज ही सम्भव है कि स्थान न पाकर ऐसे दुर्गम स्थानों में जाकर बस गये हों।

तीसरा मत जो आर्यों को आज का काफिर मानता है उतना ही तथ्यपूर्ण जान पड़ता है। यह सम्भव है कि इसलामी मार से बचने के लिये किसी दिन आर्य भागकर इन देशों में घुस आये हों और तब अपनी रक्षा की हो। जो हो दूसरा मत भी कम उपयुक्त नहीं मालूम देता। और इसका समर्थन रीति व्यवहारों से भी हो सकता है। परन्तु यह अन्तिम मत कदापि नहीं हो सकता। कारण दोनों ही मत ऐतिहासिक दीखते हैं, यद्यपि तीसरा (आर्यों वाला) अधिक सम्भव नजर आता है।

आज क़ाफिरों के दो भेद हैं। इन दो वर्गों को क्रमशः 'काले क़ाफिर' और 'लाल क़ाफिर कहते हैं। यह लाल और काले का भेद पोशाक के कारण है। 'काले क़ाफिर' यद्यपि ख़ूब गोरे-चिट्टे हैं, ठीक वैसे ही जैसे काश्मीरी परन्तु उनका नाम 'काले क़ाफिर' इसलिये है चूँकि वे काले कपड़े पहनते हैं। जब भारत भूमि पर इसलाम की सर्वग्राही लहर आई तो ये 'लाल क़ाफिर' उस बाढ़ का सामना न कर सके और मुसलमान हो गये। अफ़गानिस्तान के भी सब क़ाफिर मुसलमान हो गये और उन्होंने अपने सूबे का नाम भी बदल कर नूरिस्तान रख लिया। यह धर्म परिवर्त्तन का कार्य पिछले ५० वर्षों में बहुत जोर-शोर से चला है।

क़ाफिरों के इतिहास का कुछ पता नहीं चलता। उनके होने की अवधि भी अज्ञात है। कब यह लोग आकर इस भूमि में बसे इसका कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता। इसका नाम सबसे पहले तैमूर की डायरी (तुज़क) में लिया गया है। दूसरी बार इनका उल्लेख सन् १६३७ में किरशेर (Kircher) नामक पादरी ने अपनी किताब 'चाइना सैलेंस्ट्रा' (China Cellnstra) में किया है। इस पादरी ने एक मजेदार भूल की। जब उसने यह सुना कि ये क़ाफिर मुसलमान नहीं हैं तो झट से उन्होंने अपनी पुस्तक में लिख लिया कि वे 'ईसाई' हैं। उन महाशय को कदाचित यह भी पता नहीं था कि दुनिया कितनी बड़ी है। उनकी समझ में तो दुनिया में दो ही धर्म हैं अर्थात ईसाई और इसलाम। इसी तर्क से उन्होंने जान लिया कि जो आदमी या जाति मुसलमान नहीं है वह ईसाई होगी। भूल उनकी तर्क-प्रणाली में नहीं है। वहाँ तो भूल ही में भूल पड़ गई। इस भूल का नतीजा भी ख़ूब हुआ। कुछ तो पादरी की कृपा से और कुछ आर्मेनियन सौदागरों की अफ़वाहों से यूरोप में यह बात फैल गई कि दूर भारत में भी हमारा धर्म फैला हुआ है। इस झाँसे में आकर ही दूसरे पादरी 'जार्ज राइट' (George Riot) ने सहधर्मियों के दर्शन करने की लालसा से सन् १६७५ ई० के लगभग क़ाफिरों के देश की यात्रा शुरू करदी। परन्तु झाँसा तो झाँसा ही था। बेचारे को बड़ी निराशा हुई और उसके सूखे मुँह से निकला—

"ये लोग मूर्त्ति-पूजक हैं। महादेव की पूजा करते हैं और शराब पीते हैं। इनमें अज्ञान का ऐसा गहरा अन्धकार है कि ईसाई धर्म की ओर इनका ध्यान भी नहीं गया।"

अज्ञान का गहरा अन्धकार इन क़ाफिरों में था कि उन पादरी महाशय में यह तो पाठक जान सकते हैं और उन पादरी महोदय का हृदय, परन्तु इतना निश्चय है कि उसके बाद दुनिया में उन लोगों के बारे में अज्ञान का अन्धकार जरूर फैल गया। अर्थात् संसार इन क़ाफिरों को लगभग भूल ही गया। हाँ, जब कभी मुसलमानों से उनकी दो-दो चोटें होती थीं तो चिल्लपों हम लोग अवश्य सुन लिया करते थे। उसी रोदन-क्रन्दन के साथ यह भी सुन पड़ा कि ये लोग बड़े विचित्र हैं। उनके रंग-ढंग कुछ कापालिकों जैसे बताये गये और कापालिकों के हालचाल जो बंकिमचन्द्र के 'कपाल कुण्डला' में पढ़ लेगा उसके रोयें खड़े हो जायँगे। ये लोग नरमेध करते हैं, पशुओं के स्थान पर मनुष्यों की बलि चढ़ाते हैं और देवी-देवताओं को प्रसन्न करते हैं। पूजा के बीच और बाद को भी यह क़ाफिर गले में नर-मुण्डों की माला डाले रहते हैं और फिर महादेव का ताण्डव नृत्य चलता है। कहा जाता है कि जो आदमी जितने अधिक नर-मुण्डों की माला पहिनता है वह उतना ही बड़ा शूरवीर समझा जाता है। यह तो सब कहा और सुना गया है परन्तु आज वह हालत नहीं है। वह ताण्डव नृत्य और शिव पूजा अधिकांश में बन्द हो गई है और सब लाल काफिर मुसलमान बन गये हैं। केवल 'काले क़ाफिर' बच रहे हैं जिनके भी ५०० से अधिक घर नहीं हैं। क़ाफिरों का निवास स्थान 'बम्बरेत' की घाटी है जो अफ़गानिस्तान और चितराल के बीच हिन्दूकुश के पहाड़ों से घिरी हुई है। यहाँ पर पहाड़ की ऊँचाई ६ हजार से १५ हजार फ़ीट तक है।

कहने को हैं तो यह पहाड़ ६००० फ़ीट ही ऊँचे परन्तु ऊँचाई देखकर कहीं धोखा मत खा जाइये। इस ६ हजार फ़ीट की ऊँचाई पार करने में हड्डी हड्डी अगर चकनाचूर न हो जाय तो समझिये कुछ भी नहीं हुआ। घाटी में घुसने पर एक बहुत ही कड़ी पथरीली ज़मीन को

रौंदना पड़ता है। यह ज़मीन एक चटियल पहाड़ है। और चूँकि यह राजमार्ग तो है नहीं इसलिये तारकोल या सीमेंट की चमकती सड़क भी वहाँ नहीं है। तारकोल और सीमेंट की सड़क की कौन कहे नाम के लिये वहाँ पक्की पगडण्डी भी तो नहीं है। और पगडण्डी बने भी तो कैसे। वहाँ आता जाता ही कौन है? कौन उस सूखे उजाड़ देश में अपनी हड्डियाँ तुड़वाने जाता है? और जो आते-जाते हैं उनके लिये वह प्रस्तर मार्ग उपयुक्त ही है। चारों ओर सूखा ऐसा है कि मीलों तक घास का एक भी हरा तिनका या पानी की एक भी बूँद धरती पर न मिलेगी। देखने वालों की आँखें पथरा जाती हैं। चलते-चलते साँस इतने ज़ोर से फूलने लगती है मानों पुराना दमा का रोग हो, पाँव ऐसे टूटने लगते हैं मानों गठिया हो गई हो। और जब घाटी में उतर ही आये तो देखेंगे कि घाटी केवल दो या तीन मील चौड़ी है और अधिक से अधिक १५ मील लम्बी। घाटी उत्तर से दक्षिण की ओर चढ़ती चली गई है यहाँ तक कि बर्फीले पहाड़ आ जाते हैं, और अगर पहाड़ भी पार-दर्शक होते तो आप देख सकते कि उनके पीछे ही अफ़गानिस्तान मौजूद है।

पहाड़ी कठोरता से पथराई आँखें जब घाटी में उतरती हैं तो कुछ और ही बहार देखने को मिलती है। यहाँ की रंगीनी ही कुछ और है, दृश्य ही कुछ और है। क़ाफिरिस्तान जैसा दुनिया में कोई और प्रदेश होगा इसमें सन्देह है। बम्बरेत की घाटी अपने रूप में अद्वितीय है, जैसी वह है वैसा कोई भी भू भाग नहीं है। 'बियाबान बन खण्ड' में जिस प्रकार हरिण बीणा सुनकर आश्चर्यचकित हो जाता है और विमुग्ध भाव से गाना सुनता रहता है वैसी ही कुछ 'आत्म विस्मरण' की दशा आपकी होगी जब आप 'बम्बरेत-गोल' देखगे। 'बम्बरेत-गोल' क़ाफिरिस्तान की गङ्गा है, पहाड़ी नदी है। चट्टानों से टकराती हुई 'बम्बरेत-गोल' अल्हड़ मस्ती से कूदती फाँदती चली जाती है। जल-तल पर श्वेत फेन ऐसा मालूम देता है मानों ताजे दुहे दूध पर छाछ छाई हुई हो। नदी के दोनों ओर तट पर कतारों में खड़े बेद मजनूँ के वृक्ष

पानी में अङ्ग डुबा डुबा कर मानों नहा रहे हों। किनारे के आस-पास दूर-दूर तक हरियाले खेत छाये हुए हैं जिनमें गेहूं के पौधे हवा के झोंकों के साथ सिर मिलाकर कानाफूँसी करते दीख पड़ते हैं। पहाड़ मानों मानवदेह हो जिसके अनेक छेदों से पसीने के रूप में झरने झर रहे हैं। छोटे-मोटे सैकड़ों पानी के नाले आ-आकर वम्बरेतग़ोल में मिल जाते हैं या घूम फिरकर दर्शकों की आँखों से दूर कहीं छिप जाते हैं। घिस घिस कर काले पत्थर भी चमक उठे हैं और दर्शक को भ्रम हो जाता है कि कहीं लोहा और ताँबा तो नहीं फैला है। जाने कितने प्रकार की सम्पत्ति भूगर्भ से उत्पन्न होती है परन्तु कौन देखता है उस वन वैभव को। 'वनफूल' की भाँति वहीं के वहीं मुरझाकर लुप्त हो जाते हैं। इस सम्पत्ति की चर्चा एक यात्री ने इस प्रकार की है—"एक जगह तो हमने किसी झरने में पास ही पास पैट्रोल और सोने का पानी बहता देखा।" 'पैट्रोल' और 'सोना'! कितने आकर्षक हैं ये नाम? कौन जाने जिस प्रकार सोने की खोज में धन लोलुपों ने सैकड़ों कठिन यात्रायें की थीं उसी प्रकार किसी दिन यहाँ भी किसी 'सेठ' की निगाह पड़ जाये और·········।

अब आप क़ाफिरों के देश में आ गये हैं। इस भौतिक सम्पत्ति को छोड़िये। स्वर्गीय सौन्दर्य को अगर देखना है तो क़ाफिर कुमारियों को देखिये। एक यात्री ने अपना आँखों देखा वर्णन लिखा है पहिले उसे ही पढ़ लीजिये।

"नदी के आस-पास क़ाफिर कुमारियाँ गाय भेड़ चरा रही थीं या खेतों में काम कर रही थीं। उनके सुडौल शरीर एक गहरे लबादे में छिपे हुये थे जो गले से लेकर टखने तक लम्बा था और कमर पर कपड़े को पेटी से बँधा हुआ था। दो चोटियाँ माथे से निकाल कर सिर पर लौटा दी गई थीं और एक अजीब से पहनावे से ढकी हुई थीं। यह मोटे कपड़े का बड़ा-सा रूमाल था जिसमें कौड़ियाँ टँकी हुई थीं और बागफल के समान उनके सुन्दर कपोलों पर पड़ा हुआ था। यह लिबास कुछ कुछ पुरानी मिश्री औरतों का सा था जो फिरऔनों की समाधियों में

सदा के लिये सो रही हैं। पर्वतमाला पर धूप में बर्फ चाँदी की तरह चमक रही थी, उससे नीचे देवदार और चीड़ के विशालकाय पेड़ मर्मर ध्वनि में कोई कोरस गा रहे थे। यह जीवन का सङ्गीत था—और आज तक अपने देश में हमें ऐसी सुषमा देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। पठान या चितराली औरतों की तरह क़ाफिर सुन्दरियों को अजनबी मर्दों से पर्दा नहीं था। हाँ, हमें देखकर वे रास्ते से हटकर खड़ी हो गईं और सङ्कोच से सरसों के फूलों को अपने जूड़ों में खोंसने लगीं।"

सुन्दरियों के इस कवित्वपूर्ण वर्णन से हमें क़ाफिर जीवन की कई एक प्रवृत्तियों का पता चलता है। तथा हमारे ही यहाँ की तरह क़ाफिर भी कृषकवर्ग के हैं और उनकी औरतें बहुत कुछ हमारे ही यहाँ की किसानों की औरतों की भाँति भेड़, गाय और भैंसें चराती हैं। इस विवरण से हमें क़ाफिरों की शारीरिक पुष्टता का भी पता चलता है कि क़ाफिर स्त्रियाँ बड़ी सौन्दर्यवान होती हैं। पहनावे के विषय में कहा जा सकता है कि इन क़ाफिर स्त्रियों के पहनावे की कुछ कल्पना हम अपने बाज़ारों में आने वाली बिल्लोची स्त्रियों को देखकर कर सकते हैं। तीसरा तथ्य हमें क़ाफिरिस्तान की सम्पत्ति के विषय में मिलता है। देवदारु और चीड़ की लकड़ी वहाँ बहुतायत से होती हैं। अन्तिम और महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि क़ाफिर स्त्रियाँ पर्दा नहीं करतीं। यह कदाचित इसलिए है चूँकि क़ाफिरों का देश एक सुरक्षित देश रहा है जहाँ हरम में बसाने के लिए सुन्दरियों की लूट नहीं मची है।

अफ़गानिस्तान पठानों और क़ाफिरों में प्रायः झगड़े होते रहते हैं। झगड़े का विषय जानवरों को लेकर चलता है। अर्थात जब क़ाफिरों के घोड़े या अन्य पशु चरने के लिए पहाड़ों पर जाते हैं तो अफ़गानी लोग उन्हें बड़ा ले जाने में अपना कौशल दिखाए बिना नहीं रहते। इस पर या तो सामूहिक झगड़े होते हैं या किसी और उपाय से काम लिया जाता है। यह 'और उपाय' बताने के पूर्व हम पाठकों को मलंग से परिचित करादें। मलंग क़ाफिरों के देश का सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति

है। उसकी प्रसिद्धि से नवागत यात्री भी परिचित हो जाता है और क़ाफिर तो जानते ही हैं। वह योद्धा और चतुर आदमी है। यात्रियों के दुभाषिये और पथ प्रदर्शन का काम उससे बखूबी करा लीजिये। परन्तु उसकी प्रसिद्धि का असली रहस्य तो पशुओं के झगड़े निपटाने में है। रियासत ने इसका भार भी मलंग के कन्धों पर डाल रखा है। उसका न्याय भी सहज है। वह करता यह है कि जितने घोड़े क़ाफिरों के चोरी जाते हैं ठीक उतने ही मलंग ईमानदारी के साथ अफ़गानिस्तान वालों के यहाँ से ले आता है। और इसका परिणाम होता है मुठभेड़ और खुली लड़ाइयाँ सो मलंग कमज़ोर नहीं है। बन्दूक के निशाने और नाच-गाने में मलंग अपनी सानी नहीं रखता है। कई बार जब मुठभेड़ हुई है तब उसने बैरियों के दाँत खट्टे कर दिये हैं।

मलंग बन्दूक के निशाने में तो अद्वितीय है ही साथ ही नाच-गाने में भी वह एक ही है। नाच-गाने की बात कहने में पाठकों को क़ाफिरों की एक विशेष मनोवृत्ति का पता चलता है। नाच-गाना क़ाफिरों के जीवन का एक खास अङ्ग है। खेती-बाड़ी का काम तथा घर-गृहस्थी की सँभाल का भार औरतों के सिर पर है, तथा मर्द मटरगश्ती करते हैं। मटरगश्ती में शिकार और नाच-गाना आता है। क़ाफिर लोग नाच-गाने के बहुत शौकीन होते हैं। नाच-गाने की इन जमाहतों को क़ाफिरों के यहाँ 'वशाइक' कहते हैं। त्योहार, उत्सव या किसी विशेष अवसर पर शाम होने के साथ ही नदी किनारे के मैदान में तैयारी होने लगती है। मैदान झाड़कर साफ किया जाता है, और लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठे काट काट कर इकट्ठे किये जाते हैं। वहाँ बिजली का कनेक्शन तो है नहीं और न हण्डों ही का चाँदना। मिट्टी के तेल की लालटेनें भी नहीं, लकड़ी की होली जलाकर रोशनी की जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे स्काउट शिवरों में 'कैम्पफाइरों' के समय होता है। रात होते ही नगाड़े

---

* पता नहीं मलङ्ग आज जीवित है या नहीं। कम से कम ४० वर्ष पहले तो वह अवश्य था। —लेखक

पर चोट पड़ने लगती है जिससे पास-पड़ोस के गाँवों तक में इस 'बशाइक' की सूचना पहुँच जाय। ज्यों ज्यों अँधेरा होता जाता है घिल्लुवे बजने लगते हैं, मन्द मन्द स्वर गुनगुनाने लगते हैं। यहाँ हम फिर पाठकों को नाच का आनन्द देने के लिए श्री अख्तर हुसैन रायपुरी का आँखों देखा वर्णन लिखते हैं। जब दर्शक लोग आ गये, सब तैयारी हो गई तो इस मेहमान को, जिसके मनोरंजन के लिये ही यह उत्सव रचा गया था, बुलाया गया। उस समय—

"नदी धीमे स्वरों में कोई बाजा सा बजा रही थी, हिमाच्छादित पर्वतों के शृङ्ग पर अर्धचन्द्र हँसली की तरह पड़ा हुआ था, बीच में अलाव की आग धधक रही थी और उसके चारों ओर कोई पचास औरतें और इतने ही मर्द घेरा डाले खड़े थे। घेरे के बाहर ढोल बज रहे थे। आग की रोशनी ने आदमियों की छाया को प्रेताकार बनाकर फैला दिया था और ऐसा अजीब समां था कि हम थोड़ी देर के लिये भौचक्के रह गये। घेरे के बाहर तिपाई पर हम बैठ गये; ढोल ने कोई हल्की सी गत छेड़ी, काफिर सुन्दरियाँ तीन तीन की टुकड़ी में बँट गईं, उनके नूपुर हौले से तिलमिलाये, उनके मीठे स्वरों ने कहा—

'हमारे देश में परदेशी आये हैं—परदेशी आये हैं।'

किसी किसी ने आँखों के चारों ओर बकरे के सींग का लेप कर लिया था और अपने सिंगार पर इतरा रही थी। बीच बीच में मर्द 'हो हो हो हो' का नारा लगा उठते थे और कुँवारे बरछी या लकड़ी हिलाते हुये नाचने वालियों के आस-पास मँडलाते और अपनी चहेती का हाथ पकड़कर 'पोलका' का सा नाच शुरू कर देते। दूसरा नाच सिपाहियों का था, जिसमें ढोल की ललकार पर सब जंगी नारे बुलन्द करते और पैंतरे बदल कर किसी कल्पित शत्रु पर हमला करते थे। उनका जोश बढ़ता गया, नगाड़े की झांई में वायु-मण्डल काँप उठा और बरछियों व तलवारों की लपा-झपी ने हमें डरा दिया। अगर कहीं इन्हें अपनी पुरानी रीति याद आ जाये और यह हमें 'मारा' देवता पर चढ़ाने का फैसला करलें तो क्या हो?

अब आधी रात हो रही थी। आखिरी नाच में हम घेरे के अन्दर ले लिए गये। किसी मेहमान के प्रति यह सबसे बड़ा सम्मान प्रदर्शन है। सब हाथ में हाथ दिये, पाँव मिलाये आग का चक्कर लगाते जाते थे और उनके गीत की यह टेक थी—

'परदेशी चला जायेगा—हाय, वह हमारा दिल भी ले जायेगा।'

काफ़िरों के समाज में इन बशाइकों का एक और भी महत्त्व है। साल में एक बार इसी प्रकार 'बशाइक' लगते हैं जिनमें प्रत्येक वर्ग के जवान लड़के और लड़कियाँ इकट्ठी होती हैं। उस समय भारी समारोह के साथ नृत्यगान होता है। इसी समय यदि कोई युवक किसी कुमारी का हाथ पकड़ लेता है तो मान लिया जाता है कि वह उस कुमारी से शादी करने की इच्छा रखता है। यदि लड़की हाथ पकड़ाये रहे तो समझ लिया जाता है कि लड़की इस सम्बन्ध से सहमत है। यदि हाथ छुड़ा ले तो लड़की की अस्वीकृत मानी जाती है और विवाह नहीं हो सकता। लड़की की स्वीकृत हो जाने पर लड़की के माँ-बाप लड़के से पूछते हैं कि वह कितना दहेज (जमीन और ढोर) देगा। यह तै हो जाने पर बाद को विधिपूर्वक विवाह हो जाता है। इस प्रथा से हम दो तीन निश्चयों पर पहुँचते हैं। पहला यह कि विवाह में लड़के और लड़कियों को मनमाना साथी चुनने की आजादी है। उन पर माँ-बाप की इच्छा थोपी नहीं जाती। दूसरे कि दहेज लड़की वाले को नहीं वरन् लड़के वालों को देना देना पड़ता है। इससे कुछ मजेदार अर्थ निकलते हैं। पहला यही कि काफ़िरों के यहाँ लड़की बुरी नहीं समझी जाती। 'उसके होने पर भी लड्डू बँटते हैं और बन्दूक भी छोड़ी जाती है। यह नहीं कि पुत्री को जन्म देने वाली बहू को सास का कोपभाजन बनना पड़े।' दूसरे यह कि जिस स्त्री-पुरुष-समान-अधिकार की चिल्लपों हम मचा रहे हैं उसका कम से कम एक महत्त्वपूर्ण विषय में तो वहाँ पालन होता ही है।

काफ़िरों का आतिथ्य सत्कार भी उच्च कोटि का तथा प्रशंसनीय

होता है। नये यात्री को भोजन और स्थान का प्रबन्ध तो है ही मनोरंजन के साधनों में भी दो चीजें हैं। पहला तो 'नशाइक' जिसका ज़िक्र हम कर चुके हैं। दूसरी वस्तु है 'जामजूर'। 'जामजूर का अर्थ होता है—'सुन्दर स्त्री'। नये मेहमान को वह भी मिल सकती है। परन्तु ध्यान रहे कि यह रिवाज अनुचित सीमा तक नहीं जाती। 'जामजूर' का मिलना सुन्दरी की इच्छा पर ही निर्भर है। वहाँ हमारे यहाँ की तरह 'लालमण्डियाँ', 'सेव के बाजार' और 'अनारकली' मुहल्ले नहीं हैं जहाँ रुपये के ठीकरों पर अस्मत बिकती है। लोभ या भय से, अथवा जोर जबर्दस्ती से कुछ मनमानी करने की सजा सीधी मृत्यु है। हाँ, स्वेच्छा से यदि कोई स्त्री आपको आत्म-समर्पण करदे तो इसमें काफ़िर बुरा नहीं मानेंगे। पता नहीं इन चार वर्षों में क्या परिवर्त्तन हुये हैं। काफ़िरिस्तान की उर्वशी गुलून का क्या हुआ है। गुलून निस्सन्देह काफ़िरिस्तान की उर्वशी है, जिसके प्रकाश से, जिसके सौन्दर्य से सारा प्रान्त खिलखिलाया करता है।

मेहमान को अन्य प्रकार की सभी सुविधाएँ दी जाती हैं। पठानों की तरह काफ़िरों के यहाँ 'हुरजे' नहीं होते जहाँ मेहमानों को टिकाया जा सके। इसलिये घर में ही उसे स्थान मिलता है।

काफ़िरों के घर साधारण और प्रायः छोटे होते हैं। आम तौर पर ढाँचा लकड़ी का होता है, जिसमें पत्थर की गिट्टियों के साथ मिट्टी का गारा लिपटा रहता है। घर में एक अनाज घर अलग होता है। ऊँचाई के विचार से ये मकान दोमंजिले होते हैं जिनमें ऊपर की मंजिल में तो कुटुम्ब परिवार के लोग रहते हैं तथा नीचे की मंजिल पशुओं के लिये होती है। ऊपर चढ़ने के लिये जीना नहीं एक सीढ़ी रहती है जो ख़तरे के समय उठाकर गिरा दी जाती है। मकान की ऊपरी मंजिल में बड़ी बड़ी खिड़कियाँ हवा और प्रकाश के लिये होती हैं। परन्तु घर की गन्दगी ऐसी होती है कि सोना मुश्किल हो जाता है। खटमल और मच्छर ख़ूब मनमानी करते हैं।

चूल्हे की जगह काफ़िरों के घरों में एक अलाव होता है जो तापने

का भी काम देता है और चूल्हे का भी। अर्थात् काफिर अपना खाना इसी पर पकाते हैं। रात में यही अलाव 'फाइर बाक्स (Fire Box) बन जाता है जिसके चारों ओर बैठकर रात की बैठक लगती है। दिये का काम लकड़ी की छोटी छोटी कमचियों को जलाकर लिया जाता है। यहाँ तक कि एक कहावत प्रचलित है जिसका अर्थ होता है—'जो चीज मैली हो जाती है, उसे साफ करने से क्या फायदा।' यह है इनके जीवन का आदर्श। हाँ, प्रसवकाल में अवश्य स्त्रियों को दूर हटाकर गाँव के बाहर कर दिया जाता है जहाँ वे जनना करती हैं। उस स्थान पर गन्दगी को नहीं पहुँचने दिया जाता। खाने में काफिरों की पसन्द से शहद मक्खन और पनीर श्रेष्ठ माने जाते हैं। काफिर बड़े पेटवादी चौबे मालूम देते हैं। वे घर का भोजन भांडार स्त्रियों को नहीं छूने देते केवल घर के मुखिया का ही उस पर आधिपत्य होता है। स्त्रियाँ खेती-बाड़ी करती हैं और मर्द शिकार और नाच-गाना। हमारे यहाँ की भाँति काफिरों के यहाँ भी स्त्री को मार मार कर पतिव्रता बनाया जाता है। रात को सोने से पहले मर्द के पाँव धोना औरत का कर्त्तव्य और दिनचर्या होती है।

काफिरों की अन्य रीति-रिवाजों के समान ही उनकी मुर्दा गाड़ने की पद्धति भी विचित्र है। काफिरों के कब्रिस्तान बने होते हैं जैसे मुसलमान और ईसाइयों के होते हैं। उनकी रीति यह है कि शव को एक सन्दूक में उसके कपड़ों, गहनों, हथियारों के साथ बन्द कर दिया जाता है और फिर सन्दूक को उस कब्रिस्तान में लाकर रख दिया जाता है। इस प्रकार सैकड़ों सन्दूकों की कतारें लग जाती हैं। इस कब्रिस्तान का देवता जो उसकी रखवाली करता है 'मारा' कहलाता है। मारा की मूर्त्ति पत्थर नहीं लकड़ी की बनाई जाती है। मारा का पहिनावा एक यात्री के कथनानुसार किसी यूनानी सौदागर सा होता है।

काफिर साधारणतः पेशे से कृषक है। परन्तु चूँकि ज़मीन से भरपेट अन्न नहीं मिल पाता है इसलिए शिकार उनके भोजन का दूसरा साधन है। जौ गेहूँ जैसे अन्न पैदा होते हैं, परन्तु माँसादि का भी उपभोग होता

है। काफ़िरों का देश भी एक प्रकार से स्वतन्त्र है। हाँ, चितराल रियासत के अन्तर्गत जो भाग आता है वहाँ व्यवस्था अच्छी है। प्रायः लोग ग़रीब होते हैं, हाँ खाने का अभाव नहीं होता और उन्हें खाने के लिये पास-पड़ोसियों पर आक्रमण नहीं करने पड़ते, इसलिये साधारणतः काफ़िरों का जीवन शान्तिपूर्वक बीत जाता है। हथियार उनके चिर सहचर हैं। छोटे छोटे बच्चे भी तीर कमान लेकर चलते हैं। काफ़िरों में जो व्यक्ति रईस होता है उसे काफ़िरों में 'चरबीवाला' कहते हैं। यह 'चरबीवाले' मलिकशाह आदरणीय माने जाते हैं। एक समय था जब काफ़िर हिन्दू थे, मूर्त्तिपूजक थे, इसीलिये काफ़िर कहलाये, परन्तु आज इसलाम जोर पकड़ रहा है और बहुत बड़ी संख्या में प्रति दिन काफ़िर मुसलमान होते जा रहे हैं। सभ्यता की ज्योति अभी काफ़िरों के देश में नहीं पहुँच सकी है। यहाँ मानव अपनी आदिम अवस्था में पाया जा सकता है। काफ़िरों के देश के विषय में भी अभी काफ़ी अंधकार है। उनके जीवन के अनेक रहस्यों का उद्घाटन अभी नहीं हुआ है। भविष्य में जिज्ञासु ज्ञान की यह प्यास तृप्त करेंगे ऐसी आशा है।

काफ़िरों का यह विवरण हम प्रो० मार्गेन स्टोर्न के शब्दों के साथ करते हैं। इनमें पाठक काफ़िरों के आर्य होने वाले मत की पुष्टि भी पायेंगे और उनकी धार्मिक पूजा का भी उल्लेख (समर्थन) पायेंगे। वे शब्द ये हैं—

"जलालाबाद के उत्तर में काफ़िरिस्तान-प्रदेश में काफ़िर नामक जो जाति निवास करती है उसकी रीति-नीति पर आज भी आर्यसभ्यता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नवीं शताब्दी तक इस जाति के लोग अपने नियमों पर दृढ़ रहे, अन्त में जबरदस्ती इसलाम धर्म में दीक्षित कर लिए गये। उनमें से बहुतों ने सीमा प्रान्त के चित्राल नामक राज्य में जाकर शरण ली। यहाँ इन्हें अपने प्राचीन धर्म की रक्षा करने की आज्ञा मिल गई। पर यहाँ भी वे अब बड़ी शीघ्रता से इसलाम धर्म में दीक्षित किये जा रहे हैं। उनकी मूल संस्कृति का अध्ययन करने के लिये

आजकल (यह बात सन् १६२६ की है। उसके बाद सैंकड़ों परिवर्त्तन हो गये हैं और वे चिह्न मिटाये भी गये हैं) जो महत्त्वपूर्ण सामिग्री उपलब्ध है वह सम्भवत: कुछ वर्षों बाद न मिल सकेगी। काफिर जाति वैदिक धर्म को मानती है और इन्द्रदेव की उपासना करती है। इस जाति के लोगों ने इन्द्रदेव की क्रीड़ा के उपकरण के स्वरूप वज्र और तड़ित की स्थापना की है। इसमें हिन्दुओं, बौद्धों तथा थोड़ा-बहुत ईरानियों के भी धर्म का प्रभाव लक्षित होता है। इनका नृत्य तथा स्तुतिगान बड़ा ही आकर्षक होता है।"

उपरोक्त प्रोफेसर साहब ने यह विवरण आज से लगभग दो दशाब्दी पूर्व दिया था। इस दो दशाब्दी के छोटे से परन्तु वायु वेग से गतिशील युग में काफिरिस्तान में भी काफी परिवर्त्तन हो गये हैं। जिस इन्द्रदेव की उपासना और उनकी क्रीड़ा के उपकरणों का उल्लेख इन महाशय ने किया है, वे अब प्राय: लुप्त होते जा रहे हैं। हाँ, नृत्य और गान अब भी बड़ा आकर्षक लगता है। जिस समय मेहमान (यात्री) उनके देश से जाने लगता है और गुलून एकतारे पर उदास भाव से गाने लगती है—

"परदेशी किसी के नहीं होते
वह आते हैं और चले जाते हैं।"

तो इस मेहमान का दिल डोल जाता है, इच्छा होती है इस अकृत्रिम स्वर्ग में ही बना रहे, इसे छोड़कर कहीं न जाये। परन्तु ?

परन्तु अन्त में एक बात और जोड़ दें। स्वार्थ-लोलुप मुल्लाओं की बात हम कह आये हैं। यह काफिर प्रदेश भी इन मुल्लाओं की जाल-साजियों से मुक्त नहीं है, ऐसी दशा में कौन जाने कल का काफिरिस्तान जाने कैसा होगा ?

इस परिच्छेद में पठान के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन हम कर चुके। पठान का व्यक्तित्व स्वाभिमानी, वीर तथा निडर होता है। आन पर मर मिटना कोई पठानों से सीख ले। पहली बार यदि हम पठान से मिलें तो सम्भव है रुष्ट हो जायँ। कारण वह बहुत अक्खड़

दीखता है। परन्तु ज्यों ज्यों हम उसके निकट सम्पर्क में आते हैं हमें मालूम पड़ जाता है कि पठान हमारा मित्र हो सकता है। सम्भव है वह हमारे लड़के की शादी में दावत खाने न आये परन्तु यदि कभी हमारे प्राण सङ्कट में होंगे तो वह अपना रक्त बहाने में भी न हिचकेगा। साधारण आदमी की भाँति ही वह भी निस्वार्थ जीव है। उसमें वह छल-कपट अभी नहीं आपाये हैं जो हमारे जीवन में आवश्यक समझे जाते हैं। इसी आधार पर कह सकते हैं कि यदि भविष्य में उनकी स्वतन्त्रता में अनावश्यक छेड़छाड़ नहीं की गई तो वह राष्ट्रीय सरकार के सच्चे सहायक सिद्ध होंगे।

पठानों की हलचल और राजनैतिक जागरण

कबाइली लोगों के जीवन के किसी भी पक्ष की चर्चा हम क्यों न करें, हमें प्रत्येक दशा में यह याद रखना चाहिये, कि कबाइली भारत के ही अंग हैं। यद्यपि यह सच है कि सीमाप्रान्त अफ़ग़ानिस्तान के अधिक निकट है परन्तु फिर भी वह भारत से ही बँधा है, इसलिये वहाँ की हर प्रकार की हलचल का कारण खोजने के लिये हमें हिन्दुस्तान में ही आना पड़ेगा। एक लेखक के कथनानुसार तो सीमाप्रान्त भारत का जलवायु मापक-यन्त्र (Barometer) है। इस उपमा से हमारे कथन की और भी पुष्टि होती है। इस सामीप्य को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि सीमाप्रान्त की राजनैतिक हलचलों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि पाठक हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय जाग्रति को जान लें। यद्यपि यह स्थान जागरण के उस इतिहास को देने के लिये उपयुक्त नहीं है तथापि संक्षेप में हमें मुख्य-मुख्य घटनाओं को जान लेना आवश्यक है।

अँगरेजों के आने के पश्चात् भारतीय जागरण की पहली लहर सन् १८५७ ई० में उठी। बच्चों के इतिहास में जिसे 'ग़दर' कहकर बदनाम किया गया है, यही हमारी प्रथम राष्ट्रीय क्रान्ति थी। उसका

परिणाम संसार में अविदित नहीं है। कदाचित हम उसमें असफल हुये थे। कदाचित इसलिये क्योंकि वह पूरी असफलता ही नहीं थी। उस क्रान्ति के शहीदों के बलिदान व्यर्थ नहीं गये। यह सत्य है कि उसका तत्काल फल निराशाजनक था। परन्तु क्या कोई सहृदय विज्ञजन यह अस्वीकार कर सकता है कि हमारी आज की सफलता के मूल में उन शहीदों के बलिदान 'कारण' रूप से लगे हैं? निस्सन्देह वह हमारा उषाकाल था, जिसमें हम आँखें खोलकर उठे थे, लेकिन फिर सो गये! उसका प्रभाव भारत व्यापी हुआ (यदि विश्वव्यापी नहीं) सीमाप्रान्त में इसके प्रभाव को हम अन्यत्र देखेंगे।

राजनैतिक हलचलों में सिक्खों की सीमाप्रान्त की विजय महत्वपूर्ण घटना है, और दूसरी घटना सीमाप्रान्त पर अँगरेजों का अधिकार है।

आगे चलकर सन् १८८५ ई० में कॉंग्रेस का जन्म और उसके काम दर्शनीय हैं। मोटे तौर पर देखने से हम सन् १६१६ ई० में आ जाते हैं जब असहयोग आन्दोलन छिड़ा था वह भी सीमाप्रान्त में अपनी छाप छोड़ गया और फिर बाद की घटनायें तो बहुत ही महत्व पूर्ण हैं जिनका क्रमबद्ध विवरण हम आगे देंगे।

यहाँ हम पाठकों का ध्यान एक और क्रान्ति की तरफ़ आकर्षित करना चाहते हैं। औरंगजेब के समय में शाह वलीउल्ला का जो आन्दोलन उठा था वह थोड़ा बहुत आज तक जीवित है और मौलाना हुसैन अहमद मदनी उसके जीवित नेता हैं। इस आन्दोलन का कार्य क्षेत्र यद्यपि प्रमुख रूप से हिन्दुस्तान ही रहा है परन्तु इसकी किरणें सुदूर पश्चिम में फ़ारस और तुर्की तक फैल गई थीं। तुर्की तक जाने में, सीमाप्रान्त मार्ग में पड़ता है, और फलस्वरूप वह भी इस क्रान्ति में सक्रिय भाग ले रहा था। इसका विशेष विवरण हमें आगे करना है।*

* शाह वलीउल्लाई आन्दोलन का विशद एवं प्रामाणिक विवरण जानने के लिये पाठक प्रथम लेखक (रतनलाल बंसल) की 'रेशमी पत्रों का षड्यन्त्र' पढ़ें।

इस परिच्छेद के अन्तर्गत हमें सीमाप्रान्त की राजनैतिक हलचलों, उनके आजादी प्राप्ति के प्रयत्नों और भारतीय स्वाधीनता के प्रति उनके दृष्टिकोण को देखना है।

राजनैतिक हलचलों के लिये पाठकों के सम्मुख सर्वप्रथम हम सन् १९०३ से १९२२ तक की सरकारी रिपोर्ट को उद्धृत करते हैं। रिपोर्ट से हमारा मतभेद हो सकता है, जिसका निराकरण हम बाद को करेंगे। सरकारी रिपोर्ट इस प्रकार है।

सिक्ख विजय—(सीमाप्रान्त को) पेशावर से डेराइस्माइलखाँ तक रौंद कर सन् १७३८ ई० में जो आक्रमण नादिरशाह ने किया था वह सीमाप्रान्त के इतिहास में (महत्वपूर्ण) संकेत चिन्ह जैसा है। उसकी मृत्यु से लगाकर रणजीतसिंह के उत्थान तक सीमान्त के जिले दुर्रानी साम्राज्य के ही अङ्ग रहे हैं। (यहाँ) काबुल के शासक का अधिकार तो नाममात्र को था, सच्चा शासन तो स्थानीय मुखिया लोग या अफ़गानी सरदार अपनी इच्छानुसार करते थे।

"उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ काल में, डेरा इस्माइलखाँ स्थानीय नवाबों के अधिकार में था, और क्रमशः वे अपनी सत्ता का हाथ मारवात तथा बन्नू की बन्नूची जातियों पर फैला रहे थे, जब कि कोटार और पेशावर पर दुर्रानी साम्राज्य का अधिकार था। सन् १८१८ ई० से सिक्खों के आक्रमण आरम्भ हुये। उस दिन से लेकर जब तक सीमाप्रान्त ब्रिटिश अधिकार में आया, सिक्ख लोग निरंतर धीरे-धीरे उस पर अपना क़ब्ज़ा जमाते रहे थे। सन् १८१८ ई० में डेरा इस्माइलखाँ ने सिक्खों की एक टुकड़ी के आगे आत्म समर्पण कर दिया और पाँच वर्ष पश्चात् उन्होंने बन्नू के मारवात वाले मैदान को भी धर दबोचा। सन् १८३६ ई० में डेरा इस्माइलखाँ के नवाब के हाथों से पूरी सत्ता छीन ली गई और उसके स्थान पर एक सिक्ख सरदार को नियुक्त कर दिया गया। लेकिन बन्नू का क़िला तो तभी बन सका था जब प्रथम सिक्ख युद्ध हुआ था, और बन्नूची लोग सीधे लाहौर दरबार के अधिकार में हरबर्ट एडवर्ड्स के द्वारा लाये गये थे। नौशेरा के निकट अफ़-

ग्रानियों पर सिक्खों की उस महान विजय के दो वर्ष पश्चात् सन् १८३४ ई० में प्रसिद्ध सरदार हरीसिंह नलवा ने पेशावर का क़िला अपने अधिकार में कर लिया, और (उसी दिन से) दुर्रानी सरदारों के राज्य का अन्त हो गया। उसी समय कोहाट और डेरी भी सिक्ख सेना ने अल्पकाल के लिये अपने अधिकार में कर लिये थे।

सीमा प्रान्त का ब्रिटिश राज्य में मिलाया जाना

"सरकार की २९ मार्च, सन् १८४९ ई० की घोषणा के अनुसार सीमान्त के जिले ब्रिटिश राज्य मे मिला लिये गये थे। कुछ समय के लिये पेशावर, कोहाट और हज़ारा के जिले सीधे लाहौर के 'बोर्ड ऑव एडमिनिस्ट्रेशन के अधिकार में थे। लेकिन सन् १८५० ई० के आस-पास उनको एक अलग कमिश्नरी में, कमिश्नर के अधिकार में, कर दिया गया। सन् १८६१ ई० तक डेरा इस्माइलखाँ और बन्नू 'लियाह डिवीजन' के अन्तर्गत थे और उन दोनों पर सम्मिलित रूप से एक 'डिपुटी कमिश्नर' का अधिकार था। बाद को दोनों के लिये दो अलग-अलग 'डिपुटी-कमिश्नर' नियुक्त किये गये, और ये दोनों जिले 'डराजाट डिवीजन' के अन्तर्गत कर दिये गये। यह व्यवस्था तब तक चलती रही जब तक उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त अलग न बन गया। आन्तरिक शासन व्यवस्था किसी भी प्रकार से पंजाब से भिन्न न थी······"

सीमा प्रान्त के ब्रिटिश राज्य में मिलाये जाने के बाद

सीमा प्रान्त के ब्रिटिश राज्य में मिलाये जाने और गदर के बीच के समय में यद्यपि कोई खास विद्रोह नहीं हुआ, लेकिन तो भी उसे शान्ति का समय तो नहीं ही कह सकते। इस समय की मुख्य-मुख्य घटनाएँ इस प्रकार हैं।

पेशावर—स्वात से काबुल नदी तक पेशावर जिले के सीमान्त के पास-पास सीमा-प्रान्त लालपुरा के खान की अध्यक्षता में चलने वाले मोहम्मद लुटेरों के द्वारा सताया गया था।

हज़ारा—हजारा जिले में, कगान के सैयदों को लगान देने पर राज़ी

करने के लिये एक सैनिक प्रदर्शन आवश्यक समझा गया था। दो अफ़सरों की हत्याओं का बदला लेने के लिए काले पहाड़ पर स्थित हसनजाइयों की बस्तियों में कुछ सेना भेजनी पड़ी थी।

डेरा जाट—दक्षिणी सीमान्त पर शेरानी और कसरानी जातियों के उपद्रवों को दबाने के लिये आक्रमण हुआ, जिसमें इन जातियों के मुख्य मुख्य गाँव तहस-नहस कर डाले गये। इससे उन्होंने बड़ी अच्छी शिक्षा पा ली जिसका प्रभाव उनके भावी आचरण पर ख़ूब गहरा पड़ा।

कोहाट—खास कोहाट में तो, हमें अपने आवागमन के साधनों (सड़क आदि) को बढ़ाने एवं सुरक्षित रखने के लिये यह आवश्यक हो गया कि वहाँ की जावाकी, खटक तथा अफ़रीदी जातियों के लिये दण्ड व्यवस्था की जाय। इसी प्रकार कोहाट की नमक की खानों पर होने वाले वजीरी आक्रमण के बदले में पीछे से उनकी उमरजाई जाति पर आक्रमण किया गया। किन्तु इस जिले के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी कुर्रम की ओर हमारी प्रगति, जिसके बीच बीच में कुर्रम का अफ़गानी गवर्नर अपरमीरनजाई लोगों को अपने में मिलाने का प्रयत्न करता रहा था। ब्रिटिश अधिकार के पश्चात् मीरजाइयों के उपद्रव के कारण यह आवश्यक हो गया कि सन् १८५१–१८५६ ई० के बीज में उन पर तीन-तीन आक्रमण हों।

गदर—गदर के समय आन्तरिक शासन को सफल बनाने के लिये लोगों का तत्कालीन (शान्तिमय) आचारण, उनकी सबसे बड़ी भेट थी। सीमा प्रान्त के इतिहास में गदर काल का केन्द्रस्थल पेशावर में था डेरा इस्माइल खाँ और कोहाट की हिन्दुस्तानी फौजें बड़ी आसानी से शस्त्रहीन करदी गईं। और नई सेना पेशावर की सैनिक शक्ति, या सिन्धु स्थित ब्रिटिश फौज को नई ताकत पहुँचाने के लिये जल्दी से भेजी गईं। परन्तु पेशावर की दशा भिन्न थी। जिले में बहुत बड़ी देशी फौज थी जो वहाँ विद्रोहिनी बन गई। बहुत सम्भव था कि काबुल अमीर भी खैबर के रास्ते से नई सैनिक शक्ति

भेज देता। किसी न किसी अपराध के कारण सीमान्त पार भी प्रत्येक शक्तिशाली जाति पर नियंत्रण बैठा दिया गया था। तार द्वारा विद्रोह के शुरू होने की खबर पेशावर भेजी गई थी। तत्काल ही एक युद्ध-मंत्रणा की गई और परिस्थित को सँभालने के लिये उद्योग आरम्भ कर दिये गये। उसी रात को 'गाइडूस' की टुकड़ी देहली के स्मरणीय प्रयाण के लिये चल दी। २१ मई को पचपनवीं देशी पैदल फौज (55 th Native Infantry) ने मरदान में विद्रोह कर दिया। उनमें से बहुत बड़ी संख्या तो सिन्धु के पार साफ भाग गई, परन्तु परिमाण में उन्हें हजारा की सीमा पर स्थित पहाड़ियों के हाथों अपना सर्वनाश ही मिला। इस उदाहरण से सावधान होकर पेशावर के अधिकारियों ने २२ मई को २४, २७, और ५१ वीं देशी पैदल सैना के (Native Infantry) के हथियार रखवा लिये। इस युक्ति का प्रभाव जादू जैसा हुआ। उस दिन से हरबर्ट एडवर्डस के शब्दों में हमारे "मित्र उतने ही थे जितनी गर्मियों में मक्खियाँ होती हैं। केवल पेशावर के ही नहीं वरन सीमान्त पार तक के पठान नई बनने वाली फौज में आकर झुण्ड के झुण्ड भर्ती होने लगे। हालाँकि बहुत बड़ी बला टल चुकी थी फिर भी अगले महीने बिल्कुल अछूते नहीं थे। (बीच बीच में दुर्घटनाएँ होती रहती थीं)। शीघ्र ही यह जरूरी समझा गया कि १० वीं अनियिमित घुड़सवार सेना (10th Irregular Cavalry) के हथियार डलवा लिये जायँ। २८ अगस्त के दिन ५१ वीं पैदल सेना ने यह प्रयत्न किया कि वह छीने हुये हथियार फिर वापिस पाये। पेशावर परेड ग्राउण्ड पर जो गोलाबारी हुई थी वह फौज के सर्वनाश के साथ जमरूद में जाकर समाप्त हुई। इस सब के बीच हमारे दुश्मन और हठी आदमी गड़बड़ करते रहे परन्तु उन्हें सफलता थोड़े मिल पाई। पंजतार के खान ने पूरी पूरी ताकत यूसुफजाइयों को हमारे खिलाफ उभाड़ने के लिये लगादी थी। लेकिन नरिंजी गाँव के पकड़े जाने और जला दिये जाने ने उसकी सब योजनाओं को अन्त में धूल में मिला दिया। जब गदर पूरी तरह दबा दिया

तो यह साफ दीख रहा था कि सीमा प्रान्त ब्रिटिश सरकार के लिये खतरनाक होने की अपेक्षा शक्ति का स्रोत ही सिद्ध हुआ था।

"सन् १८५७ से १८६० ई० तक उत्तरी सीमा प्रान्त की जातियों का व्यवहार संतोषजनक था, परन्तु वजीरिस्तान की सीमा पर बहुत कुछ उपद्रव हुआ था। सन् १८५६ ई० में एक अफ़सर का उद्दण्डतापूर्वक किये बध और काबुल खेल वजीरियों के आक्रमण के परिणाम स्वरूप उनकी बस्तियों पर एक हमला किया गया था। टाँक नाम कस्बे पर एक भारी हमला करने के फलस्वरूप सन् १८६० ई० में महसूद लोगों को अच्छा दण्ड दिया गया।

"सन् १८६३ ई० में सीमा प्रान्त की अब तक की सब आपत्तियों में सबसे बड़ी विपत्ति आई। सीमा प्रान्त के ब्रिटिश अधिकार में आने के पूर्व से हिन्दुस्तानियों का एक उपनिवेश, जो प्रसिद्ध सैयद अहमद वहाबी* के दल के अवशिष्ट लोगों का था था, सिन्धु नदी पर के सतियानी नामक स्थान पर बसा हुआ था। सन् १८५८ ई० में जब ये लोग सतियाना से निकाल दिये गये तो महावन श्रेणी, जो पेशावर जिले के उत्तर-पूर्व के कोने में फैली है, के मल्का नामक स्थान में चले गये। वहाँ से भी उन्हें उनकी कट्टरतापूर्ण कार्यवाहियों के कारण निकालना पड़ा। सन् १८६३ के अक्टूबर माह में ५,००० पाँच हज़ार सिपाहियों की एक फ़ौज, अम्बेला के दर्रे तक इस विचार से गई कि मल्का टेढ़े-मेढ़े रास्ते से पहुँचा जाय। एक हल्के से विरोध या अटकाव के कारण आसानी से मल्का पहुँचने का काम रुक गया, और परिणाम में उस भीषण प्रदेश में स्थित दर्रे की चोटी पर दो महीने तक भारी लड़ाई हुई। दिसम्बर, १८६३ तक सब विघ्न-बाधाएँ हटा दी गईं, कट्टर विरोधी सङ्गठन तोड़ दिया गया और मल्का तहस-नहस कर दिया

---

* पाठकों को ध्यान रखना चाहिये कि यह सरकारी रिपोर्ट है। सैयद अहमद बरेलवी वहाबी नहीं थे, जैसा कि इस रिपोर्ट में है, यह पाठक अन्यत्र जान सकेंगे। —लेखक

गया। इस युद्ध काल के बीच में मोहमंद लोग फिर पेशावर जिले में घुस पड़े, लेकिन सहज ही उन्हें हरा दिया गया। अम्बेला युद्ध के बाद के चार वर्ष सीमा प्रान्त में लगभग निर्विघ्न शान्ति के वर्ष रहे। अक्टूबर, १८६८ में फिर काले पहाड़ की जातियों ने शान्ति भङ्ग करदी। उन्होंने अगरौर की ओछी पुलिस चौकी पर हमला कर दिया था। तब उन्हें दण्ड देने के लिये एक टुकड़ी भेजी गई। कोई खास विरोध नहीं देखना पड़ा और सहज ही पूर्ण सुधार हो गया। सन् १८६९ से सन् १८७७ तक समय समय पर उपद्रव होते रहे, जो या तो घेरा डालकर या ज्यों का त्यों बदला देकर दबा दिये गये। लेकिन ये सब अपेक्षाकृत इतने मामूली और महत्त्वहीन हैं कि अलग से उनकी विशेष चर्चा करना आवश्यक नहीं है। इन्हीं दिनों की बात है कि सीमान्त की रक्षा के लिये सेना की भर्ती का सिद्धान्त कार्यान्वित हुआ। सन् १८७२–७३ ई० में डेरा जाट डिवीजन की फौज का सुधार किया गया। सन् १८७८ ई० में कोहाट और पेशावर के लिये सीमान्त की पुलिस एवं फ़ौज बनाने की स्वीकृत हुई।

"सन् १८७७ से १८८१ तक, सीमा प्रान्त असाधारण रूप से अशान्त रहा है। यह इसलिये क्योंकि ब्रिटिश सरकार और अमीर शेरअली खाँ के कपटपूर्ण सम्बन्ध, तथा अफ़गान युद्धों को सीमा प्रांतीय जातियों पर अपना प्रभाव डालना ही चाहिये था। सन् १८७७ में ही मालूम पड़ा कि यूसुफजाइयों पर बौनरवालों का आक्रमण अजब खाँ नामक, पेशावर जिले के एक प्रसिद्ध खान के द्वारा उभाड़ा गया था। उसे फाँसी दे दी गई थी। परन्तु मामला खुल गया। ब्रिटिश राज्य में रहने वाले आदमियों को ब्रिटिश अफ़सरों तथा इन (लड़ाकू) जातियों के बीच मध्यस्थ बनाने का यह कुफल था। अफ़गान-युद्ध का काल, हज़ारा के सीमान्त पर होने वाले आक्रमणों, कोहाट की सड़क पर हुए हमलों तथा महसूदों के द्वारा टाँक के जलाये जाने जैसी घटनाओं के कारण उल्लेखनीय है। हज़ारा और कोहाट की जातियाँ जुर्माने तथा कठोर नियंत्रण की सज़ाओं से दण्डित की गईं थीं तथा महसूदों को

एक फौजी शक्ति से इसके लिये मजबूर किया गया कि वे सरकार के सरकार के माँगे हुए हर्जाने को दें। अक्टूबर सन् १८८० में जब ब्रिटिश फौज लौटा ली गई तो खैबर का दर्रा अफरीदियों को सौंप दिया गया, जो मिलने वाले भत्ते के बदले में दर्रे को, जेजियालिश की टुकड़ी की सहायता से आने-जाने वालों के लिये खुला रखते थे। कुछ वर्षों की (तुलनात्मक दृष्टि से कहे जा सकने वाली) शान्ति के पश्चात् हमारी ही सीमाओं में दो सरदार—हजारा अगरोरकर अली गौहर खाँ तथा कोहाट में हंगू का मुजफ्फर खाँ, उसी प्रकार षड्यन्त्रों में संलग्न पाये गये जिनके लिए अजब खाँ को सन् १८७७ में फाँसी दे दी गई थी। सन् १८८८ ई० में अली गौहर खाँ की 'खान' की पदवी छीन ली गई और उसे निर्वासित कर दिया गया। आगे के चार वर्षों में हजारा की सीमा की शान्ति उसके समर्थकों, जो उसे वापिस लाना चाहते थे, ने भंग की। इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि ईसाजाई और हाशिम अली खाँ, जो उनके (अली गौहर खाँ और मुजफ्फर खाँ) उत्तराधिकारी सरदार थे, और जिन्होंने अपने कुटुम्बी अली गौहर खाँ का पक्ष उठाया था, के खिलाफ तीन हमले किये जायँ। सन् १८६२ ई० तक हाशिमअली खाँ निर्वासित रहा। इस सीमा पर चौकियाँ, स्थगित की गई। इन जातियों ने अब काले पहाड़ की श्रेणियों को आजाद देश की सीमा मानना सीख लिया। कोहाट में मुजफ्फर खाँ, जो हंगू का उत्तराधिकारी खान था, और उसके एजेण्ट तरकजाइयों की समील जाति से साँठ-गाँठ जोड़ने प्रयत्न में स्थानीय अधिकारियों के प्रयत्नों को मिट्टी में मिलाते रहे। अधिकारियों के यह प्रयत्न इसलिये थे कि कबीले आकर अपने दुष्कृत्यों की जवाबदेही करें। सन् १८८६—८७ में, उसके भड़काने के फलस्वरूप उनके उपद्रव हमेशा से अधिक संख्या में और भारी होने लगे। सन् १८६० में, जब कि षड्यन्त्र और हमले चल रहे थे, मुजफ्फर खाँ को लाहौर हटा दिया गया, और उसके परिवार का भत्ता भी बन्द कर दिया गया।

सन् १८६० से १८६७ ई० तक का समय विशेषतः सीमा पार के

देशों पर हमारे राजनैतिक अधिकार के होने तथा अफ़गान सरकार के साथ सीमान्त के निश्चय होने, जो 'डूरेण्ड समझौते (Durand Agreement) के नाम से विख्यात है, जैसी घटनाओं के लिए महत्त्व पूर्ण है। मुजफ्फर खाँ को हंगू से हटाये जाने के बाद ही सन् १८६१ ई० में उरकजाइयों पर धावा बोला गया, जिन्होंने बिना किसी विरोध के आत्म समर्पण कर दिया और पुराने जुर्माने भी दे दिए। उसी समय समाना की श्रेणियाँ ब्रिटिश राज्य की असली सीमा घोषित करदी गई और उन्हीं के सहारे सहारे रक्षात्मक चौकियों के बनाने का भी निश्चय किया गया। अभी ब्रिटिश फौज को हटाये कुछ सप्ताहों से अधिक नहीं हुए थे कि उरकजाइयों ने सड़क बनाने वाली टुकड़ी पर आक्रमण कर दिया और उन्हें पहाड़ियों के पार निकाल दिया। इसके परिणामस्वरूप उसी वर्ष के अप्रेल और मई महीनों में समाना पर दूसरा आक्रमण किया गया और वह वापिस ले लिया गया तथा अन्त में उस पर पूरा अधिकार हो गया।

सन् १८०० ई० में जब कुर्रम की घाटी छोड़ी गई थी, तो तूरियों को अफ़गान सरकार से स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया था। तब तो एकदम अराजकता का राज्य आरम्भ हो गया। जब तूरियों के अपने पड़ोसी अफ़गानों पर आक्रमण हुए तो अमीर की तरफ़ से निरन्तर शिकायतें आने लगीं, वह चाहता था कि हमें इन लोगों को व्यवस्था में रखना चाहिए। कुर्रम के आस-पास रहने वाली आज़ाद सुन्नी जाति को काबुल वालों ने इसलिए भड़काया कि वह शिया तूरियों के विरुद्ध धर्मयुद्ध के लिए उठ खड़ी हो। शिया तूरियों ने हमसे सहायता की प्रार्थना करके यह सूचित किया कि हमारी सहायता के अभाव में, अमीर के हाथों पड़ जाने के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग उन्हें नहीं दीखता। ऐसे समय उनकी प्रार्थना को टाला नहीं जा सकता था। खुद अमीर ने यह सलाह दी कि उस देश पर दखल जमा लिया जाय। यथानुसार थाल से फौजें भेजी गईं और घाटी पर अधिकार कर लिया गया। तब से पूरी घाटी, यद्यपि वह ब्रिटिश भारत का अङ्ग नहीं बनी,

हमारे राजनैतिक अफ़सर (Political Officer) द्वारा अनियमित किन्तु प्रभावपूर्ण ढंग से शासित हो रही है।

"सीमा प्रान्त के दक्षिणी भाग के विषय में सन् १८८६ ई० में यह तय हुआ था कि गोमल दर्रे को खोलने के लिए कुछ कार्यवाही की जाय। वहाँ की जातियों से मिलकर मामला ठीक कर लेने पर सर राबर्ट सैण्डमैन तथा ब्रूस अपोजाई से गोमल दर्रे में होते हुए पंजाब को चल दिये। अपनी हठ पर अड़ी रहने वाली जातियों में एक ही खिदरजाई कबीला था जो शिरानी जाति की ही एक उपजाति थी। उनके दुर्व्यवहार का दण्ड देने के लिए यह जरूरी हो गया कि सन् १८६० ई०में एक सेना भेजी जाय। उसके बाद शिरानी की हद में जाओ और जुहरखेल के रास्ते पर सैनिक चौकियाँ स्थापित की गई थीं। यह रास्ता शिरानी देश में होकर सैण्डमैन के किले तक जाता था, उसको खुला रखा गया तथा उसका संरक्षण भी रखा गया।

"गोमल मार्ग के खुलने बाद शीघ्र ही अफ़गान अफ़सर महसूदों के देश में घुसने लगे। उनके आगमन का सभी वज़ीरी वर्गों पर बड़ा विघ्नकारी प्रभाव पड़ा। सन् १८६३ ई० में 'डूरेण्ड सन्धिपत्र' के अनुसार अमीर ने बिरमल को छोड़कर पूरे वज़ीरिस्तान और दवार पर से अपना अधिकार छोड़ दिया। कुछ भी हो, इससे वज़ीरियों के व्यवहार में किसी प्रकार का फ़ायदा नहीं हुआ। निरन्तर उपद्रव और आक्रमण होते रहते थे। सन् १८६४ ई० में डूरेण्ड सीमा को ठीक-ठाक सँभालने के लिए कुछ फौजें वज़ीरिस्तान में पहुँचीं। वाना के ब्रिटिश शिविर पर एक तगड़ा आक्रमण हुआ था जिसे हराकर भगा दिया गया। निश्चय यह हुआ था कि हमारी पिछली नीति असफल रही है, और (इसीलिए) अब समय आ गया है जब हमें वज़ीरिस्तान पर अपना दखल जमा लेना चाहिए। जाड़े के दिनों ने "वज़ीरिस्तान फील्ड फोर्स' (Waziristan field force) ने महसूदों के देश को पूर्णतः रौंद डाला। सन् १८६५ में बन्नू से एक टुकड़ी ने टोची में प्रवेश किया, जहाँ दवारिस लोगों ने यथाविधि प्रार्थना की कि हम उस पर अधिकार

करलें। और तब पूरा का पूरा वज़ीरिस्तान ब्रिटिश अधिकार में ले लिया गया जिसका शासन दो अफ़सरों द्वारा होना था जो क्रमशः वाना और टोची में रहते थे। साथ ही वाना और मीरनशाह में फौज भी रखी गई थी।

उसी वर्ष हमारे राजनैतिक प्रभाव का क्षेत्र और भी आगे दोर, स्वात और चित्राल की दिशा में बढ़ गया। बहुत लम्बे अरसे से भारत सरकार इस देश की विदेश-नीति पर कुछ अपना प्रभाव जमाने के महत्त्व को समझ गई थी। और सन् १८८५ से, जिस वर्ष सर विलियम लौकहार्ट का मिशन चित्राल गया था, इस रियासत के शासकों से हमारे सम्बन्ध बहुत निकट और आत्मीयत्व के हो गए। किन्तु सन् १८९२ ई० में मेहतर अमाँ-उल-मुल्क की मृत्यु होने पर अराजकता का युग आ गया। एक के बाद दूसरा राज परिवार का व्यक्ति गद्दी के लिए लड़ता, और बाद में या तो गद्दी से उतार दिया जाता या क़त्ल कर दिया जाता। सन् १८९५ ई० में उमर खाँ नामक जण्डोल के एक पठान सरदार ने उस प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। उसका साथ शेर अफ़ज़ल खाँ ने दिया था, जो मेहतर* की गद्दी का हक़दार था, और अफ़गान राज्य से बिना रोक-टोक भाग गया था। मेजर रौबर्टसन, जो आज (रिपोर्ट लिखे जाने के समय) गिलगिट में ब्रिटिश दूत की तरह हैं, उस समय चित्राल में था। उसने शुजा-उल-मुल्क को, जो नौ वर्ष का लड़का था नियमित रूप से मेहतर स्वीकार कर लिया। उस नवजवान मेहतर के साथ ही ब्रिटिश मिशन को भी इस मित्रदल (उमर खाँ और अफ़ज़ल का सम्मिलित दल) ने क़िले में घेर कर बन्द कर दिया और यह घेरा पूरे छः सप्ताह तक पड़ा रहा। और वे इस घेरे

---

* मेहतर' कोई नामांश या नाम नहीं है। चित्राल के शासकों को 'महतर' कहते हैं। 'महतर' फारसी में राज कुमार को कहते हैं। इनका घराना तीन चार सौ साल से चितराल पर राज्य कर रहा है। —लेखक

११

में तब तक पड़े रहे, जब तक जनरल सर राबर्ट लो की अध्यक्षता में 'चित्राल रिलीफ फोर्स' (चित्राल सहायक सेना) और गिलगिट से संचालन करते हुए कर्नल केली की अध्यक्षता में एक और फोर्स (सेना) ने आकर उन्हें मुक्त नहीं कर दिया। और तब यह निश्चय किया गया कि पेशावर के उत्तरी सीमान्त और चित्राल के बीच की सड़क को आने-जाने के लिए खुला छोड़ दिया जाय। इस विचार को ध्यान में रखकर मालकन्द के दर्रे में चकदर्रा और चित्राल के पास सेनायें रखी गईं, और साथ ही मालकन्द के लिए एक राजदूत भी सीधे भारत सरकार की देखरेख में वहाँ के सरदारों और लोगों से ठीक सम्बन्ध बनाये रखने के लिए नियुक्त किया गया। सन् १८९७ ई० में कहीं जाकर चित्राल को गिलगिट एजेन्सी से अलग किया जा सका, और पूरी सड़क एक ही सत्ता के मातहत करदी गई।

"इस प्रकार सन् १८९५ ई० की साल डूरेण्ड सीमा को बहुत कुछ निश्चय करके, तथा शेरानियों के देश, समाना, कुर्रम की घाटी, वज़ीरिस्थान और चित्राल सड़क पर ब्रिटिश अधिकार जमा कर समाप्त होती है।

"अभी तक जितने भी उत्पातों ने उत्तर-पश्चिमी सीमा की शान्ति को भंग किया था उन सबसे भारी आग सन् १८९७ ई० में भड़की यह निस्संदेह सत्य है कि कबाइलों के सन्देह को बढ़ते हुये ब्रिटिश प्रभाव ने, तथा पहले की स्वतन्त्र वसुन्धरा पर स्थापित ब्रिटिश फ़ौजों ने ही भड़काया था। डूरेण्ड सीमा का निश्चय होना सीमा-प्रान्त को हड़पने का पहला कदम माना गया था। मुल्लाओं के कट्टर धार्मिक उपदेश तथा बढ़ा चढ़ाकर फैलाई हुई अफ़वाहों ने जिन्हें विश्वास यह किया जाता है कि अफ़गान अधिकारी बढ़वा देते थे, धुँधुआती हुई आग में लुका छोड़ दिया। लगभग ठीक उसी समय टोची से मालकंद तक की सैनिक चौकियों पर वहाँ के लोगों ने आक्रमण कर दिये। १० जून के दिन टोची की एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी पर मज़ीर के मद्दाखिलों ने बड़ी भीषणता से हमला कर दिया। पाँच ब्रिटिश अफ़सरों को मार

डाला गया। बड़ी कठिनाई और हिम्मत से लड़नेके बाद कहीं यह टुकड़ी दत्ताखेल को वापिस ले सकी। २६ जुलाई को कबाइलों के बादल ने पगले फ़कीर के नेतृत्व में मालकंद और चन्द्रका के किलों पर धावा बोल दिया। अगस्त के दिन, मुल्ला अड्डा की आग लगावा धर्म शिक्षाओं को मानकर मोहमंद, पेशावर ज़िले के शंकरगढ़ नामक नगर में घुस आये। उसी महीने की २३ वीं तारीख को अफ़रीदियों का लश्कर ख़ैबर पर चढ़ आया, तथा उस दिन और आगे के दो दिनों में खैबर की सब चौकियाँ छीन ली गईं और लूट डाली गईं। १२ सितम्बर को इन दो जातियों के लश्करों ने मिल कर लोकहार्ट का किला तथा गुलिस्ताँ घेर लिया और इनके बीच में स्थित सारांगढ़ी के किले पर अपना दखल जमा लिया। यह हालत एक दम अजीब थी। ब्रिटिश सैनिक चौकियों पर यह धावे और आक्रमण सीमान्त के उन संग्रामों जैसे नहीं थे जिन्हें पहले हम देख चुके हैं। कबाइलियों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक धर्म-युद्ध की घोषणा कर दी थी और अब तो मामले के अन्तिम निबटारे के लिये युद्ध करना पड़ गया था।

"टोची में आततायियों को दण्ड देने के लिये दो पल्टनों की सम्मिलित शक्ति भेजनी पड़ी थी जो मेजर जनरल कोरी बर्ड की अध्यक्षता में थी। इस सेना का खास विरोध नहीं हुआ। मद्दाखेल सीमा पार के देशों में, अपनी फ़सलें और गाँवों को नष्ट होने देने के लिए छोड़कर भाग गये। नवम्बर के महीने में इस कबीले ने सरकार द्वारा लगाई शर्तों के सामने सिर झुका दिया। २ अगस्त को मालकन्द से एक हमला किया गया जो सफल हुआ। दुश्मनों को पीछे भगा दिया गया और चकदरा जो बुरी तरह लूटा गया था, वापिस ले लिया गया। सर बिन्डन ब्लड की अध्यक्षता में एक भारी ताक़त इस देश में होकर चली। मोहमंदों के देश में एक कठिन लड़ाई के बाद, धार्मिक कट्टरता की लहर उस भू-भाग में पूरी-पूरी तरह हमेशा के लिए रोक दी गई। ६ अगस्त के दिन पेशावर की एक छोटी-सी सेना के हाथों मोहमंद

लोग उनके बड़े नुकसान के साथ हटा दिये गये। सितम्बर माह में जनरल एलिस इस देश में गांडो के रास्ते घुसा, जब कि जनरल ब्लड की सेना में से एक टुकड़ीने निकलकर नवागई से उसे सहायता पहुँचाई। मोहमंदों ने जल्दी जल्दी अधीनता स्वीकार करली और हमारी सेना, बेदमानी दर्रे, जो मुल्ला अड्डा के घर को जाता है, के समीप की थोड़ी रुकावट को छोड़कर लगभग निर्विरोध ही बढ़ गया। डूरेण्ड रेखा के पूर्व की सारी ज़मीन को दबाते हुए अक्टूबर में युद्ध सेनायें ब्रिटिश राज्य में लौट आईं। १४ सितम्बर को जनरल यीटमैन बिग्ज़ ने समाना की चौकियों को मुक्त करा दिया। अफ़रीदियों और उरकज़ाइयों को उनके आक्रमणकारी कामों का शिक्षापूर्ण दण्ड दिया गया। उनके तीरा के अभी तक के अटूट शरण स्थलों पर सन् १८६७ के अक्टूबर में जनरल सर विलियम लौकहार्ट की अध्यक्षता में जाने वाली एक ४०,००० (चालीस हज़ार) से ऊपर सिपाहियों की सेना द्वारा आक्रमण किया गया। २० तारीख को दरागई की लड़ाई लड़ी गई, और २६ तारीख को सम्पगगा के दर्रे पर धावा बोला गया। वहाँ से सेना मस्तुरा की घाटी में आगे बढ़ी। ३१ तारीख को अरहंगा का दर्रा थोड़ी सी लड़ाई के बाद ले लिया गया। एक ब्रिगेड (टुकड़ी) को मस्तुरा में उरकज़ाइयों के मुकाबले को छोड़ तीन ब्रिगेड (टुकड़ियाँ) मैदन में घुसीं। २० दिसम्बर तक उरकज़ाइयों को पूरी तरह दबा दिया गया। जाड़ा बड़ी जल्दी जल्दी बढ़ा आ रहा था, इसलिए यह आवश्यक हो गया कि ये सेनायें शीघ्र ही दिसम्बर के आरम्भ में ही मैदन छोड़ दें। सेनाओं को बारा की घाटी में होकर जाते देख अफ़रीदियों का साहस बढ़ गया। लेकिन उनकी विजय क्षणस्थायी थी, क्योंकि दिसम्बर और जनवरी में बारा की घाटी साफ़ करदी गई (अफ़रीदी भगा दिये गये) और हमारी सेनाओं ने खैबर पर अधिकार कर लिया गया। मार्च के महीने में अफ़रीदियों ने हार मानली और उन पर जो जुर्माने लगाये गए वे भी चुका दिए।

"सन् १८६७ के इन उपद्रवों और 'महसूदों के घेरे' के बीच में दो ही

घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। पहली तो कुर्रम के चमकानी लोगों पर प्रत्याक्रमण की है, और दूसरी वज़ीरिस्तान के गुमाती वाले मामले की। इस या उस आक्रमणों के बदले में हमें सन् १८६६ ई० चमकानियों के के खानी खेल कबीले से ११,००० रुपया मिला। मार्च में एक सफल कार्य प्रत्याक्रमण किया गया और इस जाति को हमारी शर्तें मान लेने के लिए मजबूर कर दिया गया। उसी वर्ष एक छोटी सी सेना बन्नू से गुमाती के गैर कानूनी भगोड़ों को पकड़ने के लिए रवाना हुई। इनमें से कुछ अपने दुर्गों में (छोटे छोटे मीनारनुमा दुर्ग) छिपे रह सके और निकाले नहीं जा सके, इस पर सेनाएँ असफल होकर लौट गईं। हालाँकि थोड़े ही दिनों में यह सेनाएँ लौट आईं और उस गाँव को नष्ट कर दिया, लेकिन उस हार का प्रभाव उनकी बाद की विजयों से अधिक गहरा था। सन् १८६६ से १६०२ ई० तक कोहाट और बन्नू के सीमान्त को ख़ूब अच्छी तरह उन दलों ने लूट लिया जिन पर सेनाएँ विजय नहीं पा सकी थीं।

महसूदों का घेरा

सन् १८६७ ई० में महसूद ही एक ऐसी शक्तिशाली जाति थी, जिसने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जिहाद में अपने लश्कर को एकत्रित करके नहीं भेजा, हाँ, बीच बीच में आक्रमण प्रायः होते रहते थे। इन जातियों के खिलाफ़ लगाए गए जुर्माने बढ़ते गए। सन् १८६७—६८ म सीमान्त पर की जनता में फैली हुई उत्तेजना, जो समझा जाता था कि वज़ीरिस्तान में भी फैल सकती है, के खिलाफ़ सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की। बाद को भी इन जातियों से जो सन्धि वार्त्ताएँ हुईं वे अर्थ-हीन और असफल सिद्ध हुईं। सन् १६०० ई० के दिसम्बर माह में एक घेरे की घोषणा की गई। इस नाकेबन्दी में किए गए पहले प्रयत्न तो अपने उद्देश्य में असफल सिद्ध हुए। उस समय में यह कबीले लगभग ७५,००० के नक़द और अन्य रूपों में जुर्माने दे चुके थे, परन्तु इधर के महीनों में जो नये दण्ड-कर उन पर चढ़ गये थे, वे अभी तक सन् १६०१ की जुलाई में और उसके पहले के हरजानों से बहुत ज्यादा थे।

साफ बात यह थी कि इन चढ़े हुए जुर्मानों को देने की कबाइलों के मन में बिल्कुल न थी और इसीलिए काम आगे जाने से रुक गया था (राजनैतिक निष्क्रियता छा गई थी)। २५ नवम्बर १६०१ तक घेरे की रक्षात्मक नीति समाप्त हो गई। और महसूदों के देश पर बड़ी सफलता-पूर्वक हमारी सेनाओं ने प्रत्याक्रमण किये। महसूद लोग धर दबाये गये। जनता राजीनामे पर जोर दे रही थी। मुल्ला पोविन्दा जो अभी तक ब्रिटिश शत्रुदल का नेता था, सिर झुकाने के लिए मजबूर किया गया। सरकार द्वारा लगाई गईं शर्तें पूरी करदी गईं, इस पर ११ मार्च सन् १६०२ की सुबह को घेरा उठा लिया गया। कबीलों के उपद्रवों का हमें सन्तोषजनक बदला मिला, इतना ही नहीं, बल्कि यह पहला अवसर था जब महसूदों से हमारा सम्बन्ध कुछ इस प्रकार का बन गया कि हम जिरगे की शक्ल में जिसका फैसला पूरा कबीला मानता था, हम सरकार की तरह रोब-दाब दिखाने योग्य बन गये। यह तो भविष्य ही बता सकेगा कि हमारा यह राजनैतिक ढाँचा उन परिस्थितियों में, जिन्होंने इसे जन्म दिया है, जीवित रह सकेगा या नहीं, परन्तु अभी तो महसूदों से हमारे रीति-व्यवहार इतने सन्तोषपूर्ण हैं जितने पहले कभी नहीं रहे।

हाल की घटनाएँ

६ नवम्बर सन् १६०१ के महसूदों के घेरे की दो अवस्थाओं (रक्षात्मक और आक्रमणात्मक) के बीच के समय में वह भू-भाग जो आज चीफ कमिश्नर के द्वारा शासित हो रही है, उस समय उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के नाम से पंजाब से अलग थीं। हिज हाईनैस अमीर अब्दुर्रहमान की मृत्यु के कुछ महीनों में अशान्ति पैदा हो गई। लेकिन हिज् हाईनैस अमीर हबीबुल्ला के शान्तिपूर्ण राज्यारोहण से यह उत्तेजना शान्ति होती गई। सन् १६०२ की प्रमुख घटनाएँ यह हैं। शेरानी प्रदेश में अतिरिक्त सहायक कमिश्नर (Extra Assistant Commissioner) की हत्या। वाइसराय का पेशावर दर्शन। और काबुल खेल वज़ीरियों के खिलाफ की गई प्रतिशोधात्मक कार्रवाइयाँ।

'अतिरिक्त सहायक कमिश्नर' (Extra Assistant Commissioner) की हत्या में 'लेवियो'* का बहुत बड़ा हाथ था, और कबाइलों ने भी मदद की थी। लेकिन तुर्त-फुर्त किए उपायों से, जब यह दल घेरकर छिन्न-भिन्न कर दिया गया और सीमा पार भगा दिया गया तो शोरानियों के बिना उपद्रव किये हुए ही मामला रफ़े-दफ़े हो गया। सन् १६०२ के अप्रेल माह में एक बहुत बड़ा दरबार पेशावर में किया गया था जिसमें प्रान्त के प्रमुख सरदारों, कबाइलियों के जिरगाओं† तथा सेना के अफ़सरों की उपस्थिति में, वाइसराय महोदय ने सीमा प्रान्त की सरकारी नीति सर्व-साधारण में घोषणा की। कुछ वर्षों तक थाल और टोची के बीच का भू-भाग सीमान्त का अलसटिया होकर रहा था। ब्रिटिश राज्य से भागकर गैर कानूनी भगोड़े लोग बड़ी बड़ी संस्थाओं में वहाँ बस गये थे। सबसे अधिक साहसपूर्ण हमले को हाट और बन्नू के ज़िलों पर हुए थे। (आबादी से) दूर बसे पुलिस थानों पर अकस्मात ही आक्रमण कर दिए गए और लूट डाले गए। गुरगुरी के पुलिस थाने के आक्रमण ने तथा कुछ पुलिसमैनों के पाशवी बध ने मामले को बहुत गम्भीर बना दिया। सन् १६०२ के नवम्बर में टोची, बन्नू और कोहाट से छोटी छोटी सैनिक टुकड़ियाँ काबुल खेलों के देश में घुसने लगीं। गैर कानूनी लोगों के दल ने अपने गुम्माती के किले पर बड़ा उग्र विरोध किया, लेकिन अन्त में किले पर बड़ी वीरतापूर्वक धावा बोल

---

* "लेवी" सचमुच में एक तरह की मिलिशिया (फ़ौज) है, जिसका काम सड़कों की चौकसी है। उसी इलाके के कबीले वाले 'लेवी' में भरती किये जाते हैं जहाँ सड़क होती है। और उन्हें सरकार की ओर से वेतन मिलता है।" 'हिन्दुस्तान की सैर' से उद्धृत। —लेखक

† ज़िरगा पठानों के पंचायत हैं। इसमें भी पंचायतों की भाँति सरदार और खान पंच होते हैं। आगे चलकर इसमें अँग्रेज़ों ने भी हस्तक्षेप किया था। ज़िरगा शब्द सामूहिक संज्ञा है जो पंचों के लिये प्रयुक्त होता है। इसका विशद हाल पाठक आगे चलकर देखेंगे। —लेखक

दिया गया, निस्सन्देह हमारी कुछ बहुमूल्य जानें चली गईं। काबुल खेलों ने स्वयं ही बिना किसी तकरार के आत्मसमर्पण कर दिया। वे गढ़ियाँ, जिन्होंने बड़ी मुसीबतें पैदा करदी थीं, धरती में मिला दी गईं। बचे-बचाये ग़ैर कानूनी भगोड़ों ने अधिकतर जगहों में हथियार डाल दिये। अब यह तै किया गया है कि गुम्माती पर इस भाग को अधिकार में रखने के लिए 'बोर्डर मिलिटरी पुलिस' की चौकी बनाई जाय, ताकि ग़ैरकानूनी का यह रोग, जिसने इस सीमा को इतने दिनों से अशान्त कर रखा है फिर न उभर आये।

सन् १९०३ से १९०६

अगले कुछ वर्षों में सीमा प्रान्त बड़ी बड़ी विपत्तियों से मुक्त रहा। यद्यपि कोई भी वर्ष ऐसा न था जिसमें प्रान्त की पूरी सीमा पर फैली हुई इस लड़ाकू और अच्छी तरह हथियारबन्द जाति के सम्पर्क से उत्पन्न अमित चिन्ताएँ बिल्कुल नाम को भी न हों। सन् १९०३ में सीमा पर कोई महत्वपूर्ण दुर्घटना नहीं हुई, और सन् १९०४ ई० के वर्ष में यह जातियाँ आम तौर से उतनी ही शान्त थीं। अगले साल में दीर के नवाब की मृत्यु इसलिए उल्लेखनीय थी क्योंकि उसका उत्तराधिकारी पुत्र बादशाह खाँ, शान्ति के साथ बिना किसी झगड़े-टण्टे के गद्दी पर बैठ गया। आम जनता की व्यापक शान्ति में अपवाद सदा की भाँति महसूदों ने अपने दुश्चरित्र से खड़ा कर दिया। उन्होंने वाना एजेन्सी में स्थित दक्षिणी वज़ीरिस्तानी फ़ौज (Southern Waziristan Militia) के दो अफ़सरों का धार्मिक अन्धता में बध कर दिया। परिणामस्वरूप यह ज़रूरी समझा गया कि थोड़े दिनों के लिये महसूदों को फ़ौज में भरती करने की कोशिशें बन्द करदी जायँ। इस वर्ष भी ग़ैरकानूनी भगोड़ों का एक दल प्रसिद्ध होकर उत्पन्न हो गया जिसका प्रधान अड्डा अफ़गान राज्य के हज़रनाव नामक स्थान में था, और जो कि पेशावर ज़िले के अधिकारियों पर आफ़त ढाने को पैदा हुआ था। सन् १९०५ ई० की साल की महत्वपूर्ण घटना हिज़ मैजेस्टी सम्राट (His Majesty the King Emperor) की, तब वेल्स के राजकुमार,

वेल्स की राजकुमारी सहित, सीमा प्रान्त में भेंट थी। उनका आगमन पेशावर में खचाखच भरे एक दरबार करके मनाया गया था। यह वफ़ादारी प्रदर्शन का दर्शनीय अवसर था। इस १६०५ की वर्ष की एक और मजेदार घटना लोई शिलमन (Loi Shilman) के रास्ते से होती हुई अफ़गान सीमा की ओर अक्टूबर में पेशावर-जमरूद रेलवे लाइन की शाखा बनाये जाने की थी। कुल मिलाकर सीमा पर के शासन को देखते हुए तो यह वर्ष शान्ति और सन्तोष का था। लेकिन महसूद फिर आफ़त की जड़ सिद्ध हुए। बन्नू में इसी जाति के कट्टर भाई बन्धुओं ने कैप्टिन डोनल्डसन का बध कर दिया। इस उपद्रव के लिए भारी आर्थिक दण्ड की शर्तें उन पर थोप दी गईं। चूँकि साखा खेल अफ़-रीदियों का आचरण भी आपत्तिजनक था, इसलिए कुछ अफ़रीदियों की ही सहायता और मध्यस्थता से उन पर रोक लगा दी गई, जिसमें हम सफल हुए। इसी वर्ष से बहुत दिनों तक चलती रहने वाली शत्रुता भी दीर के नवाब और उसके भाई मियाँ गुलजाँन में पैदा हो गई। उनकी दुश्मनी का कार्यरूप में दिखावा आगे की १६०६ वीं साल तक चलता रहा, लेकिन उसमें हम लोगों का कुछ भी हानि-लाभ न था।

सन् १९०७ से १९०८ तक

सन् १६०७ की साल में सीमान्त के शासन का प्रमुख लक्षण जैसा कि पिछली वर्ष था, साखा खेलों का पुराना चला आता दुराचार था। यह साखा खेल वही थे जो अफ़गान राज्य स्थित हर गाँव के गैरकानूनी लोगों के दल से सम्बन्धित पेशावर जिले पर हुये आक्रमणों के लिये उत्तरदायी थे। इस वर्ष के अन्तिम दिनों में जाखा खेल अफ़रीदियों के खिलाफ चलाया हुआ मामला भारत सरकार के पास पहुँचा दिया गया। खुद पेशावर शहर पर जब एक जबरदस्त आक्रमण करने के बाद इनके उपद्रवों का अन्त हो गया तो अगली वर्ष सन् १६०६ के फरवरी माह में एक फील्ड फोर्स के द्वारा जिसका सचालन मेजर जनरल सर जेम्स विलकौक्स कर रहे थे, उन्हें कड़ा दण्ड दिया गया और इस प्रकार

ऐसी व्यवस्था करदी गई ताकि यह उद्दण्ड जाति नियंत्रण में रखी जा सके। यह वर्ष केवल एक दूसरी घटना के लिये और उल्लेखनीय है। यह घटना सीमा-पार की मिलिटरी का कार्रवाइयों की है जो सन् १९०२ में होने वाले कावुल खेलों के झगड़े के दस वर्षों में हुई थी। सन् १९०८ ई० के मई माह में एक बहुत ही सफल आक्रमण मोहमंदों के ऊपर किया गया। पेशावर ज़िले पर एक सशस्त्र आक्रमण करने अपराध में इन्हें भारी दण्ड दिया गया। आक्रमण का काम समाप्त होने पर इस जाति के साथ एक सन्तोषपूर्ण राजनैतिक समझौता किया गया। मोहमंदों के ब्रिटिश राज्य पर किये गये आक्रमण से ही जुड़ा हुआ एक निष्फल प्रयत्न सूची साहिब नामक एक कट्टर धार्मिक मुल्ला ने अफ़रीदियों को झगड़े के लिये भड़काने को किया। परिणाम कुछ भी नहीं हुआ वह हार गया। और लंडी कातल के आक्रमण में उसके साथियों को छिन्न भिन्न कर दिया गया।

"जनवरी सन् १९०७ में अम्ब के नवाब की मृत्यु से कोई दुर्घटना नहीं हुई, उसका लड़का खान-ए-जाम ख़ाँ शान्तिपूर्वक गद्दी पर बैठ गया। मुल्ला पोविन्दा और मालिकों के बीच के भारी मतभेद के कारण महसूदों की समस्या बड़ी चिन्ता का विषय बनी रही। यह मतभेद वह अवस्था थी, जब, अनुभव बतलाता था कि ब्रिटिश अफ़सरों की जान बड़ी जोखिम में पड़ जाती है। सीमान्त के इस भाग की यह दशा निरंतर ही और भी गम्भीर होती गई। और अन्त में पोलिटिकल एजेन्ट के एक नौकर और मुंशी की हत्या में जाकर समाप्त हुई। इसके बदले में पोलिटिकल एजेन्ट ने बहुत बड़ी तादाद में महसूदों को गिरफ्तार कर लिया और उसकी सम्पत्ति ज़ब्त करली। इसके साथ ही टाँक में चीफ कमिश्नर से मिलने के लिये इनका एक जिरगा भी बुलाया गया। वज़ीरिस्तान के नये ही नियुक्त हुये रेज़ीडेण्ट महाशय जे० एस० डोनल्स सी०आई०ई० के सामने तथा बाद को चीफ कमिश्नर के सामने होने वाली जमातों के सिलसिले में यह पहली जमात थी। इस पारस्परिक व्यवहार के दो परिणाम हुये।

पहला तो यह कि महसूदों वाली सीमा पर कुछ समय के लिये और जगहों के मुकाबले शान्ति हो गई। दूसरा यह कि इसके कारण इस जाति पर से मुल्ला पोविन्दा का प्रभाव सन्तोषजनक रूप से कम हो गया। इसी वर्ष खोस्त से खास कर कोहाट और बन्नू जिलों पर गैरकानूनी भगोड़ों के आक्रमणों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती गई। सीमा के झगड़े के अतिरिक्त १९०८ का साल इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है कि प्रान्त में समझौते के प्रयत्न बहुत हद तक आगे बढ़ गये। विश्वास यह किया गया था कि इस परिणामरूप में हुई इस प्रगति से कुछ जगहों पर असन्तोष उत्पन्न हो गया। इसलिये जाँच पड़ताल की गई और कुछ सहायता भी 'रिलीफ' के रूप में पहुँचाई गई। जून १९०८ ई० में प्रान्त के प्रथम चीफ कमिश्नर सर हैरोल्ड डीन्स, जो सर जार्ज रौडकैपैल के० सी० आई० ई० के उत्तराधिकारी थे, की पश्चातापपूर्ण हत्या हुई।

सन् १९०९से १९१२ ई० तक

"जुलाई १९०९ ई० में लोर्ड शिलमन रेलवे बनाने की योजना त्याग दी गई। यह साल असाधारण और अपूर्व शान्ति का साल था। अपवाद रूप में एक तो खोस्त से गैरकानूनी भगोड़ों के हमले चलते रहे और दूसरे मुल्ला पोविन्दा के कुछ अनुयायी थे। मुल्ला पोविन्दा के अनुयायी तो किसी प्रकार, बन्नू जिले के पठारखेल में लगने वाले भारी धक्के को, जिसने उनके नेता पर बड़ा कुप्रभाव डाला था, झेल गये। परन्तु इस कबीले में जो भाग अधिक नियमानुकूल चलने वाला था, उसने पौलिटिकल एजेण्ट से सन्तोषजनक समझौते कर लिये। यह बहुत अजीबौग़रीब घटना थी। अफ़रीदियों ने अपनी शर्तों को पूरा करके, अपने को औरों से अलग कर लिया। शर्तों की यह पूर्ति इस बात की गारण्टी थी कि भविष्य में उनके साखा खेल कबीलों का आचरण ठीक रहेगा। कबीलों में मार्टिनी हेनरी नामक बन्दूकों के अबाध वितरण से सीमान्त के गाँवों गाँवों की सुरक्षा बढ़ गई। लेकिन गैरकानूनी लोगों का कोई सन्तोषजनक हाल

ऐसी व्यवस्था करदी गई ताकि यह उद्दण्ड जाति नियंत्रण में रखी जा सके। यह वर्ष केवल एक दूसरी घटना के लिये और उल्लेखनीय है। यह घटना सीमा-पार की मिलिटरी का कार्यवाइयों की है जो सन् १६०२ में होने वाले काबुल खेलों के झगड़े के दस वर्षों में हुई थी। सन् १६०८ ई० के मई माह में एक बहुत ही सफल आक्रमण मोहमंदों के ऊपर किया गया। पेशावर ज़िले पर एक सशस्त्र आक्रमण करने अपराध में इन्हें भारी दण्ड दिया गया। आक्रमण का काम समाप्त होने पर इस जाति के साथ एक सन्तोषपूर्ण राजनैतिक समझौता किया गया। मोहमंदों के ब्रिटिश राज्य पर किये गये आक्रमण से ही जुड़ा हुआ एक निष्फल प्रयत्न सूफी साहिब नामक एक कट्टर धार्मिक मुल्ला ने अफरीदियों को झगड़े के लिये भड़काने को किया। परिणाम कुछ भी नहीं हुआ वह हार गया। और लंडी कातल के आक्रमण में उसके साथियों को छिन्न भिन्न कर दिया गया।

"जनवरी सन् १६०७ में अम्ब के नवाब की मृत्यु से कोई दुर्घटना नहीं हुई, उसका लड़का खान-ए-ज़ाम खाँ शान्तिपूर्वक गद्दी पर बैठ गया। मुल्ला पोविन्दा और मालिकों के बीच के भारी मतभेद के कारण महसूदों की समस्या बड़ी चिन्ता का विषय बनी रही। यह मतभेद वह अवस्था थी, जब, अनुभव बतलाता था कि ब्रिटिश अफ़सरों की जान बड़ी जोखिम में पड़ जाती है। सीमान्त के इस भाग की यह दशा निरंतर ही और भी गम्भीर होती गई। और अन्त में पोलिटिकल एजेन्ट के एक नौकर और मुंशी की हत्या में जाकर समाप्त हुई। इसके बदले में पोलिटिकल एजेन्ट ने बहुत बड़ी तादाद में महसूदों को गिरफ्तार कर लिया और उसकी सम्पत्ति जब्त करली। इसके साथ ही टाँक में चीफ कमिश्नर से मिलने के लिये इनका एक जिरगा भी बुलाया गया। वज़ीरिस्तान के नये ही नियुक्त हुये रेजीडेण्ट महाशय जे० एस० डोनल्स सी०आई०ई० के सामने तथा बाद को चीफ कमिश्नर के सामने होने वाली जमातों के सिलसिले में यह पहली जमात थी। इस पारस्परिक व्यवहार के दो परिणाम हुये।

पहला तो यह कि महसूदों वाली सीमा पर कुछ समय के लिये और जगहों के मुकाबले शान्ति हो गई। दूसरा यह कि इसके कारण इस जाति पर से मुल्ला पोविन्दा का प्रभाव सन्तोषजनक रूप से कम हो गया। इसी वर्ष खोस्त से खास कर कोहाट और बन्नू जिलों पर गैरकानूनी भगोड़ों के आक्रमणों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती गई। सीमा के झगड़े के अतिरिक्त १६०८ का साल इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि प्रान्त में समझौते के प्रयत्न बहुत हद तक आगे बढ़ गये। विश्वास यह किया गया था कि इस परिणामरूप में हुई इस प्रगति से कुछ जगहों पर असन्तोष उत्पन्न हो गया। इसलिये जाँच पड़ताल की गई और कुछ सहायता भी 'रिलीफ' के रूप में पहुँचाई गई। जून १६०८ ई० में प्रान्त के प्रथम चीफ कमिश्नर सर हैरोल्ड डीन्स, जो सर जार्ज रौडकेपैल के० सी० आई० ई० के उत्तराधिकारी थे, की पश्चातापपूर्ण हत्या हुई।

सन १९०९से १९१३ ई० तक

"जुलाई १६०६ ई० में लोई शिलमन रेलवे बनाने की योजना त्याग दी गई। यह साल असाधारण और अपूर्व शान्ति का साल था। अपवाद रूप में एक तो खोस्त से गैरकानूनी भगोड़ों के हमले चलते रहे और दूसरे मुल्ला पोविन्दा के कुछ अनुयायी थे। मुल्ला पोविन्दा के अनुयायी तो किसी प्रकार, बन्नू जिले के पठारखेल में लगने वाले भारी धक्के को, जिसने उनके नेता पर बड़ा कुप्रभाव डाला था, झेल गये। परन्तु इस कबीले में जो भाग अधिक नियमानुकूल चलने वाला था, उसने पौलिटिकल एजेण्ट से सन्तोषजनक समझौते कर लिये। यह बहुत अजीबोगरीब घटना थी। अफरीदियों ने अपनी शर्तों को पूरा करके, अपने को औरों से अलग कर लिया। शर्तों की यह पूर्ति इस बात की गारण्टी थी कि भविष्य में उनके साखा खेल कबीलों का आचरण ठीक रहेगा। कबीलों में मार्टिनी हेनरी नामक बन्दूकों के अबाध वितरण से सीमान्त के गाँवों गाँवों की सुरक्षा बढ़ गई। लेकिन गैरकानूनी लोगों का कोई सन्तोषजनक हाल

इस साल में भी नहीं हो सका। परिणामस्वरूप सन् १९१० की अगली साल में भारत सरकार ने अमीर से लिखा-पढ़ी की और नतीजा यह हुआ कि बहुत से ग़ैरक़ानूनी लोग जो खोस्त में मौजूद थे, पकड़ लिये गये और बचे हुओं को कबाइलियों के देश में शरण लेने के लिये भगा दिया गया। ब्रिटिश राज्य के ग़ैरक़ानूनी भगोड़ों के सम्बन्ध में हमने अपनी नीति बदल ली और हर ज़िले में मुखिया लोगों की एक एक 'मिलाप कमेटी' (Conciliation Committee) स्थापित की गई। इन मुखिया लोगों के वसीले से ग़ैरक़ानूनी लोगों की एक संख्या घर वापिस लौटने में समर्थ हो सकी। फारस की खाड़ी से हथियारों के आवागमन को रोक देने से जो हानि हुई थी, उसके हरजाने को पूरा करने के लिये आदमखेल अफ़रीदियों ने इसी साल कुछ कोशिशें कीं, लेकिन यह आन्दोलन, जो सरकार को धोखा देने की एक तरकीब थी, ज़रा कठोर व्यवहार चाहता था, और फलतः शीघ्र ही खतम हो गया। एक अफ़गान-भारतीय कमीशन ने, जिसमें महोदय जे० एस० डोनल्ड्स ब्रिटिश सदस्य की हैसियत से थे, खोस्त और कुर्रम के सब लोगों के बीच पड़े हुये बहुत से मामलों का निर्णय कर दिया। लेकिन महसूद लोग अभी तक चिन्ता के कारण बने रहे और उनमें से कुछ आततायियों ने बहुत से हमले भी किये।

सन् १९११ की जुलाई में एक प्रतिनिधि जिरगे की बैठक हुई, जिसने कबीलों को मिलने वाले भत्ते का बँटवारा बदल दिया। भत्ते के बँटवारे में इस परिवर्तन से तथा कोई २००० महसूदों को बन्नू-कालबाग़-रेलवे तथा कुछ अन्य सार्वजनिक नौकरियों में काम मिल जाने से इस जाति से हमारे सम्बन्ध स्पष्टतः पहले से अच्छे हो गये। सम्बन्धों के अच्छे होने का अटल परिणाम यह हुआ कि मुल्ला पोविन्दा और भी उग्ररूप से शत्रुताचरण करने लगा। इस शत्रुताचरण का फल फरवरी सन् १९१२ में आकर फला जब कि एक लश्कर इकट्ठा करके मुल्ला ने खुले मैदान में आकर सारवकाई क़िले में पोलिटिकल एजेण्ट पर आक्रमण कर दिया। सौभाग्य से इस जाति के एक बड़े हिस्से ने आन्दोलन में

भाग लेने से इन्कार कर दिया और इस बलवेको डेरा जाट की एक सेना को टाँक और मुरतजा में भेजकर दबा दिया गया। इस संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण में खोस्त के मङ्गलों की भी चर्चा की जा सकती है, जिन्होंने कुविख्यात अफ़गान गवर्नर के विरुद्ध, बहुत से शरणार्थियों को कुर्रम में ला बिठाया। सन् १९१३ की साल में और १९१४ की साल के आरम्भ में आम जनता की शान्ति भंग कुछ हमलों ने की थी। बनर के यूसुफ़जाइयों और उत्तमनजाइयों ने पेशावर जिले पर पाँच बड़े भारी आक्रमण किये, जिनमें पहले यूसुफ़जाइयों को दबाने के लिये यह जरूरी हो गया कि एक छोटी सी सेना भेजी जाय। इस सेना ने दो गाँव नष्ट भ्रष्ट कर दिये और पूरा पूरा बदला लिया। सन् १९१३ के दिसम्बर में शिनवारियों के एक दल ने निंगरहार से जहाँगीर और खैराबाद के रेलवे स्टेशनों पर आक्रमण कर दिया। उसी प्रकार कोहाट जिले को भी हिज़ मेजेस्टी अमीर के राज्य से आने वाली खोस्टवाल जाति की लूट-पाट से कुछ हानि उठानी पड़ी।

सन् १९१४ ई०

१२ अप्रेल सन् १९१४ के दिन वाना के पोलिटिकल एजेण्ट, मेजर डौड तथा दो अन्य ब्रिटिश अफ़सरों को महसूदों के हाथ अपनी जानें खोनी पड़ीं। यद्यपि यह महसूद कुछ वर्षों से मेजर डौड की वफ़ादारी के साथ आज्ञा पालन करते आ रहे थे। इस दुःखान्त घटना से राज्य को एक ऐसे अफ़सर की सेवाओं से हाथ धोना पड़ा, महसूदों पर जिसका व्यक्तिगत प्रभाव ही इस जाति के उद्दण्ड लोगों को वशीभूत किये हुये था।

अगस्त में युद्ध की घोषणा से सीमा पर के लोगों में उतनी उत्तेजना और असर पैदा नहीं हुआ जितने की आशा की जा सकती थी। जो हलचल हुई उसमें बहुत कुछ हमारे तुर्की सम्बन्धी व्यवहार को लेकर ही की। लेकिन अन्त में पोर्ट से युद्ध छिड़ जाने पर भी न तो नौकरियों की सेवायें देने के काम में ही कोई कमी आई और न राजभक्ति प्रदर्शन में जो उस समय सभी ओर फैली हुई थी। गवर्नमेंट द्वारा शासित

कबाइलियों के देश में भी इसके प्रति थोड़ा बहुत उत्साह बढ़ रहा था। फौज में सेवाएँ अर्पित की जाने लगीं। खैबर के कबीलों की ओर से सशस्त्र सेना तैयार करने का प्रस्ताव किया गया, तथा बन्नू वज़ीरियों ने अपने एक महीने के टोची भत्ते जमा करके 'इम्पीरियल रिलीफ फण्ड' (शाही भारतीय सहायक समिति (Imperial Indian Relief Fund) को दे दिये। तुर्को के साथ युद्ध को देखकर मुल्लाओं को अच्छा अवसर मिला कि कबाइलों को जिहाद (धर्मयुद्ध) के लिए भड़का दें। कभी तो इन कामों का परिणाम देखना ही पड़ता। हिन्दुस्तानी धर्मान्धों के द्वारा उठाये हुए एक उपद्रव को शान्त करने के लिए, जनवरी में हज़ारा ज़िले के ओवी नामक स्थान पर नई सेना भेजनी पड़ी। यह शान्त हुआ तब जाकर जब चघारज़ाई के शोलारे नामक मुल्ला की अध्यक्षता में कबाइलियों की एक फ़ौज आगे बढ़ी। बानौर में मैड मुल्ला और असमर के सरकनरी मियाँ ने कुछ आन्दोलन आरम्भ किया जो निष्फल सिद्ध हुआ। उरकज़ाइयों के बीच मुल्लाओं ने यह कोशिश की कि सरकारी नौकरियों का बहिष्कार करावें। इस अशान्ति का प्रत्यक्षीकरण कुर्रम की सीमा पर अक्टूबर में हुआ, बलाई चीन पर मैदनज़ाज़ियों के एक आक्रमण के रूप में। इसी बीच खोस्ट के निवासियों के रंग-ढंग भी बहुत निश्चित रूप से भ्रमोत्पादक हो गये। यह खोस्ट वही थे जिन्होंने पहले अफगान अधिकार के विरुद्ध विद्रोह किया था, और कुछ वर्षों तक ब्रिटिश राज्य पर भयङ्कर आक्रमण भी किये थे। २६ नवम्बर सन् १६१४ को एकएक टानियों, गुरबाज और ज़दरानों की सम्मिलित फ़ौज ने मीरनशाह पर आक्रमण कर दिया। बाद में इसी प्रकार के दो और आक्रमण टोची के घाटी पर भी किये गये थे। यह तीनों आक्रमण सहज ही शत्रु पर तगड़ी चोटों से, जिसमें हमारी फ़ौजों को बहुत ही कम हानि हुई, तोड़ दिये गये। सन् १६१४ के अप्रेल में मेजर डौड, कैप्टेन ब्राउन और लेफ्टीनेंट हिकी की हत्यायों के बाद महसूदों की हालत एकदम सन्तोषजनक रही। उधर मोहमंदों के देश में मुल्ला लोग उन कबीलों को बड़े ज़ोर-शोर से जिहाद के लिये उभाड़ने और उकसाने लगे।

इस वर्ष के प्रारम्भ में प्रान्त भयोत्पादक सम्भावनाओं से आक्रान्त था। कबाइलियों को लड़ने के लिये भड़काने के मुल्लाओं के प्रयत्न कुछ स्थानों पर सफल होते हुये दिखाई देने लगे, जिसे देखकर अपनी कोशिशें बढ़ाने के लिये उनमें दूना उत्साह आ गया। मुसीबत ढाने वाला पहिला कबीला मोहमंदों का था। १७ अप्रेल को मुल्ला चकनावर नाम के एक मोहमंद जातीय मौलवी ने ४,००० सिपाहियों का एक लश्कर पेशावर ज़िले के शबकादर नामक स्थान से कुछ मील दूर पर ब्रिटिश राज्य पर हमला कर दिया। इसका कोई निश्चित परिणाम नहीं हुआ और लोग (जो फौज में थे) अपनी अपनी फसलें काटने के लिये लौट गये। जून में मुल्ला बाबरा को, जो अभी तक अमीर की आज्ञा से एकान्तवास कर रहा था, कबाइलियों के ज़ोर देने पर इस युद्धकारी दल में शामिल होना पड़ा। उसने अपनी हालत सँभाल कर ठीक करली और कबाइलियों को जिहाद करने के लिए ललकारा। इस समय तक अशान्ति स्वात और बनर तक फैल गई थी और हिन्दुस्तानी धर्मान्ध भी हिलने-डुलने लगे थे। २० जून को तुरंगज़ई के हाजी ने, जो पेशावर ज़िले का पुराना सुविख्यात और आदरणीय मुल्ला था, अपने परिवार को एकाएक हटा कर सीमा पार बनर में पहुँचा दिया। ठीक उसी समय अपर स्वात में आकर लश्कर इकट्ठे होने लगे, और मालकंद की जो अस्थिर टुकड़ी (Malkand Movable Column) थी उसे चकदार पहुँचा दिया गया। तुरंगज़ई के हाजी साहब की हलचलों से बनरवाले लोग विद्रोही हो गये और १७ अगस्त को अम्बेला दर्रे में होकर उसके लश्कर ने ब्रिटिश राज्य पर आक्रमण कर दिया। बड़ी ज़बरदस्त लड़ाई के बाद जाकर कहीं हमारी फौजों ने उसे वापिस लौटा पाया। १० तारीख को एक दूसरा लश्कर मलन्द्री दर्रे में होकर आया और इसे भी पीछे धकेल दिया। लगभग उसी तारीख को अपर स्वात नामक लश्कर मुल्ला सन्दकी और फकीर सरतौर की अध्यक्षता में स्वात की घाटी की ओर आने लगे। २८ अगस्त को मालकंद अस्थिर फौज (Malkand Movable Column) पर आक्रमण किया गया और उसी दिन इस फौज ने आगे चलकर

लण्डाकई पर होने वाले पूर्व निश्चित आक्रमण को रोका, और दुश्मन को भारी हानि पहुँचाने के बाद उनकी सेना छिन्न-भिन्न करदी गई।

इसी बीच बाबरा मुल्ला मोहमंदों को भड़काने में सफल हो गया, और ४ सितम्बर को शबकादर सीमा पर १०,००० आदमियों की एक फ़ौज चढ़ाकर ले आया। दूसरे दिन हमारी फ़ौजों ने उस पर आक्रमण किया और १,००० घायलों और मृतकों की हानि पहुँचाकर पीछे धकेल दिया। इसके बाद शीघ्र ही मोहमंदों में हैज़ा फैल गया जिसके परिणाम स्वरूप लड़ाई-झगड़े आगे के लिये रुक गये। लेकिन यह रुकावट थोड़े ही समय के लिये थी। कुनार का मीर सैयद जान बादशाह, जो अफ़गानिस्तान के मुल्लाओं में एक था, मोहमंदों के देश में आ पहुँचा, साथ में उसके ख़ुद के लोग भी थे। उसने इन कबाइलों को नए जोश के साथ उठ खड़े होने के लिये मजबूर कर दिया। अक्टूबर के शुरू के दिनों में वह शबकादर सीमा पर एक लश्कर ला जुटाने में सफलीभूत हो गया। इस जगह पर आक्रमण किया गया और करीब १०० लोगों की प्राणहानि के साथ उसको भगा दिया गया। मोहमंदों, अपर स्वातियों और बनरवालों पर नाके बिठा दिये गए और ये नाकेबन्दी तब तक रही जब तक १९१६ ई० के वसन्तकाल में इनके जिरगे हमारे पास न आये और समझौते की माँग न की।

सन् १९१६ से १९१७ ई० तक

सन् १९१६ ई० की साल लगभग सारे प्रान्त में शान्ति की साल थी। शेष भारत के साथ ही साथ लड़ाई के चालू रहने से चीज़ों की कीमत जो बढ़ गई थी, उसे यहाँ के लोगों ने भी अनुभव किया। ऐसे समय कृषक वर्ग की थोड़ी-बहुत क्षतिपूर्ति तो उनकी उत्पन्न की हुई वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने क कारण हो गई, और ग़रीब लोग (मज़दूर वर्ग) नौकरी की तनख़्वाहों में बढ़ती होने के कारण लाभान्वित हो गए। एक समय तो यह साफ़ नज़र आता था कि मक्का शरीफ के तुर्कों के ख़िलाफ़ विद्रोह करने से ब्रिटिश सरकार के प्रति बहुत कुछ असन्तोष पैदा हो जायगा। हालाँकि प्रान्त के लोगों और आज़ाद कबाइलियों में

तुर्कों के प्रति कुछ आन्तरिक सहानुभूति थी, लेकिन फिर भी किसी भी प्रकार का राजनैतिक असन्तोष लोगों में लगभग बिल्कुल नहीं था। १९१६ की साल के अन्त में आकर मोहमंद लोग फिर कुछ गड़बड़ उत्पन्न करने लगे। इसलिए पूरी जाति पर ही एक घेरा बैठा दिया गया और यह तब तक रहा जब तक आने वाले जुलाई में उन पर कड़ी शर्तें न लगाई गईं और उन्होंने उन्हें पूरी पूरी ज्यों की त्यों न मान लिया।

"मार्च सन् १९१७ में महसूद जो दुखदायी होते ही जा रहे थे, और भी तगड़े हो गए। यह सराबकाई में अपने पिछले अपराधों को सुधारने के लिए भेजे हुए 'अल्टीमेटम' (Ultimatum आखिरी चेतावनी) में आश्चर्यजनक सफलता पा लेने के कारण था। ९ से लगाकर १० अप्रैल तक हमारी गुमाल की चौकी पर कई बार हमले हुए, ५ ब्रिटिश अफ़सर मार डाले गए, ४ घायल कर दिए गए, २३९ हिन्दुस्तानी सिपाही मार डाले गए और १५७ घायल कर दिए गए, तथा कई झगड़ों के बीच महसूदों का दाम २०० राइफिलें छीनकर ले गया। जून के महीने में जंडोला में एक 'वजीरिस्तानी फील्ड फोर्स' (Waziristan Field Force) आकर मिला। यह फौज सादूरतंगी होती गई और खैसोरा के तोखन तक जितने भी दुर्गनुमा मीनार और जलाशय आदि मिले उन्हें फूँकती उड़ाती हुई आगे बढ़ी। महसूद लोगों की तरफ से जो अकस्मात ही धर पकड़ लिए गए थे, बहुत थोड़ा विरोध या रुकावट आई। २ जुलाई को महसूदों ने शान्ति की प्रार्थना की, और १० अगस्त को उन्होंने हमारी शर्तें मान लीं। इसके बाद शीघ्र ही ३८६ में से वे २५५ राइफिलें लौटा दीं जिनको लौटाने का वह वचन हमें दे चुके थे।

सन् १९१८

"सन् १९१८ ई० की साल लगभग बिलकुल ही दुर्घटनाओं से खाली थी। अफगानिस्तान के अमीर जो ब्रिटिश सरकार से की हुई प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ता से खड़ा हुआ था, के मित्रतापूर्ण प्रभाव के कारण तुरंगजई का हाजी, मुल्लाबाबरा दोद के जान साहिब जैसे

प्रसिद्ध आग उगलने वालों ने भी कबाइलों को भड़काने की कोशिशें बन्द करदीं। चित्राल के मेहतर, दीर और अम्ब के नवाबों को, जिन्होंने युद्ध काल में सरकार को सच्ची स्वामिभक्तपूर्ण सहायताएँ पहुँचाई थीं, बहुत अच्छे अच्छे पुरस्कार मिले। सेना में भर्ती भी आश्चर्यजनक रूप से अच्छी और अधिक हुई तथा इस वर्ष आबादी की दृष्टि से भर्ती की प्रतिशत इस प्रान्त में भारत के अन्य प्रान्तों से बहुत ऊँची थी। नवम्बर में जब यूरोप में लड़ाई बन्द हो गई तो सारी दुनियाँ ने इसका बड़ी ख़ुशी व हर्ष से स्वागत किया। निस्सन्देह ख़ुशी की सबसे बड़ी बात मित्र राष्ट्रों की विजय उतनी नहीं थी, जितनी यह आशा थी कि अब शीघ्र ही चीजों की कीमतों में कमी आ जायगी। परन्तु यह ऐसी आशा थी जिसके भाग्य में भारी कठिन निराशा लिखी हुई थी।

सन् १९१९ से १९२२ तक

"फरवरी सन् १९१९ में अमीर हबीबुल्ला, युद्ध काल में जिसकी मित्रता, भाई चारे के व्यवहार के लिये हम इतने अधिक कृतज्ञ हैं की हत्या का हर एक आदमी भविष्य में आने वाले राजनैतिक तूफान का सङ्केत चिन्ह समझा। अमानुल्ला ख़ाँ बहुत जल्दी ही अपने पिता की गद्दी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल होगया। अपनी डाँवाडोल स्थिति को देखते हुये यह जरूरी था कि किसी प्रकार लोगों के सामने कोई ऐसी चीज रखी जाय जिससे उनका ध्यान इधर से हटकर उस ओर लग जाय। ब्रिटिश सरकार के खिलाफ दुश्मनी की नीति चलाने के लिये उसने उस समय हिन्दुस्तान में रोलट बिल के खिलाफ चलते हुये आन्दोलन से फायदा उठाया।

"सन् १९१९ की साल के शुरू के महीनों में पूरे समय तक हिन्दुस्तान में नाम के लिये तो रोलट बिल के खिलाफ लेकिन जो वस्तुतः अँग्रेज़ों की हिन्दुस्तानी हुकूमत के ही खिलाफ था, एक जबरदस्त आन्दोलन चलता रहा। जिन्होंने पंजाब में बलवे और प्रदर्शन कराये थे, उन राजनैतिक उत्तेजकों के साथ ही साथ उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त

में भी संगठन शक्ति ने उसी प्रकार की आग सुलगाने की कोशिशें शुरू करदीं। ठीक उसी समय अफग़ानिस्तान की ओर से भी सीमा के कबाइलों को भड़काने के लिये कुछ प्रयत्न किये जा रहे थे। पेशावर जिले में थोड़े सुधार के साथ 'मार्शलला' जारी कर दिया गया, इसके द्वारा विद्रोहात्मक हलचलें रोक दी गईं और बिना किसी शक्ति प्रदर्शन के ही आन्तरिक शक्ति को क़ायम रहने दिया। अफ़गानिस्तान के साथ युद्ध छिड़ जाने के कुछ दिनों बाद ही, जब हमने सैनिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये वजीरिस्तान से बढ़ती हुई फौजें लौटा लीं, तो वजीरी और महसूदों ने हमारे विरुद्ध अपने को घोषित कर दिया। अफ़रीदियों ने भी दुश्मनी के रंग ढंग दिखाये, जिसके फल-स्वरूप लड़ाई प्रारम्भ होने के कुछ ही समय बाद खैबर राइफिल्स (Khyber Rifles) तितर बितर होकर भंग हो गई। इसके विपरीत सीमा के दूसरे भागों में ब्रिटिश राज्य के प्रति राजभक्ति के आश्चर्य-जनक उदाहरण मिल रहे थे। हाँलाकि मुल्लाओं और अफ़ग़ानों ने कबाइलियों में दुश्मनी पैदा करने की बहुत कोशिशें कीं। इस प्रकार मई के अन्त तक मोहमंदों ने बन्दूकों से अफगानों को जो, उनके देश में शबकादर पर आक्रमण करने के लिये घुसे थे, पीछे धकेल दिया। ज्यों ज्यों लड़ाई आगे बढ़ती गई ब्रिटिश राज्य की सीमाओं पर जबर-दस्त हमले होने लगे। ज्यादातर इन हमलों के करने वाले (पिछले) महायुद्ध से भागे हुये सिपाही और उनके साथ बाद को सेना में से निकाले हुये सिपाही थे। दक्का पर हमारी फौजों का शीघ्र अधिकार और खोस्ट से जनरल नादिरखाँ की सेना का शीघ्र भगाया जाना देखकर अमीर इस बात को मान गया कि झगड़ा करना बेकार है और इसलिये उसने शान्ति के लिये प्रार्थना की। थोड़े दिनों के लिये युद्ध बन्द कर देना दोनों दलों ने स्वीकार कर लिया और जुलाई में रावलपिंडी में भारत सरकार और अमीर के प्रतिनिधियों की एक कान्फ्रेंस हुई जिसके परिणामस्वरूप अगस्त में एक शान्ति की सन्धि पर दोनों दलों ने हस्ताक्षर कर दिये। साल के बाकी महीने सीमा पर

फिर से शान्ति स्थापित करने में तथा अफगान युद्ध से हुये प्रान्त पर कुप्रभावों को सुधारने में खर्च हो गये। प्रान्त के दक्षिणी भाग में कबाइली सरकार की राज्य करने की शक्तियों में सन्देह करने लगे थे, जिसमें परिणामस्वरूप वजीरियों और महसूदों का स्वभाव उग्र से उग्रतर होता जा रहा था। कोहाट, बन्नू व डेरा इस्माइल खाँ के जिलों पर इतने अधिक आक्रमण होने लगे जितने हमारे शासन काल के इतिहास में कभी भी नहीं हुये थे। नवम्बर के महीने में इन कबीलों के खिलाफ सैनिक कार्यवाइयाँ होने लगीं। बहुत लम्बे समय तक चलने वाले अटूट विरोध का सामना करने के बाद कहीं हमारी सेनाएँ महसूदों के देश के बीच में पहुँच सकीं। पहुँचकर माकिन के पड़ोस में स्थित लद्धा में एक स्थायी शिविर स्थापित कर दिया। धीरे धीरे महसूदों की बड़ी संख्या आत्म समर्पण करने लगी और सरकार द्वारा लगाई शर्तों को मानने को सहमत हो गये। किसी प्रकार इस जाति का एक भाग हमारे खिलाफ ही अड़ा रहा और आज भी अड़ा हुआ है। इसी बीच अफरीदी और उरकजाई लोग समीप के देश पर थोड़ी सी उत्तेजना पाकर आक्रमण करते रहे। कोहाट सीमा की रक्षार्थ १ हजार स्थानीय लेवियों की एक सेना बनाई गई तथा अफरीदियों के मित्र वर्ग से स्थानीय खस्सादारों को भी भर्ती किया गया। पलटनों ने बहुत काम किया। सन् १९२१ के बसन्त काल में ब्रिटिश सरकार और अफगानिस्तान के अमीर के बीच में हुई शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर हो जाने से पूरे डेरा इस्माइल खाँ जिले की सीमा की दशा मे सुधार हो गया। लेकिन किसी प्रकार महसूदों का लड़ाकू वर्ग अपनी लूट मार में लगा ही रहा। यहाँ यह कह देना ठीक होगा कि सन् १९२० में रौलट बिल को लेकर भारत में जो राजनैतिक आन्दोलन उठा था, वह हिजरत आन्दोलन में समाप्त हो गया। इस हिजरत आन्दोलन के परिणाम स्वरूप पेशावर जिले के कई हजार निवासी पेशावर छोड़कर अफगानिस्तान चले गये। इसके फलस्वरूप प्रान्त के अन्य स्थानों में भी थोड़ी बहुत हलचल मची। यह भूखे हुये प्रवासी

कुछ महीनों के बाद बड़ी निराशा के साथ लौट आये। उन्हें फिर से अपने घरों में ठहराने तथा नये ढंग से बसने के लिये, इन्तज़ाम किये जाने लगे थे।"

उपरोक्त रिपोर्ट में सीमा प्रान्त की हलचलों का ही विवरण है, इसमें कबाइलियों के राजनैतिक जागरण से अधिक उनकी उद्दण्डता का लम्बा-चौड़ा बयान है। साथ ही यह भी बात ध्यान देने योग्य है कि चूँकि यह रिपोर्ट सरकारी है, और वह भी उस समय की लिखी जब सरकारी का अर्थ बहुत अधिक संकुचित था, इस कारण इसमें पक्षपात की भावना बहुत प्रबल रूप से मिली हुई है। कहने का तात्पर्य यह कि इस रिपोर्ट में पाठक दो बातें ही प्रमुख रूप से देखेंगे। ये दो बातें हम इस प्रकार रख सकते हैं।

१—सीमा के इस ओर, सीमा पर और सीमा के पार के पठान कबाइलियों के उपद्रव और आक्रमण।

२—इन उपद्रवियों का दमन और ब्रिटिश राज्य की स्थापना।

पहले विषय के अन्तर्गत हमें महसूदों, वज़ीरियों, अफरीदियों आदि आदि जातियों के आक्रमणों का वर्णन किया गया है। इन आक्रमणों के विवरण को पढ़कर पाठकों को इन कबाइलियों के विषय में कुछ भ्रान्ति-पूर्ण शङ्कायें होने लगती हैं। वह सोचता है—यह लोग बड़े उद्दण्ड हैं, अराजकवादी हैं, उनका काम लूट-मार करना और हत्यायें करके पेट भरना है। वे पड़ोसियों की शान्ति में बाधक हैं, इसलिए आवश्यक यह है कि उनका पूरी तरह दमन किया जाय। हमारी सरकार बहादुर ने उन्हें दबाकर कोई अनुचित नहीं किया वरन् वह तो एक प्रकार का उपकार ही था। डाकुओं का दमन, फिर चाहे वह किसी वर्ग, जाति या राष्ट्र के क्यों न हों, आवश्यक ही है, इसे मानने में किसी को कोई मतभेद या विरोध नहीं हो सकता। किन्तु भूल तो भूल में ही है। हमें सर्व प्रथम तो यही देखना है कि क्या सचमुच यह कबाइली डाकू या लुटेरे उपद्रवी हैं? क्या सचमुच वह मारकाट और हत्याओं के लिये ही आक्रमण करते हैं? इस विवादास्पद प्रश्न का उत्तर हमें देना है।

दूसरे विषय पर हमें कुछ विशेष कहना नहीं। यह बिल्कुल सत्य है कि इन जातियों का दमन बड़ी निरंकुशतापूर्वक किया गया तथा किन्हीं अंशों में ब्रिटिश राज्य की स्थापना भी हो गई।

यह कहना कि कबाइली लड़ाकू और लुटेरे हैं कुछ अंशों में सही है। निस्सन्देह पेट की ज्वाला बहुत प्रबल है जो प्रायः उन्हें इस प्रकार के कामों के लिए उत्तेजित करती रहती है। परन्तु यदि सीमा प्रान्त के इतिहास क साथ साथ शेष भारत के इतिहास को दृष्टि बिन्दु पर रखें तो यह निश्चय हो जायगा कि पठानों की हलचलें उनकी दिमागी खुजली के कारण नहीं हैं, वरन् उनके पीछे विस्तृत राजनैतिक कारण हैं। ग़दर के जगाने से क्रान्ति की आग पंजाब पार कर सीमा प्रान्त भी पहुँच गई थी। यद्यपि यह सत्य है वहाँ वह उतनी तेज और चमकदार नहीं थी जितनी शेष भारत में और विशेषकर उत्तरी भारत में। ग़दर के पश्चात् मौलवी सैयद अहमद बरेलवी की हलचलें हैं जिन्हें 'वहावी' नाम दिया गया है। इस विषय में श्री आसफ़अलीजी ने भी वही भूल की है जो महाशय डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर ने। यह सरकारी रिपोर्ट की एक चाल थी। चाल क्या थी, यह जानने के लिए पहले पाठकों को यह जानना होगा कि 'वहाबी' कौन होते हैं।

बहुत दिनों की बात है अरब के नज्द प्रान्त में 'अब्दुल वहाब' नामक एक उग्र सुधारक हो गया है। इन महाशय ने अपने सुधारों के जोश और उत्साह में जहाँ कुछ सुधार किये वहाँ कुछ धृष्टताएँ भी कर डालीं। यह उनकी उग्र सुधारक प्रवृत्ति का ही परिणाम था कि मदीना शरीफ़ में हज़रत मुहम्मद के मक़बरे पर भी उन लोगों ने हाथ साफ़ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि अपने सम्प्रदाय के अतिरिक्त शेष मुसल-मानों में वह प्रिय न हो सका।

'वहाबी' शब्द तभी से चल पड़ा। इसी शब्द का प्रयोग देवबन्दी मुसलमानों पर भी किया गया था और जब 'सन् १८२४ में शाह अब्दुल अज़ीज के शागिर्द सय्यद अहमद बरेलवी ने सरहद पर 'जिहाद' प्रारम्भ किया, तो एक अँग्रेज डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर ने, यह आविष्कार

किया कि उनका सम्बन्ध इसी वहाबी आन्दोलन से है। यहाँ हम 'वहाबियों' के विवादास्पद प्रश्न को आगे के लिए छोड़कर यह बतलाना चाहते हैं कि वह 'जिहाद' क्या था।

जिन्हें सरकारी रिपोर्ट में हिन्दुस्तानी धर्मान्धों का दल कह कर विभूषित किया गया है वे वस्तुतः क्या थे? इस प्रश्न का समुचित उत्तर देने के पूर्व पाठकों को थोड़ा हाल शाह वलीउल्लाई आन्दोलन का जान लेना होगा। शाह वलीउल्ला औरंगजेब के राज्यकाल में एक बहुत बड़े विद्वान् और क्रान्तिकारी नेता थे। उनकी क्रान्ति साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिए थी। किन्तु यह धार्मिक आधारों पर आश्रित थी। अर्थात् इसमें इसलाम धर्म को ही स्थान था। तब से लेकर अनेक इमाम इसके हो चुके हैं। शाह अब्दुल अजीज ने जो वलीउल्लाई सम्प्रदाय के दूसरे इमाम थे, अपने सैनिक विभाग का अध्यक्ष सय्यद अहमद बरेलवी नाम के एक प्रधान शिष्य को बनाया। बरेलवी साहब तबसे स्थान स्थान पर उपदेश और व्याख्यान देते हुए घूमने लगे। जब सय्यद अहमद क्रान्ति का प्रचार करते करते रामपुर पहुँचे तो कुछ अफ़गानी मुसलमान इनके पास आये और यह शिकायत की कि पंजाब में सिक्ख मुसलमानों पर बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। इस दुखदायी समाचार को सुनकर सय्यद साहब का जातीय ख़ून उबल पड़ा और उन्होंने निश्चय किया कि अँग्रेजों को भगाने के पहले सिक्खों से निबट लेना चाहिये। इस निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए बरेलवी साहब स्थान स्थान पर सिक्खों से लड़ने के लिए सेना इकट्ठी करने लगे। उनके इस काम में अँग्रेजों ने भी सहायता दी। यहीं से सीमा प्रान्त की हलचल का श्रीगणेश होता है जिसे रिपोर्ट में वहाबियों की हलचल कहकर व्यक्त किया है।

भारत में अपने सहयोगियों के साथ भ्रमण करके बरेलवी साहब ने लगभग दो हज़ार सैनिकों की एक सेना तैयार की। ये सैनिक अपने को मुजाहिदीन कहते थे। इस सेना को लेकर सय्यद साहब पंजाब से बाहर होते हुये बोलन के दर्रे के रास्ते काबुल पहुँच गये और फिर वहाँ से

पीपाड़ा में आकर अपनी अपनी अस्थाई सरकार स्थापित करली।

१० जनवरी १८२७ को हुण्ड नामक स्थान पर सय्यद साहब ने सरहदी पठानों की एक विशाल सभा की। इस सभा में एक स्वर से पठानों ने सय्यद अहमद बरेलवी को अपना शासक मान लिया। इस आन्दोलन और अस्थायी सरकार में शाह वलीउल्लाई सम्प्रदाय के तीसरे इमाम शाह मुहम्मद इसहाक़ का तथा देवबन्द के मदर्से का भी सहयोग था। इनको आर्थिक व सैनिक सहायता भी ये संस्थायें दे रही थीं। यह सब देखकर, फूट डालकर राज्य करने वाले अँग्रेज फूले नहीं समाते थे। वे यह देख-देखकर कि इतनी बड़ी संगठित शक्ति एक राजा के खिलाफ ही टकरा रही थी, बहुत प्रसन्न थे। और यद्यपि रणजीतसिंह अँग्रेजों के मित्र थे लेकिन फिर भी अँग्रेज उसे अपना शत्रु मानते तथा खूब खुलकर उनके शत्रुओं को सहायता देते थे। उदाहरणार्थ मुजाहिदीनों की दिल्ली के एक व्यापारी के पास कुछ रकम जमा थी। माँगने पर जब उसने वह रक़म लौटाने से इन्कार किया तो दिल्ली के रेजीडेण्ट ने बलपूर्वक उस रक़म को वसूल कराकर मुजाहिदीनों के पास भिजवाया। इससे अँग्रेजों की कूटनीति स्पष्ट प्रकट हो जाती है।

पूरे सीमा प्रान्त में बरेलवी साहब अपने सैनिकों और मुरीदों को साथ लेकर घूमने लगे तथा इस प्रकार सेना इकट्ठी कर रहे थे। बरेलवी साहब के व्यक्तित्व से यह सेना दिन दूनी रात चौगुनी की गति से बढ़ रही थी, परन्तु तभी कुछ दुर्घटनाएँ हो गईं और यह संगठन छिन्न-भिन्न हो गया।

हुआ यह कि कुछ दिन पश्चात् सय्यद अहमद के दो सहयोगियों में से एक सहयोगी मौलाना अबुल हई की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु का का परिणाम संगठन पर बहुत बुरा हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ और भी बातें ऐसी हो गईं जिनके कारण मित्र ही शत्रु हो गये। पठानों का स्वाभिमान कोई भी बन्धन नहीं देखता। उस पर उसे ठेस वाला बड़े से बड़ा सम्बन्धी भी घोर शत्रु बन जाता है। बात यह हुई कि सय्यद अहमद की सेना में जो सैनिक मुजाहिदीन थे वे अपने परिवार तो

हिन्दुस्तान में घर पर ही छोड़ आये थे। यहाँ आकर उन्होंने बलपूर्वक पठानों की लड़कियों से विवाह करना प्रारम्भ कर दिया। विवाह करना बुरा नहीं है परन्तु बलपूर्वक विवाह करने की सजा पठान की क़ानूनी किताब में मौत है। पठानों ने इसे जातीय अपमान समझा कि कोई 'विदेशी' उन पर यह अत्याचार करे। पठान अपने को भारतीय मुसलमानों से श्रेष्ठ मानते थे तथा मुजाहिदीनों की अध्यक्षता और आज्ञा में रहने से उन्होंने साफ इन्कार कर दिया।

तभी एक मजेदार परन्तु दुखजनक घटना हो गई। घटना इस प्रकार थी। सरहद के एक प्रसिद्ध पठान सरदार खेशगी के खान की लड़की से एक भारतीय मुजाहिदीन का जबरदस्ती विवाह करा दिया गया। अपमान के ज़हर के घूँट को पी जाना खान ने नहीं सीखा है। उसने एक दूसरे पठान सर्दार खटक के खान के पास, जो उसका पुराना बैरी था, यह सन्देश भेजा कि हम लोगों को अपने आपसी बैर को छोड़ देना चाहिये। इस समय सारी पठान जाति की इज्जत का सवाल है। मुजाहिदीन हमारे शत्रु हैं। उनसे बदला लेने में आप मेरी सहायता करें।

खटक के खान ने यह सन्देश पाते ही अपना एक जिरगा बुलवाया। जब सब लोग आकर उपस्थित हो गये तो वहीं सबकी उपस्थिति में खुली सभा के बीच अपनी युवती लड़की को बुलाकर उसके सिर का कपड़ा खींचकर कहा—"जब तक खेशगी के खान की लड़की की इज्जत का बदला नहीं लिया जाता तब तक यह लड़की भी बेपर्दा रहेगी।"

इसके पश्चात् उस लड़की के हृदय पर इस उत्तेजक घटना का इतना गम्भीर और गहरा प्रभाव पड़ा कि उसके बाद वह नंगे सिर रहने लगी। नंगे सिर ही कुछ साथियों को साथ लेकर वह आस-पास के गाँवों में जाती तथा वहाँ के निवासियों को इसके लिए भड़काती कि वे पठानों की गौरव-रक्षा के लिए मुजाहिदीनों से युद्ध करें। इस उत्तेजना का परिणाम यह हुआ कि एक रात को सय्यद अहमद के हजारों वे साथी, जो पठानों और अन्य मुसलमानों को सिक्खों के अत्याचार से मुक्त

करने के नाम पर घर-बार छोड़कर जङ्गल जङ्गल मारे मारे फिरकर वहाँ पहुँचे थे, उन्हीं पठानों के हाथ क़त्ल कर दिये गये। बरेलवी साहब के सारे अरमान धूल में मिल गये। यह राष्ट्रीयता पर धर्म भावना की बलि थी।

इस दुर्घटना के बाद भी बचे हुए साथियों को लेकर सय्यद अहमद साहब सिक्खों से लड़ते रहे परन्तु व्यर्थ। ६ मई सन् १८३१ ई० को प्रसिद्ध सिक्ख सरदार हरीसिंह नलवा के हाथों, सरहाद के बालाकोट नामक स्थान पर जो युद्ध हुआ उसी में, सय्यद साहब को इस जीवन-युद्ध से मुक्ति मिल गई। सिक्खों ने सय्यद अहमद साहब के शव को बड़े आदर के साथ मुसलिम ढंग से दफ़ना दिया। इस दफ़नाने से उनके अनुयायियों में से जो अन्धविश्वासी थे, उन्हें विश्वास हो गया कि सय्यद साहब अभी मरे नहीं हैं, कारण वे मर ही नहीं सकते, वरन् समय की उल्टी गति देखकर कहीं अन्तर्ध्यान हो गये हैं, और उचित अवसर पर अवश्य प्रगट होंगे। उस समय उनके दो वर्ग हो गये। एक तो वह जो इस अन्तर्ध्यान की कथा में विश्वास रखता था। दूसरा जो यह मान चुका था कि सय्यद साहब मर गये। इनमें से पहला वर्ग आज भी यागिस्तान नामक प्रान्त में सय्यद साहब की प्रतीक्षा कर रहा है।

यह संक्षेप में सय्यद अहमद बरेलवी की हलचलों का विवरण रहा। पठानों की जाग्रति का यह प्रथम चरण है।

बरेलवी साहब की हलचलें हो रही थीं कि हिन्दुस्तान भभक उठा। यह सन् १८५७ की बात थी। पेशावर में एक नया नाटक आरम्भ हुआ। यहाँ-वहाँ प्रान्त में थोड़ी-बहुत सैनिक टुकड़ियाँ पड़ी हुई थीं जो छोटी-मोटी भाग-दौड़ के लिये ही ठीक थीं। जब प्रथम अफ़गान युद्ध छिड़ा तो इन सेनाओं ने हिन्दूकुश की सीमाओं को लाँघ दिया। रिपोर्ट के अनुसार एक तार के द्वारा पेशावर में ग़दर की खबर पहुँची। लेकिन इससे पहले ही पठान के, युद्ध-गान के लिये सतर्क रहने वाले कानों ने इस प्रिय घटना को सुन लिया और……। आत्म-रक्षा के लिये व साम्राज्य-रक्षा के लिये पेशावर में और उसके आस-पास

'बंगाली पल्टनों (Bengal Regiments) की भाड़ियाँ लगा दी गईं। यह पल्टन बहुत विश्वासनीय थी। जान लारेंस, तत्कालीन अफ़सर, बहुत ही बीर हृदय नौजवान था और पूरे प्रान्त में अच्छे अच्छे अफ़सर तैनात थे। मेजर जनरल रीड को पंजाब की फौज का कमाण्डर बनाकर भेज दिया गया। जब मेरठ और दिल्ली में क्रान्ति की ज्वाला उठी और आग की गर्मी पेशावर तक आई तो समझ में आया कि खतरा कितना भयङ्कर था। कर्नल एडवर्डस पेशावर का तत्कालीन कमिश्नर था। खबर सुनते ही कबीले चमक उठे। अफ़रीदियों ने अपने छुरे पत्थरों पर पानी डाल डालकर घिसने शुरू कर दिये। वजीरियों की होली थी, बन्दूकों की पिचकारियाँ उठाने का अवसर आ गया था। बाजारों में कबाइलियों के छुरे चलने लगे। परन्तु अफ़गानी मुँह चाटते ही रह गये। अमीर दोस्त वचनबद्ध था। जान लोरेंस से हुई दोस्ती को अभी बहुत दिन नहीं हुए थे। बेचारा वह मित्रता कैसे तोड़ देता। लेकिन फिर भी पेशावर का भट्टा दहकने लगा। कौटन और एडवर्डस ने तैयारी की। पल्टनों को निशस्त्र करा दिया। लेकिन 'केलात-ए-ग़िजली' नामक पल्टन को यों ही रहने दिया। उनकी वफ़ादारी में कोई शङ्का नहीं हो सकी। गाहड्स ने कुछ दिक्कत की तो १० वीं अनियमित घुड़ सवार सेना (1oth Irregular Cavalary) तथा निकोलसन की पुलिस की सहायता से उसे भी ठीक कर दिया गया यानी सिपाही क़ैद कर लिये गये। बहुत से भाग भी गये। लेकिन कर्मन की गति न्यारी। जलती कड़ाही से भट्टे में जा गिरे। पहाड़ी कबाइलों ने उनका ख़ूब गरमागरम स्वागत किया। यानी शिकार का अच्छा खेल जमा। उनकी वर्दी और बन्दूकें सुरक्षित रूप से छीनकर रखली गईं और उन्हें यमपुर का किराया देकर विदा किया गया। इधर सरकार बहादुर ने कैदियों को लेकर तोप के मुँह उड़ा दिया गया या फाँसी का फन्दा पकड़ा दिया गया—लो गले लगाओ। धीरे धीरे मामला शान्त हो गया। आग बुझ गई। जब दिल्ली पर अधिकार हो गया तब जाकर कहीं इन गँवारों को अक़्ल आई कि सरकार बहादुर कितनी बलवान है और दौड़ दौड़कर सेना में भर्ती

होने लगे। संक्षेप में यह रही सीमा प्रान्त में ग़दर की कहानी। पठानों में कोई महत्वपूर्ण हवा नहीं उठी। उठती भी कहाँ से? वे दूर भी कितनी थे? और उन्हें इससे कोई ख़ास सरोकार ही न था।

सन् १८७८ ई० में जब द्वितीय अफ़गान युद्ध छिड़ा तो फिर हलचल मची। अँग्रेज़ सरकार यह नहीं देख सकती थी कि अफ़गानिस्तान में रूसी रीछ अपने पंजे गड़ाये। यह पाठक पिछले अफ़गान-युद्ध-विवरण से जान चुके हैं।

सन् १८६१ ई० में फिर कुछ नवीन हलचल मची। संसार की छत (पामीर का पठार) झगड़े की जड़ थी। कंजूत नदी पर हुँजा और नागर की जो दो रियासतें हैं उन्होंने ब्रिटिश सत्ता को अँगूठा दिखा दिया। हुँजा के राजा ने कह दिया—मैं इन टुच्चे अँग्रेज़ों को क्या समझूँ? मेरे बाप-दादे सिकन्दर और सिकन्दर की सन्तानें थीं। गिलगिट काश्मीर की एक रियासत का केन्द्रस्थल था। यहाँ की फ़ौज बहुत ज़बरदस्त और योग्य समझी जाती थी। तभी सन् १८८८ ई० में कंजूतियों ने काश्मीर चाल्ट नामक क़िले को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। और उन्हीं दिनों आग में घी डालने के लिये रूसी अधिकारियों न दो ब्रिटिश अफ़सरों को जो पामीर का निरीक्षण कर रहे थे, बन्दी बना लिया। तीसरी आहुति यह पड़ी कि कंजूतियों के उपद्रव इतने बढ़े, कि व्यापारियों और बटोहियों का रास्ता चलना मुश्किल हो गया। जान और माल की बलि कंजूतियों के छुरों पर चढ़ने लगी। सरकार ने हुँजा के राजा के पास खबर भेजी कि अपनी प्रजा को शान्त रखे। लेकिन राजसी उत्तर मिला—"मेरे और सिकन्दर जैसे महाराजा न तो किसी की सत्ता को मानते हैं और न सम्मनों पर भागते फिरते हैं।' इस तिरस्कार का उत्तर परवशता थी। बिल्ट के लिये फ़ौजें भेजी जाने लगीं। नागर के रास्ते पर बिल्ट का यह क़िला था। सभी रास्तों पर पत्थरों की शिलायें अड़ा दी गई थीं। पत्थरों की वर्षा देखकर अच्छे अच्छे योद्धाओं के अरमान ढीले पड़ जाते थे। पहाड़ी बन्दूकें टाँयफिस्स करके रह जाती थीं। ऐसा अजेय था वह क़िला। भयङ्कर अग्नि-वर्षा

में कूदते हुए सिपाही फाटक तक जा पहुँचे। फाटक तोड़ दिया गया और सैनिक क़िले में घुस पड़े। लेकिन हुँजा दही मठा नहीं था जो सहज ही पी लिया जाता। गुरखाओं ने आश्चर्यजनक हाथ दिखाये। सामने पत्थरों की वर्षा में मृत्यु दाँत खोले खड़ी थी। लेकिन साहस पूर्वक उन्होंने इस मृत्यु का सामना किया। उनके साथियों ने दाँतों तले उँगली दबाकर देखा कि ये मौत से लड़ने वाले, हथेली पर प्राण रखे हुए बढ़े ही जा रहे हैं—बढ़े ही जा रहे हैं। यहाँ तक शत्रुओं को धकेल कर पीछे फेंक दिया गया। विजय हो गई।

पाँच वर्ष बीत चुके थे। गर्मी ठण्डी पड़ने लगी थी। जरूरी था कि आग सुलगाई जाय। कंजूतों के झगड़े को लेकर हजार हजार अफ़वाहें उड़ रही थीं। उधर तुर्की और ग्रीस में तलवारें चल रही थीं। तुर्की जीत गया। तुर्की क्या जीत गया, कबाइलियों में मानो पलीता ही लग गया। जोर से 'अल्लाहो-अकबर' का नारा उठा, जवानों ने सिरों से कफ़न बाँधने शुरू कर दिये। मुल्लाओं ने न जाने कबकी गड़ी पुस्तकें खोद निकालीं और अरबी की पुस्तकों का प्रमाण दे देकर लोगों को उभाड़ना शुरू कर दिया। एक अफ़सर को घेर लिया गया। दोपहर भर तक तो तमाशा होता रहा, ढोल ताशे बजते रहे। और उधर अफ़सर लोग नमक पी पीकर बाल पर हाथ साफ़ करते रहे। सूरज इस ओर ढला ही था कि गढ़ियाँ गरजने लगीं। पहले उन अफ़सरों का ही अभिनन्दन किया गया। कर्नल बनी बुरी तरह घायल हो गये, पर भगवान् भरोसे पड़ रहे। भला हो दसवीं सिक्ख पलटन का कि जान बचा ली नहीं तो शायद कबाइली सबका कलेऊ कर लेते। भागकर पहाड़ की ओट में शरण ली। तब कहीं राम राम कहकर जान बची।

कड़ाके की गर्मी पड़ रही थी। सर्वत्र शान्ति थी। मालकंद की श्रेणियों में, एक ओर कबाइली लम्बी ताने सो रहे थे। दूसरी ओर ब्रिटिश पल्टनें खार में पड़े पड़े चैन की बंशी बजा रही थीं। तभी सुन पड़ा कि सुदूर स्थित कबाइलियों के दल बढ़ते चले आ रहे थे। यहाँ यह खबर कानों के रास्ते अभी अफसरों के दिमागों में पहुँच ही पाई थी

कि पठान चढ़ आये। हमला कर दिया। आँम दर्रो के रास्ते लगातार दल के दल आते जा रहे थे। इधर भी छटे छटे हिन्दुस्तानियों की फ़ौज थी। रात को ही 'मार्च' बोल दिया गया। अँधेरे में कन्धे से कन्धा भिड़ाकर तलवारें और खुखरियाँ चलीं। सवेरा होने के पहले ही पहले आक्रमणकारी भागकर पहाड़ों में छिप गये। इधर इन्होंने जाना कि चलो छुट्टी मिली। दुश्मन फ़तह कर लिया। उधर बुद्धों की सड़क पर कबाइले झुण्ड के झुण्ड आ आकर इकट्ठे होने लगे। हर एक पहाड़ी से युद्ध के नारे उठने लगे। फिर आक्रमण हुआ। बड़ी गुत्थम गुत्था लड़ाई हुई। परन्तु दोनों में से किसी ने हार न मानी। कबाइली चट्टानों की तरह अड़े रहे। तभी काले कुरते पहने आ पहुँचे बनरवाले लोग। और वह भी एक दो नहीं, हज़ारों की संख्या में। इधर भी 'गाइडस' की पैदल सेना आकर थके हुए सिहाहियों की पीठ ठोंकने लगी—'शाबाश वीरो' और यह कहकर खुद भी राइफ़िलें भरलीं। नया ख़ून। नया जोश। नया युद्ध।

दूसरे दिन दोपहर तक कुछ शान्ति रही रही। पवित्र शुक्रवार था। अच्छा अवसर था। शाम होते न होते कबाइलियों ने हल्ला बोल दिया। लेकिन अधिक देर लड़ाई न चली। रात आराम से कटी। दूसरे दिन सुबह फिर नये उत्साह से हमला हुआ। नये कंठों ने ऊँचे स्वर से हाँक दी —'अल्ला हो अकबर' और दुश्मन पर टूट पड़े। भला हो उन रिटायर्ड ब्लोक्स नामक सिपाहियों का जो बचा दो, नहीं तो ४५ वीं सिक्ख पल्टन तो उसी क्षण 'वाह गुरूजी' कहते कहते चल देती। लेफ्टीनेंट रेट्रे (Lieutenant Rattray) कबाइलियों की भीड़ को चीर कर पार निकल गया। लेकिन २ अगस्त १८६७ को उस चौकी पर, जहाँ ब्लोक्स थे, और सिक्खो ने शरण ली थी, कबाइलियों ने भारी संख्या में फिर आक्रमण कर दिया। लेकिन उनकी (चौकी के सिपाहियों) सहायता के लिये उसी समय ४० खंग धारी, आ पहुँचे। लेकिन व्यर्थ। कहाँ बन्दूक और राइफ़िलें और कहाँ तलवारें? भीषण मारकाट हुई। वह तो भला हुआ कि एक सिक्ख को कुछ

सूझ आ गई जो उसने अपनी दूरबीन उठा, इधर उधर देख, मित्रों की आशा से आवाज लगादी—'बचाओ, बचाओ।' इस आवाज़ को सुनकर 'गाइडस' की घुड़सवार सेना जो तैयार खड़ी थी दौड़ पड़ी। उधर कबाइली भी पहाड़ों से मैदान में उतर आये। खूब घमासान युद्ध हुआ। कबाइली समुद्र की क्रुद्ध लहरों की तरह अँग्रेजों की फ़ौजों को निगलने के लिये चलते आ रहे थे। उसी के लेफ्टीनेंट कर्नल आर बी० एडम्स का घोड़ा मारा गया तथा और भी कई कई अफसर बुरी तरह घायल हुये। कर्नल रीड ने फिर एक बार हमला करने के लिये ललकारा। और सर बिन्डन ब्लड नई फ़ौज लेकर आ पहुँचे। सवेरे ही इन सेनाओं ने चकद्रा को छुड़ाने के लिये कूँच बोल दिया। पहला आक्रमण इधर ही से हुआ और दुश्मन (कबाइलों) को एकाएक ही जा घेरा। परिणामस्वरूप वे भाग गये। ऑमदरों पर कबाइलियों ने फिर आक्रमण किया वहाँ से उन्हें भगा दिया गया। अभी यहाँ से पूरी तरह छुट्टी भी नहीं मिली थी कि चकद्रा पर फिर धूम धड़ाका सुनाई पड़ने लगा। उधर की ओर अँग्रेजों को अपनी फौज ले जानी पड़ी। परन्तु देखा नदियों में बाढ़ आई हुई है और सब पुल टूटे पड़े हैं। सिर्फ स्वात का पुल सुरक्षित था। वहीं से होकर पहुँचा गया। किले के आसपास जो कबाइलियों की फ़ौजें इकट्ठी हो गई थीं उन्हें छितरा दिया गया। घुड़सवार सेना ने पीछा किया तो पठार को दूसरे छोर तक पहुँचा के छोड़ा। चकद्रा की लड़ाई का यह एक सप्ताह बहुत कठिनाई से बीता था। सिपाही थक गये थे। नुक़सान भी बहुत भारी हुआ था। मुल्लाओं का दिया हुआ आशीर्वाद का कवच कुछ काम न आया। कोई १२,००० कबाइलों की जाने चली गईं।

इतनी मार खाने से बाद अब भारत सरकार चेत गई थी। नये उत्साह से सेनायें इकट्ठी होने लगीं। इँगलैण्ड से भर भरकर योद्धा आने लगे। जो लोग बाहर घूमने गये थे वे लौट आये। उधर मालकंद में कबाइले अब भी दम भर रहे थे दुश्मन की तलवार को सुनकर

उन्होंने भी अपनी राइफिलें उठा लीं। मज़हब की बात थी । कबाइलों ने क़दम पीछे हटाना नहीं सीखा था। अफ़सरों का यह जानते देर न लगी कि भारी लड़ाई अब शुरू होने वाली है । उधर काबुल का अमीर भी ब्रिटिश सरकार की आफ़त और घबराहट देखकर मुसकरा रहा था। अमीर के अफ़सर और भी जले पर नमक छिड़क रहे थे। हथियारों का व्यापार अफ़ग़ानिस्तान में ज़ोर पकड़ने लगा। कबाइली अमीर की सहायता का मुँह देख रहे थे। मीस-वैक्टोरिया के जो गाँव थे उन पर एक अपूर्व नाटक खेला जा रहा था। जनरल ब्लड स्वात की घाटी की ओर अपनी सेना लेकर चला और 'स्वात के फाटक' लंडकी दर्रे तक आ पहुँचा। प्राचीन अवशेष खंडहरों में कबाइलियों की राइफिलें छिप कर बैठ गईं। लेकिन जब इन फौजों ने आक्रमण किया तो उन्हें भागते ही बना। गाइडस की घुड़ सवार सेना ने शत्रु का पीछा किया। लेकिन वे भी फँस गये। तीन अफ़सर मारे गये । दूर दूर से कबाइली लोग आकर एकत्रित होने लगे। एक दिन जहाँ 'बुद्धं शरणं गच्छामि ; संघं शरणं गच्छामि, और धम्मं शरणं गच्छामि से शान्त स्वर उच्चरित होते थे वहीं आज राइफिलें गरज रहीं थीं। आज वहाँ इसलाम की तलवार का ज़ोर था ।

पेशावर में एक नया उपद्रव उठकर खड़ा हुआ । इसे देखकर अफ़सरों के छक्के छूट गये। । काबुल नदी के पार पेशावर के उत्तर शबकादर के किले की चर्चा हम कर आये हैं । उन्हीं दिनों मोहमंदों की पहाड़ियों में कुछ ऊधम शुरू हुआ। लेकिन उस पर न तो सरकार ने और न सैनिक अफसर ने ही कोई ध्यान दिया। कबाइलियों ने सीमा पार कर किले पर हमला कर दिया। वहाँ पचासवीं सीमान्त फ़ौजी पुलिस (Fifty Border Military Police) का अड्डा था । उनकी सहायता के लिये कर्नल बून को भेजा गया। परन्तु कोई खास लड़ाई नहीं हुई । इन्हें देखते ही मोहमंद भाग गये । थकी पल्टनों ने आराम की एक साँस ली । लेकिन कबाइलों की शक्ति बढ़ती ही जा रही थी। इसलिये अन्त में तीसवीं पंजाबी

पल्टन भेजी गई। राईफिलें दहाड़ उठीं। बन्दूकें चल पड़ीं। युद्ध समाप्त हो गया। कबाइली ऐसे भागे कि उनको हवा भी नहीं मिल सकी।

उपद्रवों का रोग फैल गया था और वह भी खून का। मोहमन्दों से अफरीदियों में फैल गया। शबकादर ने ख़ैबर का नम्बर लगा था। जरूरी यह था कि पहले मोहमन्दों का पूरा पूरा फैसला कर दिया जाय। इन उपद्रवियों को दण्ड देने के लिये जनरल एलिस और जनरल ब्लड चले। वुडहाउस की अध्यक्षता में जो फौज थी वह सीमा लाँघकर आगे चली। बजौर की आग अभी पूरी तरह शान्त नहीं हुई थी। इनमें से बहुतों ने मालकंद के आक्रमण में भी भाग लिया था। लौटती हुई फौजों पर मोहमन्दों ने हमला बोल दिया। वुडहाउस बुरी तरह घायल हुआ था। कबाइली जान पर खेलने को तैयार थे। दूसरे दिन घुड़सवार सेना ने देखा कि मौत सामने खड़ी थी, बचने का मार्ग नहीं था। तलवारें और भाले चले। २९ सितम्बर १८९७ को जाकर मोहमन्द पहाड़ों में अँग्रेजी फौज को शरण मिल सकी। मार्ग भी मिला। फौजों ने जाकर मैंडगुल्ला के गाँव में आग लगादी। कबाइलियों की रक्षक गढ़ियें तहस-नहस कर डाली गईं। कुछ समय के लिये शान्ति होगई थी।

अब सरकार ने एक निश्चित योजना बनाकर उस पर चलने का निर्णय किया। सोचा गया कि पहले अफरीदियों से निब्टलें। और बनरवालों को मनमानी करने के लिये एक ओर छोड़ दिया गया। पेशावर डिवीजन पर उपद्रवी कबाइलियों का आतंक बढ़ता जा रहा था। मुल्लाओं ने कलम लगाई थी, और वे ही पानी दे देकर आतंक के नये वृक्ष को सींच रहे थे। और मुल्ला कोई अहिंसाव्रती महात्मा गांधी या खान अब्दुल गफ्फार ख़ाँ तो हैं नहीं जो जब मन में आई उठाकर जेल में ठूँस दिये। इन मुल्ला नामधारियों की करतूतों की कुछ चर्चा पिछले पृष्ठों में कर आये हैं। आज जो पाकिस्तान के नाम से

भारत से खण्ड किये जा रहे हैं उसके कर्त्ता ये नई फैशन वाले मुल्ले ही हैं। शान्त लोगों को लड़ाना मुल्लाओं की रोजी है। अभी तक अफरीदी मजे से ब्रिटिश सेना में थे और खैबर की रक्षा करने के लिये उन्हें खूब भत्ते मिल रहे थे कि मुल्लाओं की खोपड़ी में खुजली मची। लन्दन के किसी सैयद अकबर ने पुकार मचाई—इसलाम खतरे में है और आग अफगान की पहाड़ियों तक जा पहुँची। लेकिन सरकार ने झगड़े से बचने के लिये हज़ार हजार कोशिशें कीं। यहाँ तक कि सर जार्ज मैकमन के शब्दों में—

"ज्यों ही खबर सुन पड़ी कि उत्तेजना खैबर के कबीलों में भी फैलने लगी है त्यों ही सरकार ने (इसे दबाने के लिये) बड़ी सरगर्मी से कोशिशें शुरू करदीं। अपने इस प्रयत्न में कि अफरीदियों से लड़ाई न छिड़ जाय, सरकार ने अपने को मनुष्य संसार के सामने उपहास्पद बना लिया। और वह भी तब जब चूहे भी आँखें नटेर रहे थे।"*

विद्रोह बड़ी तेजी के साथ बढ़ता जा रहा था। अगर किसी ने इन विद्रोहियों को समझाने की कोशिश भी की तो उन्हें चुपकर दिया। उस समय खैबर में 'खैबर राइफिल्स' नामक फौज थी। पेशावर ही एक ऐसी पास की जगह थी जहाँ से फौज की सहायता की जा सकती थी। लेकिन पेशावर की फौज थी अफरीदियों की। उनसे सहायता की आशा? राम राम। वे भी बिगड़ते दीख रहे थे। इसलिये कैप्टिन बार्टन की खैबर राइफिल्स अकेली ही लड़ती रही। लेकिन कैप्टिन बार्टन के मुँह पर कालिख पुत गई। चौकी पर कबाइलों ने आग लगा दी। सारे अभिमान क्षण में ध्वस्त हो गये।

---

* "When news were received that the excitement was spreading with Khyber tribes, the Government of India showed very great concern, and in the desire to avoid an Afridi War, succeeded in making itself on object of derision to the whole world of men, while even the mice shouted scorn."

Sir George Macmumn.

यहाँ से आगे चलकर तीरा में भी आग भड़कनी शुरू हो गई। तीरा अफ़रीदियों के दक्षिण में एक पहाड़ी प्रदेश है। आज भी वहाँ सिक्खों का छोटा सा दुर्ग उस विजय की याद दिलाता है जो सिक्ख-राज्य संस्थापक थी। मीरनजाई के उत्तर में समाना का पहाड़ी सिल-सिला है। उस समय कोहाट ही ऐसा स्थान था जहाँ कुछ अच्छी फ़ौज थी। खैबर के दक्षिण फिर वह बेढङ्गा भूमि भाग था। कुर्रम के मुसलमान शिया मत के अनुयायी थे और साधारणतः शान्त एवं विश्वसनीय थे। परन्तु कुछ लोगों के कारण एक लश्कर बन गया था। इस लश्कर ने मीरनजाई प्रान्त में घुसकर चौकियों पर अधिकार कर लिया। कोहाट पर भी आक्रमण होने का डर था कि लड्डा के किले पर भीषण आक्रमण हुआ। फ़ौजों को भागते ही बना। जाकर किले में शरण ली। तभी उनकी रक्षा और सहायता के लिये पचास 'लेवी' आ गये। ये बड़ी वीरता और उत्साह से लड़े। यहाँ से भी भागकर उपद्रवियों ने गुलिस्ताँ के चारों ओर घेरा डाल दिया। सारागढ़ी के आत्म-रक्षकों को अफ़रीदियों के हाथों करारी मार खानी पड़ी। जब बदला लेने का समय आया तो अफ़रीदी पहाड़ों में ऐसे ग़ायब हुए कि खोजे नहीं मिले। स्थानीय जातियों ने शान्ति करली। लेकिन जीत के बावजूद भी आर्थिक दृष्टि से सरकार की भारी हार हुई थी। लार्ड किचनर ने अपनी सेना को नये ढङ्ग से तैयार करने की सोची।

सीमा प्रान्त का इधर का इतिहास सच पूछा जाय तो ब्रिटिश सरकार की दुर्गतियों से भरा पड़ा है। अभी एक जंजाल से नहीं छूटे थे कि दूसरा सामने खड़ा है। काबुल खेल की ठीक दूसरी तरफ़ का जो प्रदेश है वह ग़ैरक़ानूनी भगोड़ों और अन्य बदमाशों का अड्डा है। उस समय सैलगी नामक एक महादुष्ट व्यक्ति उनका नेता था। इन पर अधि-कार स्थापित करने के लिये 'ब्लैंको ह्वाइट' (Blanco White) एक सेना लेकर चला। वह उनके देश में बीचोंबीच वहाँ तक चला गया जहाँ उनका क़िला था। इस पर शत्रुओं की एक घुड़सवार पल्टन ने ब्लैंको के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन सैलिगी अटूट था। उसे झुकाना

कठिन है। इतने ही से सन्तोष मानकर राजनैतिक अफ़सर (Political Officer) डोनल्ड ने क्षणिक सन्धि करली। लेकिन शर्तें व्यर्थ थीं। उपद्रव शान्त नहीं हो सके। इसलिये खुलकर युद्ध आरम्भ करना पड़ा। ज़मीन पहाड़ी थी और थी दलदली। युद्ध-कठिनाइयों का क्या कहना। इस छोटी सी लड़ाई में कई अफ़सरों की जानें चलीं गईं। लेकिन विजय हो गई। सैलगी मृत्यु की जड़ता में अकड़कर पत्थर का हो गया था। मलबे के नीचे से जब उसका शव निकाला गया तो उसकी बत्तीसी जकड़ी हुई थी, राइफ़िल की पकड़ इतनी मज़बूत थी कि दो आदमियों के छुड़ाये मुश्किल से छूटी।

सन् १९१८ ई० में भारत सरकार ने इन आपत्तियों से बचने के लिये मार्ग की खोज की। पहले तो रमजम में एक फ़ौजी चौकी बनाई जो अपनी केन्द्रीय स्थिति के कारण कबीलों पर अधिकार बनाये रखने के लिये समर्थ मानी जाती थी। दूसरा काम सड़क बनाने का था। एक ३० मील लम्बी सड़क बनाई जिससे यातायात में सुविधा हो। पाठक देखेंगे कि अनेक छुटपुट झगड़े इन सड़कों के कारण भी हुये थे।

वज़ीरिस्तान की चर्चा हम अनेक स्थानों पर कर चुके हैं। और इस परिच्छेद के अन्तर्गत भी देख चुके हैं कि वज़ीरी लोग ब्रिटिश सरकार के बड़े कट्टर शत्रु रहे हैं। महसूद और वज़ीरी दोनों ही भारी विपत्तियाँ ढाते रहे हैं। सन् १९१९ तक अनेक आक्रमण हुए थे और अनेक सैनिक अफ़सरों की हत्यायें हो चुकी थीं।

पिछली सरकारी रिपोर्ट से पाठक सीमा प्रान्त में १९२२ ई० तक होने वाली हलचलों का विवरण पा चुके हैं। उसके पश्चात हमने प्रमुख घटनाओं का विवरण थोड़े स्पष्टीकरण के लिए कर दिया था। अब फिर सन् १९२४ से आगे तक की हलचलों का विवरण हम पाठकों के सम्मुख रखते हैं। इसमें से भी अधिकांश सरकारी रिपोर्ट पर आश्रित है।

सन् १९२४—१९२५ तक

सन् १९२४ की साल सीमा प्रान्त के इतिहास में एक विशेष दुर्घटना की साल थी। पाठक पिछले विवरणों से जान चुके हैं कि सन् १९२३

ई० तक जितने भी उपद्रव और आक्रमण हुये थे वे राजनैतिक कठिनाइयों के कारण थे और स्वभावतः ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ थे। सन् १६२४ में प्रथम बार कोहाट में साम्प्रदायिक दुर्घटना घटी। बात बहुत साधारण थी। किसी हिन्दू स्त्री को पकड़कर हिन्दू से मुसलमान बना लिया गया। बहुत सम्भव था कि मामला शान्त हो जाता और हिन्दुओं को एक स्त्री की हानि होती तथा मुसलमानों को एक स्त्री का लाभ। परन्तु दोनों ही जातियों के जो लड़ाकू पेशा जीव होते हैं वे कैसे मान जाते। लोगों को खूब भड़काया। इसका नतीजा हुआ कि जैसा आज तक कभी नहीं हुआ था वैसी एक अति उग्र साम्प्रदायिक सिर फुटौवल हुई। दोनों पक्षों की भारी धन-जन हानि हुई। अगर यह हानि होकर ही शान्ति हो जाती तो भी खैर थी। सबसे बड़ी हानि तो यह हुई कि लोगों के दिल में एक दरार पड़ गई। वह क्या आज तक भरी है? स्थाई जिलों में साम्प्रदायिक दंगे की नींव उस दिन पड़ी थी। हालाँकि आजाद कबाइलों के देश में अभी यह इतनी साफ़ साफ़ नहीं थी। लेकिन एक बात आश्चर्य की है कि सरकारी रिपोर्ट में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

सन् १९२५—२६ तक

कोहाट का यह साम्प्रदायिक दंगा समाप्त हुआ कि डेरा इस्माइल खाँ में एक अजीब ही साम्प्रदायिक स्थिति पैदा हो गई। एकाएक ही एक दिन जगने पर लोगों ने देखा कि सारे शहर पर आतङ्ककारी पर्चे लगे हुये हैं। लोगों के मन में डर पैदा हो गया। और मजा यह कि इस डर की दवा भी नहीं हो सकती थी। कारण कि पर्चे गुमनाम थे। एक दूसरे दिन और भी आश्चर्य से जब लोग हड़बड़ा कर आँख मलते हुये उठे तो देखा जगह-जगह पर धुएँ के बादल उठ रहे हैं। किसी ने आग लगा दी थी। अपराधियों का फिर भी कोई पता नहीं लग सका। इस अनायास दुर्घटनाओं से हिन्दुओं में आतङ्क फैल गया। यद्यपि फिर हाल ही कोई ऐसी बड़ी दुर्घटना नहीं हुई परन्तु लोगों के दिलों में कटुता बनी रही। बड़ी अवश्य नहीं हुई परन्तु कुछ छोटी दुर्घटनाओं और

अफ़वाहों ने सिक्खों के दिलों में भी हलचल मचा दी, जिसका परिणाम और चाहे जो हुआ हो परन्तु एक बड़ी हानि यह हुई कि बहुत दिनों तक राजनैतिक एकता मिट गई। अब हिन्दू और मुसलमानों में से हर एक के दो शत्रु थे, एक तो अँग्रेज़ और दूसरा प्रतिपक्षी जातिवाला यानी हिन्दुओं के लिए मुसलमान और मुसलमानों के लिये हिन्दू।

सन् १९२६—२७ तक

इस वर्ष पेशावर में रँगीले रसूल का आन्दोलन चला। विश्वास यह किया जाता है कि उसके आन्दोलन का ही यह परिणाम था कि ख़ैबर की एजेन्सी से कुछ हिन्दुओं को निकाल दिया गया। हालाँकि पिछली विपत्तियों की भाँति यह भी अधिक दिन नहीं चली, परन्तु इसका भी परिणाम वही हुआ जो डेरा इस्माइल ख़ाँ के झगड़े का हुआ था। यानी हिन्दू-मुसलमानों और सिक्खों के बीच ऐसा मनमुटाव पड़ा, ऐसी कटुता उत्पन्न हुई कि बहुत दिनों तक यह तीनों मिलकर कभी राष्ट्रीय युद्ध में आगे नहीं बढ़े। अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग होता रहा। लेकिन पाठकों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि ख़ैबर एजेन्सी को छोड़कर बाक़ी सब कबीलों में हिन्दू और मुसलमान उसी पुरानी शान्ति और मैत्री भाव से रहते रहे। उनके व्यवहार में कोई परिवर्त्तन नहीं आया। सिक्ख और हिन्दू जो अत्यन्त अल्प संख्या में थे आराम से रहते आये और मुसलमान उनसे पहले जैसा ही व्यवहार करते रहे।

सन् १९२८—२९ तक

इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि सन् १९२८ ई० तक हिन्दुस्तान में भी साम्प्रदायिक दंगे हो उठे थे। और वह अब अचम्भे की चीज़ नहीं रह गई थी। लोग अभ्यस्त हो चुके थे। इसके साथ ही साथ राजनैतिक आन्दोलन भी शुरू हो गये थे और सन् १९१९ में जो दमनचक्र चला था उसे हुये बहुत दिन बीत चुके थे। पुनर्जीवन आरम्भ हो गया था। नवजवान मैदान में उतर रहे थे। ये दिन भगतसिंह और

उसके साथियों के थे। सन् १९२८—२९ में और कोई भी महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी। हाँ १९२९ में जब अफ़ग़ानिस्तान के राजा अमानुल्ला का पतन हुआ तो शेष भारत की तरह सीमा प्रान्त में लोगों को दुःख हुआ। हलचलों के नाम पर विशेष महत्वपूर्ण दुर्घटना नहीं घटी।

सन् १९२९—३० तक

यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि हमने सीमा प्रान्त के राजनैतिक विकास की चर्चा यहाँ नहीं की है। इन पृष्ठों में अभी तक केवल उन झगड़ों का विवरण है जो या तो ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ थे या किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध। राजनैतिक विकास की चर्चा हमें विस्तार के साथ अन्यत्र करनी है।

अफ़सर लोग अनुभव कर रहे थे कि शीघ्र ही तूफ़ान आयेगा। अब की बार अनेक कारण उपस्थित हो गये थे। दैवी प्रकोप था कि फ़सल बुरी तरह खराब थी, भारी आर्थिक सङ्कट उपस्थित था। साथ ही सड़क बनाने का काम भी अब समाप्त हो चुका था, जिसके परिणाम-स्वरूप जो लोग सड़कों के काम में लगे हुये थे वे बेकार हो गये और लोग कृषि की ओर दौड़ पड़े। नये जवानों का ख़ून उबल रहा था, वे युद्ध चाहते थे। इसी समय भारतीय आन्दोलन भी चल रहा था और ख़ान अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ के ख़ुदाई ख़िदमतगार (Servants of God) भी तैयार हो रहे थे। उधर पेशावर में नये रंग दीख रहे थे। पेशावर के चारों ओर हज़ारों की संख्या में आ आकर अफरीदी बन्दूकधारी इकट्ठे हो रहे थे। जून का महीना था। कुछ समय बाद दिल्ली पैक्ट जिसे गाँधी-इरविन-पैक्ट के नाम से घोषित किया गया है हुआ। सीमा प्रान्त पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। पठानों ने समझा कि ब्रिटिश सरकार ने काँग्रेस को राज्य अधिकार सौंप दिये हैं। लेकिन आश्चर्य यही है कि कोई उपद्रव नहीं हुआ। आग धुँधुआ कर ही रह गई। लौ उठी नहीं।

सन् १९३०—३१ तक

इस वर्ष सारा सीमा प्रान्त काँग्रेसी आन्दोलन की तरङ्गों में लहरा

रहा था। स्थान स्थान पर आन्दोलन हुए और अन्य कार्रवाइयाँ जो काँग्रेस ने निश्चित की थीं। इनका विवरण हम अन्यत्र देंगे। हलचलों में पहली अगस्त में दीख पड़ी। मुल्ला फज़ल क़ादिर बन्नू जिले के हाथीखेल में निरन्तर ऊधम और उपद्रव करता जा रहा था। फलतः एक दिन सरकारी फ़ौजों और उसके साथियों में मुठभेड़ हो गई। 'अभी इनका निपटारा भी नहीं हुआ था कि पेशावर के गैरक़ानूनी भगोड़ों की सहायता से अफ़रीदियों ने एक लश्कर सजा कर तुरंगज़ई के हाजी की अध्यक्षता में आक्रमण कर दिया। जून का महीना था। अन्त में दोनों को मारकर भगा दिया।' यह सरकारी रिपोर्ट के आधार पर कहा जाता है। अगस्त के महीने में फिर अफ़रीदी आँखें चढ़ाये दीख पड़े। डर यह था कि कहीं उरकज़ाई और मोहमंद भी उनसे न मिल जायँ। यह परिस्थिति देखकर पेशावर ज़िले में मार्शल ला जारी कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप धीरे धीरे स्थित वश में आ गई और ऊधम शान्त होने लगा।

सन् १९३१—३२ तक

इस वर्ष भी पिछली सालों की तरह राजनैतिक आन्दोलन चलता रहा। हलचलों के अन्तर्गत होने वाली इस वर्ष की घटना का उल्लेख करने के पूर्व यह बता देना उचित होगा कि अब हलचलें एक प्रकार से राजनैतिक आन्दोलन के ही अन्तर्गत आ जाती हैं। पिछली वर्ष तुरंग-ज़ई के हाजी का आक्रमण वस्तुतः पठानों की जाग्रति का फल था। आगे से हलचलों के अन्तर्गत हम उन्हीं का विशेष उल्लेख करेंगे जो या तो साम्प्रदायिक हैं या कबाइलों के किसी जातीय असन्तोष के कारण हैं। इस वर्ष अगस्त माह में होने वाली हलचल साम्प्रदायिक दंगा थी। एकाएक ही डेरा इस्माइल खाँ में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। सरकारी रिपोर्ट में इसका उल्लेख और विवरण इस प्रकार किया गया है।

"अगस्त माह में, डेरा इस्माइल खाँ के भाग्य में ही यह लिखा था कि वह (लोगों को) प्रान्त के इतिहास में होने वाले साम्प्रदायिक झगड़ों में सबसे अधिक जबरदस्त झगड़े का दृश्य दिखाए। १२ अगस्त

को शहर मे सबेरे नौ बजे एक हिन्दू दूकानदार और मुसलिम ग्राहक में साधारण सा झगड़ा हो गया जिसमे कहा जाता है कि दूकानदार ने पैगम्बर साहब को गाली दे दी। जरा-सी देर में यह गाली-गलौज बड़ी जल्दी एक भारी साम्प्रदायिक दंगे में परिणत हो गई और आग दूर दूर तक फैल गई। दो या शायद उससे भी अधिक हिन्दू और दो मुसलमान इस झगड़े में मारे गये और दोनों ही तरफ के बहुत से लोग घायल हुए।"

सन् १९३२ के बाद

गाँधी-इरविन-पेक्ट के कारण पठानों में जो आग धुँधिया रही थी वह आकर सन् १९३६ में सुलगी। पठान सरदारों ने खसरोल की घाटी तक सड़क बनना स्वीकार कर लिया था। और तभी १९३५ ई० में इसलाम बीबी का बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। इसका विवरण हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध के अन्तर्गत हम कर आए हैं। जब कुमारी रामकौर इसलाम बीबी बना ली गईं तो मामला कचहरी में मुकद्दमा बनकर गया। मुसलमानों ने एक बड़ा जलूस निकाला। इसका अप्रत्यक्ष उद्देश्य यह था कि न्यायाधीश के हृदय में डर पैदा कर दिया जाय ताकि फैसला हमारे पक्ष में हो। लेकिन जब उस जुलूस के किए कुछ न हुआ तो मुसलमानों ने बाहरी सहायता माँगी और एक लश्कर ईपी के फकीर की अध्यक्षता में आया। ये लोग बन्नू की सीमा में आ-आकर इकट्ठे होने लगे। तब किसी प्रकार इस लश्कर को भगा दिया गया।

२५ नवम्बर १९३६ को दो पल्टनें टोरीखेल की घाटी में उपद्रवियों को भय दिखाकर शान्त करने के लिये भेजी गईं। अभी ये घर से निकली ही थीं कि कबाइलियों की बन्दूकें आ पहुँचीं। खूब लड़ाई हुई। उन्नीस आदमी मारे गये जिनमें दो ब्रिटिश अफसर भी थे। साथ ही १०२ आदमी घायल भी हुए। इसी बीच रामकौर उर्फ इसलाम बीबी उसके माँ-बाप को लौटा दी गई। ईपी का फकीर न तो पकड़ा ही जा सका और न उसे भगाया ही जा सका। वह भागकर अपनी आरसल-

कोट की गुफा में छिपकर बैठ गया। यहाँ ब्रिटिश फौजों की पहुँच नहीं थी। इस समय तक अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह बहुत दूर दूर तक फैल गया था। फकीर के काम चलते रहे। पठान शान्ति नहीं चाहता। उसके लिये शान्ति आलस सा है। इसलाम खतरे में था। नया ख़ून लहरें मार रहा था। ६ फरवरी १६३७ को महसूदों ने कैप्टिन कैओघ की हत्या करदी। कैप्टिन कैओघ स्काउटों के दल का अफ़सर था। इसके बाद स्थिति और भी बिगड़ती गई। स्त्रियाँ, बच्चे, भगाए गए, घरों में आग लगा दी गई, भेड़-बकरियाँ और अन्य पालतू पशु चुराये जाने लगे। रास्ते में जाती लारियाँ लूट ली जातीं। अन्त में इस सबसे तङ्ग आकर सरकार ने ४०,००० सिपाहियों की एक सेना वज़ीरिस्तान में भेजी। बड़ी जबरदस्त लड़ाई के बाद जाकर कहीं ३ जून १६३७ को टोरीखेल शान्त हुये। भारी जन-हानि हुई। कोई १६३ आदमी खेत रहे।

टोरी खेलों को दबा दिया गया था परन्तु फ़क़ीर अब भी स्वतन्त्र था और लोगों को लड़ने के लिये भड़का रहा था। उसके घर और अड्डे पर बम्ब बरसाये गये, आग लगाई गईं, लेकिन वह हाथ नहीं आया। वह वहाँ से उठकर डूरेण्ड सीमा की ओर चला गया। ईपी के फ़क़ीर का एक लेफ़्टीनेण्ट था शेरअली। उसने भी खासा उपद्रव मचा रक्खा था। उसके मारे सरकार की नाकों में दम थी। कोहाट का हथियार बनाने वाला कारखाना बड़े ज़ोर से राइफलें ढाल रहा था और इन विद्रोहियों को देता जा रहा था। उसके पास केवल ३०० साथी थे जिन्हें लेकर वह फ़ौजी चौकियों पर आक्रमण कर देता था। उससे भी मुठभेड़ हुई। धीरे-धीरे छुटपुट झगड़े तो जल्दी ही बन्द हो गये यह लड़ाई भी सरकारी रिपोर्ट के अनुसार सन् १६३७ के दिसम्बर महीने के बीच में समाप्त हो गई। परन्तु इसका बहुत भारी खर्च पड़ा। प्रजा पर ५ लाख पौंड का बोझ आकर पड़ा। मृतक और घायलों की संख्या १००० से ऊपर थी। लेकिन फिर भी ईपी का फ़क़ीर बचा हुआ था। यहाँ लड़ाई के समझने के लिये यह कह देना उपयुक्त होगा कि क़बाइलों का युद्ध गुरिल्ला ढंग का होता था। उनकी लड़ने वाली सेना

में कभी ७०० से अधिक सिपाही नहीं थे। सड़कों को सुरक्षित रखने के लिये १०,००० सैनिक रखने पड़े। लेकिन कबाइलों के गुरिल्ला युद्धों के सामने हवाई जहाज़ और मशीनगन भी बेकार हो जाते हैं। बम्बों से पहाड़ों को गिराया जा सकता है लेकिन चोटियाँ फिर भी सुरक्षित रहती हैं।

इस परिच्छेद के अन्तर्गत हमने अन्य प्रकार के उपद्रवों के साथ ही साथ साम्प्रदायिक झगड़ों की चर्चा भी की है। इसलिये यह अंश हम समझते हैं, अधूरा ही रह जायगा यदि शहीदगंज के झगड़े का विवरण न किया गया। शहीदगंज लण्डा बाज़ार में है। झगड़ा एक मसजिद को लेकर हुआ था। यह मसजिद वर्षोंसे हिन्दू-मुस्लिम दंगों का केन्द्रस्थल रही है। यहाँ सैकड़ों हिन्दुओं का और बाद में मुसलमानों का भी ख़ून चढ़ा है। मुस्लिम शासकों ने सिक्खों को इस्लाम मज़हब मान लेने के लिए बार बार मजबूर किया और जब वे नहीं झुके तो काफ़िर समझ कर उनका बध कर दिया गया। इन मारे गए सिक्खों की संख्या कहते हैं कई हज़ार है। जिस समय सारे हिन्दुस्तान में यह साम्प्रदायिक दंगे होने शुरू हो गये तो सीमा प्रान्त भी उससे अछूता न रह सका। सिक्खों ने उस मसजिद को रातों ही रात में मसजिद से गुरुद्वारा बना दिया। मुझे याद है जब मैं छोटा था तो सिक्खों की इस वीरता का बखान बड़े गर्व के साथ किया करता था। किन्तु आज अपने बच-पन की वह भूल मालूम पड़ रही है। कितनी बड़ी भूल थी वह सिक्खों की। क्या हुआ एक मसजिद को गुरुद्वारा बना देने से। पहले तो उस पर सैकड़ों सिक्खों और मुसलमानों का ख़ून चढ़ाया गया और जब ख़ून से प्यास नहीं बुझी तो मुकद्दमा चलाया गया। मुकद्दमा प्रिवी कौन्सिल तक चला था। कहते हैं फ़ैसला हमारे पक्ष में (सिक्खों) हुआ था। बड़ी खुशियाँ मनाई गई थीं। परन्तु उन धर्म-धुरन्धरों को यह क्या मालूम था कि आज से दस साल बाद ही इस पर क्या क्या होगा। आज जो दंगे और झगड़े हो रहे हैं उनका एक कारण वह फ़ैसला भी था। यह देश का दुर्भाग्य है कि जो शक्तियाँ आपस में

मिलकर देश को और भी अधिक शक्ति सम्पन्न करने को थीं, आपस में कट कर मर गईं। इसी शहीदगंज के झगड़े की लपटें वज़ीरिस्तान में भी पहुँची। ईपी के फ़क़ीर ने वज़ीरिस्तान में झगड़ा आरम्भ किया। झगड़े की नींव को दिखाते हुए उसने घोषित किया था—

"मैं शान्ति करने के लिए तैयार हूँ"—*

१—"यदि सरकार प्रतिज्ञा करे कि वह क़ानूनी कार्यवाहियों से हमारे धार्मिक झगड़ों में हस्तक्षेप न करेगी।"

२—"यदि भगाई हुई हिन्दू लड़की जो इसलाम धर्म में परिवर्त्तित करली गई थी, उचित रीति से कर्त्तव्य समझ कर हमें लौटा दी जायगी।"

३—"यदि शहीदगंज की मसजिद फिर बनवा दी जायगी और सम्मानपूर्वक मुसलमानों को लौटा दी जायगी।"

लेकिन सन्धि न हो सकी। भारत सरकार इन शर्तों को नहीं मान सकती थी, क्योंकि वे महारानी विक्टोरिया की घोषणा से विरोध रखती थीं। परिणामतः वज़ीरिस्तान पर कोई दस हज़ार सैनिकों की एक फ़ौज लेकर आक्रमण किया गया। उसी समय सन् १९३६ में काले पहाड़ों में भी कबाइलों ने उपद्रव उठा दिया। झगड़ा सर्वथा साम्प्रदायिक था। मुसलमान चाहते थे कि बदले में एक हिन्दू मन्दिर को गिरा दिया जाय और पूरा पूरा प्रतिशोध लिया जाय।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया था। इस बीच कबाइली लोगों में उपद्रव यद्यपि बिलकुल बन्द न हो गये परन्तु युद्ध की परिस्थिति में वे कुछ शान्त ज़रूर हो गए। युद्ध समाप्त होने पर एक बार फिर ७–८

---

* यह शर्तें हम ब्राइट महोदय की पुस्तक से उद्धृत कर रहे हैं। ब्राइट महोदय की इन शर्तों पर 'उलटे-पुलटे कामा' (Inverted Commas) नहीं लगे हैं। इससे विदित होता है कि वे किसी पुस्तक की उद्धरण नहीं हैं। इससे ईपी के फ़कीर पर साम्प्रदायिक होने का दोष लगता है, पाठक लेखक का निर्णय अन्यत्र पढ़ें।

—लेखक

दिसम्बर १९४६ को झगड़ा प्रारम्भ हो गया। कबीलों ने ओघी और बहाल के गाँवों पर भीषण आक्रमण किया। इस आक्रमण में १५ हिन्दुओं की जानें गईं और दो मुसलमानों की। बाज़ारों को लूटकर आग लगा दी गई थी। इस समय तक साम्प्रदायिकता अपने सम्पूर्ण रौद्ररूप से हिन्दुस्तान में प्रकट हो चुकी थी। कहा जाता है कि एक लारी जिसमें हिन्दू ही अधिक थे, पकड़ ली गई। स्मरण रहे इसमें बच्चे और स्त्रियाँ भी बड़ी तादाद में थीं। ये लोग भागकर निकल जाना चाहते थे। परन्तु मोटर रोक ली गई और सब यात्रियों का क़त्लेआम कर दिया गया। चौदह लोग मारे गये थे जिसमें ख़ास तौर पर स्त्रियों और बच्चों को छाँट छाँट कर। अनेकों लोग घायल हुए थे जो बाद में प्राण दे बैठे। इस पर सरकार ने कुछ जुर्माने कर दिये।

और आज जो साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं उनकी कहानी बहुत दर्दनाक है। हज़ारों हिन्दुओं और सिक्खों को मार मार कर ख़त्म कर दिया गया है। उनके स्त्री बच्चों को काट काट कर उन्हीं के सामने पटका गया है। उन्हें जीवित ही मकान में बन्द करके पेट्रोल डालकर आग लगा दी गई है। बाज़ारों में अन्धाधुन्ध लूट-मार की गई है। हज़ारों व्यक्ति बेघरबार होकर दिल्ली और युक्त प्रान्त में भाग आये हैं। एक दिन जो लाखों पर बैठे आनन्द करते थे आज उन्हें चबाने के लिए चने भी नहीं हैं। आज उन्हें उन्हें धीर बँधाने वाला कोई नहीं है। ईश्वर जाने उनका क्या होगा!

सीमा प्रान्त में राष्ट्रीय जागरण

पठान स्वाधीन है। जब जब उसकी स्वाधीनता में किसी भी शक्ति ने, फिर चाहे वह सजातीय हो या विजातीय, छोटी हो या बड़ी, बाधा पहुँचाई तब तब उसने जान की बाज़ी लगाकर उसका विरोध किया और तब तक पानी नहीं पिया जब तक स्वच्छन्द जीवन न पा लिया। इसके उदाहरण और प्रमाण हमें इतिहास में भी मिलते हैं। जिन मुग़लों के साथ मिलकर दिल्ली पर आक्रमण किया था, उन्हीं का, जब वे उसकी स्वाधीनता में हस्तक्षेप करने की सोचने लगे, उसने घोर विरोध किया। तात्पर्य यह कि पठानों में जातीयता का अभिमान बहुत ऊँचा है। किन्तु यह जातीयता का भाव बहुत संकुचित रहा है। एक प्रकार से पठान हिन्दुस्तान से अलग ही रहे हैं। वे हिन्दुस्तान से अधिक अफ़ग़ानिस्तान में अपना ममत्व मानते हैं। यदि आज से चालीस वर्ष पहले की दशा का विचार किया जाय तो दीख पड़ेगा कि पठान का झुकाव अफ़ग़ानिस्तान की ओर है और यह सकारण है। अफ़ग़ानिस्तान उनका सजातीय राज्य है। इस सम्बन्ध में श्रीयुत जे० एस० ब्राइट महोदय का मत उल्लेखनीय है।

*"यदि कभी जोखों का समय आया तो कबाइली अपने को काबुल की ओर खड़ा करेंगे। भौगोलिक सीमाओं के लिये उनके दिल में कोई जगह नहीं है। काबुल की अपेक्षा दिल्ली उनके दिल और दीवाल (चौके) के अधिक निकट है। वे इसलाम के दीवाने बनकर रहना चाहते हैं। अँग्रेज़ों से उन्हें कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं है। अँग्रेज़ियत उनके लिये स्वर्ग के द्वार नहीं खोलेगी।

* "In a crisis the tribal people range themselves on the side of Kabul. They have no respect for geographically dotted lines. Kabul is nearer their hearts and hearths than Delhi. They want to play the vale of Islam champions. From the British they get no spiritual profit. It does not ensure an open gateway to heaven."

—*J. S. Bright.*

इस उद्धरण से यह बात स्पष्ट और प्रमाणित हो जाती है कि पठान एक समय हिन्दुस्तान की स्वाधीनता या पराधीनता के विषय में वही भाव और विचार रखते थे जो हिमालय पहाड़ रख सकता है। यानी वे इधर से सर्वथा उदासीन थे। यहाँ कह सकते है कि वे एक दम स्वार्थी रहे हैं। कभी कभी तो उन्होंने नये शत्रुओं को आने में सहायता भी की है। परन्तु इस सब को एक ओर छोड़ कर यही कहना पड़ता है कि सीमा प्रान्त भारत का ही अंग है। आज इसके प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जिस सच्चाई और बन्धुत्व के भाव से पठानों ने भारत की पुकार का उत्तर दिया है उससे यह प्रमाणित हो जाता है कि सीमा-प्रान्त भारत का सूबा है और पठान हिन्दुस्तानियों के (जिसमें हिन्दू और मुसलिम समान रूप से आते हैं) भाई हैं। आज जो हम स्वतंत्र सीम-प्रान्त की माँग सुन रहे हैं उससे पठान का स्वाधीनता-प्रेम ही व्यक्त होता है। वह अपने देश में किसी अन्य प्रान्तीय का राज्य क्यों चाहें? हमारे उपरोक्त कथन का प्रमाण पाठक आगे के विवरण में भी पायेंगे। किस प्रकार जातीयता के संकुचित क्षेत्र से पठान राष्ट्रीयता के खुले मैदान में आये,- इसी प्रश्न का उत्तर इन पंक्तियों में दिया जायगा।

सी० प्रा० में राष्ट्रीय जागरण की प्रथम किरण

पठानों के राष्ट्रीय जागरण का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है। मुग़ल सम्राटों ने अपने राजकाल में सीमा-प्रान्त की जातियों को बिना किसी हस्तक्षेप के रहने दिया। उन पर अपनी विजय स्थापित करने के लिये किसी ने प्रयत्न नहीं किया। धीरे धीरे जब मुग़ल राज्य का क्षय हो गया और दूसरी ओर अँग्रेजी शासन दिल्ली पर स्थापित हो गया तो पठानों की आँखें खुलीं। तब से बहुत दिनों तक पठान मुस्लिम-साम्राज्य-स्थापन के स्वप्न देखते रहे। उनकी इस भावना को शाह वली उल्लाई आन्दोलन से भी बहुत शक्ति मिली। मुसलिम साम्राज्य स्थापन की लालसा सम्पूर्ण मुसलिम संसार में बड़ी तीव्र होकर फैल रही थी। "ख़ुदामी काबा" (काबा के सेवक) नाम जैसी अनेकों

गुप्त संस्थायें सीमा प्रान्त में इस स्वप्न का मूर्त स्वरूप देने का प्रयत्न कर रही थीं। मक्का सदा से मुसलमानों का प्रेरक रहा है। उसी से सम्बन्धित होकर यह संस्थायें निरंतर कार्य करा रही थीं।

राष्ट्रीय जागरण के प्रथम चिन्ह हमें मौलवी सैयद अहमद बरेलवी की हलचलों में मिलते हैं। हम लिख आये हैं कि बरेलवी साहब शाह वली उल्लाई आन्दोलन के तीसरे इमाम (नेता) शाह मुहम्मद इसहाक़ के निश्चित किये हुये सेनाध्यक्ष थे। उनके हलचलों की चर्चा हम कर आये हैं। उनका आन्दोलन भी कुछ अंशों में उसी स्वप्न की पूर्त्ति करने का प्रयत्न था। उन्होंने अपने धार्मिकता से आपूर्ण व्यक्तित्व से मज़हबी और जातीय नारे लगाकर पठानों को संगठित किया था। उनका प्रभाव भी अत्यधिक गहरा था। कहते हैं कि बड़े बड़े मौलवी उनकी पालकी अपने कन्धे पर उठाकर चलते थे।

परन्तु यह आन्दोलन अपनी ही भूल से आपस में ही टकरा कर टूट गया। ज़रा सी भूल ने सारे अरमान भूमिसात् कर दिये। यह आन्दोलन सीमा-प्रान्त के ब्रिटिश राज्य में मिलाये जाने के पूर्व से प्रारम्भ होकर पिछली शताब्दी की सातवीं दशाब्दी तक चला था। रिपोर्ट का विवरण पढ़ते समय पाठक अनुभव करेंगे कि इस आन्दोलन के मूल में भारतीयों की अकुलाहाट व्यक्त होती है। हिन्दुस्तान भी अँग्रेजों से छुटकारा पाना चाहता था। यद्यपि मूल में समानता थी परन्तु भेद इतना ही था कि जहाँ हिन्दुस्तान के आकुल प्राण सुबुक सुबुक कर रो ही सकते थे, वहाँ इन वीरों ने खुलकर लड़ाई छेड़ दी।

सी० प्रा० में रा० जा० की द्वितीय किरण

सीमाप्रान्त में अँग्रेजी-विरोधी आन्दोलन क्यों चला यह जान लेना आवश्यक है। इसका एकमात्र उत्तर यही है कि जब अँग्रेजों ने पठानों की स्वाधीनता में हस्तक्षेप करना शुरू किया तो यह सम्भव नहीं था कि पठान चुप बैठ रहता। हस्तक्षेप का पहिला निश्चित क़दम सीमा-प्रान्त को ब्रिटिश राज्य में मिलाना था। उसके विरुद्ध बहुत बड़ा असन्तोष नहीं हुआ कारण ज्यादातर कबीले एक प्रकार से आज़ाद

ही थे । किन्तु धीरे धीरे जब एक दिन [illegible]
करके उसका एक अलग शासक नियुक्त [illegible]
पठानों के लिये असह्य हो गई । इसके [illegible]
कबीलों पर आक्रमण करके उन्हें हानि की [illegible]
कार्य पर भी कबाइलों को [illegible]
असन्तोष तो स्वाभाविक था कि पठानों के साथ [illegible] ।

पठान [illegible] भिन्न, [illegible]
दुनिया में [illegible] से नहीं डरता । [illegible]
लिए यह जरूरी था कि उनके साथ दूसरा [illegible]
अंग्रेजों ने सीमा प्रान्त में शासन करना आरम्भ किया था उनकी [illegible]
कैसी थी इसका कुछ अन्दाजा पाठक नीचे के उदाहरण से लगा सकते हैं—

"(सरकार की ओर से) यह अनेक बार कहा जा चुका है कि पठान दीवाना धर्मान्ध है।' वह लगभग निरा असभ्य जानवर है। अतः यदि किसी अन्य कारण से नहीं तो कम से कम सिन्धु की घाटी में बसने वाले उसके पड़ोसियों की रक्षा की खातिर यह जरूरी है कि उसे काबू में रखा जाय। सीमा प्रान्त एक बारूदखाने की तरह है जिसमें, यह माना जाता था, कि किसी प्रकार का सुधार लाना उसी प्रकार था जैसे बारूदखाने में दियासलाई दिखाना। जिसका अटल परिणाम होता था विस्फोट।"

अब पाठक विचार कर सकते हैं कि जो शासक अपनी प्रजा के प्रति ऐसे विचार रखेगा वह कैसे शासन करेगा। शासन की दृष्टि से सीमा प्रान्त को अन्य प्रान्तों से बिल्कुल भिन्न रखा गया था। यहीं तक नहीं इस प्रान्त को भी दो भागों में बाँट कर टुकड़े टुकड़े कर दिया। यानी जिस भाग पर ब्रिटिश शासन स्थापित हो गया था उसके लोग आजाद कबाइलियों से बिल्कुल तोड़ दिये गये थे। यद्यपि उनके धर्म, भाषा, विचार, खून सब एक थे परन्तु फिर भी वे अपने भाइयों से नहीं मिल पाते थे। स्वर्गीय साहिबजादा सर अब्दुल क़य्यूम सीमा प्रान्त

(ब्रिटिश शासित भाग) और आज़ाद कबीला देश को एक चील के दो बाजू मानते थे परन्तु* अँग्रेजों ने नृशंसतापूर्वक उन बाजुओं को उखाड़ फेंका और एक बाजू पर (स्थाई जिले) मिलिटरी के अफसर बैठाकर निरंकुश शासन चलाया। अपनी निरंकुशता का प्रमाण उन्होंने 'मरडर्स आउटरेजेज़ एक्ट' (हत्यापराध क़ानून) और 'दी फ्रंटियर क्राइम्स रेगुलेशन' (सीमा प्रान्तीय अपराध क़ानून) जैसे क़ानून चला कर दिया। यह रेगुलेशन राजनैतिक दमन यन्त्र था। इसकी चालीसवीं धारा के अनुसार कोई भी आदमी, जिस पर यह शक किया जाता है कि वह स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेता है, न्यायाधीश के सामने पकड़ कर लाया जा सकता था और उससे कुछ ऐसी कड़ी शर्तों वाला बाँड भरवा लिया जाता जो प्रत्यक्ष में तो सन्देहयुक्त व्यक्ति पर नियंत्रण रखने के लिये था परन्तु परोक्ष में वह उसके गले की फाँसी बन जाता। इसके सामने न कोई अपील थी और न गवाही। परिणाम यह होता कि बहुत लोग जो जमानत नहीं जुटा पाते कम से कम तीन साल के लिये जेल में ठूँस दिये जाते। हिन्दुस्तान के लिये जब 'मिंटो मार्ले सुधारों' का तोहफा आया तो सीमा प्रान्त को उधर देखना भी गुनाह हो गया। और आगे चलकर जब 'माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' आये और हिन्दुस्तान में दुहरा शासन स्थापित हो गया तो भी सीमा प्रान्त को किसी ने पूछा भी नहीं।

राष्ट्रीय जागरण और विकास के कारणों में यह कारण शासकों की ओर से उपस्थित हुये थे। अब प्रान्त की दशा भी पहले जैसी पिछड़ी

---

*"It was repeatedly given out that the Pathan was a mad fanatic, almost a savage animal, and if for no other reason, at least for the sake of his neighbours in the Indus Valley, he must be subdued. The Frontier was like gunpowder magazine, and to introduce reforms in such a land as this, it was asserted, was like holding a match to the gunpowder—an explosion was, of course, inevnitable."

—*Abdul Qaiyum.*

न थी। इसलामिया कालेज में शिक्षाप्राप्त नवजवान नई रोशनी लेकर कार्यक्षेत्र में उतर रहे थे। और उधर हिन्दुस्तान में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रही थी। एक ओर ब्रिटिश नौकरशाही अँग्रेजी शासन का ढोल पीट रही थी और दूसरी ओर अफ़ग़ानिस्तान की सरकार ब्रिटिश-विरोधी नारों से पठानों को उत्तेजित कर रही थी। एक तरफ़ से रूसी लाल झण्डा लेकर हिन्दुस्तान की ताक में थे, दूसरी तरफ अँग्रेज उनकी जड़ उखाड़ना चाहते थे। आगे चलकर जब मुसलिम लीग का जन्म हुआ तो वह भी मैदान में अँग्रेजी लकड़ी का सहारा लेती हुई बढ़ आई। तात्पर्य यह कि सीमा प्रान्त में राष्ट्रीय उदय हुआ तो उसका रंगमंच ये शक्तियाँ तैयार कर रही थीं।

पिछले महायुद्ध और उसके बाद का समय हिन्दुस्तान की राजनीति में ज्वार का समय था। खिलाफत आन्दोलन और असहयोग आंदोलन (सन् १६१६) एक दूसरे के बाद आये, जिसके कारण हिन्दुस्तान में भारी उथल-पुथल मची और परिवर्त्तन हुये। जब सन् १६१६ में 'रौलट एक्ट' के नाम से काला क़ानून चला तो उसका भारत व्यापी विरोध किया गया। सरकार की ओर से इस विरोध का, जो शान्तिमय असहयोग था, ख़ूब नृशंसतापूर्वक दमन किया गया। संसार के इतिहास में जलियाँवाले बाग जैसी हत्याएँ कठिनाई से ढूँढ़े मिलेंगी। जलियाँवाला बाग़ उस क्रूर मनुष्य-भक्षी जनरल ओडायर का शिकार का खेल है। उसकी कहानी बहुत करुण, बहुत भयावह है। अमृतसर का वह जलियाँवाला बाग़ तो था ही सारा पंजाब भी अमानुषिक नौकर-शाही का दमनक्षेत्र बना था। जिन हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि ललनाओं का रुदन चीत्कार पंजाब से उठा उनकी गुहार या पुकार बेकार नहीं गई। सीमा प्रान्त का पठान हृदयहीन नहीं है। वह स्वयं रो पड़ा। शेष भारत के साथ लड़ने के लिए उसने भी अपने कन्धे उठा लिये। पेशावर और अन्य नगरों में हलचल मच उठी। और उस हलचल का उत्तर भी सरकार ने ठीक उसी सुन्दर ढंग से दिया जिससे

पंजाब में किया गया था। खूब लाठियाँ चलीं, विद्रोहियों की पीठें तोड़ दी गईं। बन्दूकें चलीं। अनेक भाइयों के लालों को '[illegible]' की हवा खिलाई गई। जेलों में ठूँस ठूँस कर विद्रोही और अविद्रोही भरे गये। अविद्रोही कहने में कुछ भूल नहीं होगा रही है। यदि कांग्रेसी वाले बाद की सभा में शामिल होने वाले किसी भी अंशों में विद्रोही थे तो क्या स्कूल जाने वाले कुछ बच्चे, बारह बारह वर्ष के बच्चे भी डाकू या लुटेरे हो गये थे जो उन्हें अंग्रेज की पंजाबी पुलिस ने स्कूलों से खींच खींच लाकर दिन में दो दो बार परेड कराने, सलामी देने और राजा की जय मनाने के लिए घसीटा जाता था? हालाँकि सरकार ने कुछ आज़ादी और क्रान्ति के ज्वार को रोकने की भारी कोशिशें कीं परन्तु वह उसके लिये न रुक सकी। यह सत्य है कि उस समय आन्दोलन डंडों और बन्दूकों से दबा दिया जाता था परन्तु क्या आज़ादी की भावना, त्याग की कापूर-सी धुल सकती थीं?

खिलाफत आन्दोलन उठा। तुर्की साम्राज्य का अङ्गच्छेदन देखकर सम्पूर्ण मुसलिम जगत पीड़ा से तड़पड़ा उठा। तब भला पठान, सीमा प्रान्त का पठान क्यों न उठता। स्थाई ज़िलों और कबीला प्रदेश दोनों ही में भारी असन्तोष फैल गया। सीमा प्रान्त के इतिहास में ऐसा पुरजोश असंतोष कदाचित पहली घटना थी। पिछले महायुद्ध में गिरगिट स्वभाव वाले ब्रिटिश शासकों ने मुसलमानों को (तुर्की) वचन दिया था कि जिज़रा-उल-अरब यानी अरब प्रदेश, जिसके अन्तर्गत मक्का, मदीना और जेरूसलम के पवित्र नगर आते थे, तुर्की से अलग नहीं किया जायगा। इसका तात्पर्य था कि मक्का, मदीना और जेरूसलम पर भी मुसलमानों का एकछत्र राज्य चलेगा। किन्तु जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ ब्रिटेन के शासक अपनी सारी प्रतिज्ञायें भूल गये। अरब को तुर्की से काट दिया गया। फिलस्तीन, ईराक़ और ओरदान-सीमान्त मिला दिये गये। तथा फ्रान्स को सीरिया और लेबनान देकर अँग्रेज सरकार ने अपनी मित्रता को बनाये रखने के लिये मानों रिश्वत दे दी। अरब को स्वाधीनता के जो वचन दिये गये थे वे तो मानों बच्चों

के खेल थे, अब बदला लिया, वर्षों बीत गये और बस। और फिलस्तीन यहूदी लोगों के हाथों सौंप दिया गया। सैनेयद, पूर्वी यूरोप और जर्मन आदि देशों से आ आकर यहूदी फिलस्तीन में बसने लगे। और यह किया इस बिना पर गया था कि ब्रिटेन ने, सुनते हैं, यहूदियों को भी वचन दिया था कि फिलिस्तीन उनका राष्ट्रीय प्रदेश बना दिया जायगा। यदि यह प्रतिज्ञा की गई थी तो निस्सन्देह इससे अधिक झूठ और दुरंगी चाल और कोई नहीं हो सकती कि एक राष्ट्र के सामने एक वचन दिया जाय और उससे अपना मतलब गाँठा जाय तथा फिर अँधेरे में दूसरे लोगों से पहली को तोड़कर नई प्रतिज्ञा की जाय और उससे भी अपनी अच्छी गरज की जाय। इस झूठ का परिणाम यह हुआ कि सारे देश में वह उठा जिसे इतिहास में 'खिलाफत-आन्दोलन' के नाम से हम जानते हैं। सिन्धु नदी को लाँघकर वह विद्रोह की लपट सीमा प्रान्त में भी पहुँची। सीमा प्रान्त को शेष भारत से तोड़कर अलग रखने की जो घातक नीति अँग्रेजों ने चलाने की कोशिश की थी वह भी इस आन्दोलन को नहीं रोक सकी। महात्मा गाँधी के प्रयत्नों और अली भाइयों के जोशीले व्याख्यानों का प्रभाव अटूट था।

इस अवसर को, जब हिन्दुस्तान और सीमा प्रान्त में भी हलचलें हो रही थीं, अफगान-अमीर ने स्वर्ण अवसर माना और खैबर रक्षक सेना पर आक्रमण कर दिया। लेकिन उस आक्रमण का मनोनीत प्रभाव नहीं हो सका और आक्रमण रुक गया। लेकिन वह असन्तोष तो इस आक्रमण से भी अधिक भयङ्कर था। सीमा प्रान्त के असन्तोष में एक कारण और आकर मिल गया था। यह कारण था सड़कें बनाने का। अपने देश में सड़कें बनते देखकर अफरीदी, महसूदों, वजीरियों और अन्य आजाद कबीलों में बड़ा असन्तोष उठ खड़ा हुआ। यह इसी असन्तोष का परिणाम था कि सन् १९१७ में महसूदों ने हमला कर दिया और बाद को हमले पर हमले होते चले गये। यह आक्रमण, युद्ध और दमन का काम १९१७ से लगाकर पूरे १९२४ तक चलता रहा। सन् १९२० से १९२२ का काल ब्रिटिश राज्य विस्तार का काल था,

यानी अँग्रेज आक्रमणों, कूटनीतिज्ञों और अन्य उचित-अनुचित ढंगों से कबाइलियों के देश पर अधिकार जमाते जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्त में हत्या, लूट, भगाये जाने आदि की घटनायें बहुत अधिक हो गईं। चोरी और लूट का बाजार गर्म था। सड़क बनाने का काम १९१४--१५ में प्रारम्भ हुआ था और १९२४ में आकर समाप्त हुआ। इसी बीच बेहद आक्रमण भी हुये। इससे विदित होता है कि सड़क बनाने का काम आक्रमणों में कारणरूप से मौजूद था। तात्पर्य यह कि सीमा प्रान्त में राष्ट्रीय जागरण के इस दूसरे युग में पठान बहुत जानकार हो गया था। राष्ट्रीय भावनायें अब संकुचित भावनाओं के बीच जगह बनाने लगी थीं।

इस आन्दोलन का एक और मजेदार प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव था 'हिजरत आन्दोलन'। हिन्दुस्तान को अँग्रेजी हुकूमत के कारण कुछ मुल्ला-मौलवियों ने 'दारुल हरब' करार दे दिया। इसका मतलब यह था कि अँग्रेजों का राज्य इसलाम धर्म के लिये घातक था इसलिये प्रत्येक मुसलमान को चाहिये कि या तो वह अँग्रेजों से युद्ध करें या खुद ही 'हिजरत' कर जायें यानी राज्य छोड़कर चले जायें। हुआ भी यही। हजारों मुसलमानों के मन में यह बात बैठ गई कि अँग्रेजों के राज्य में रहना पाप है। इसलिये सैकड़ों पठान परिवारों ने अपने अपने घर छोड़ दिये और ख़ैबर में होकर सीमान्त पार कर अफ़ग़ानिस्तान की ओर चलने लगे। उन्होंने अपने डेरे-तम्बू उखाड़ कर बेच दिये। सिन्धु से लेकर ख़ैबर तक गाड़ियों और ऊँटों के कारवाँ पंक्ति बाँधे चले जा रहे थे। लेकिन इन धार्मिक भिक्षुओं को अफ़ग़ानिस्तानी अफ़सरों के हाथों वह आदर-सत्कार नहीं मिला जिसकी आशा करके वे घर छोड़कर चले थे। बेचारों को हार कर उस कड़ी धूप में अपने अपने घरों पर लौटना पड़ा। इसका प्रभाव और परिणाम बहुत बुरा हुआ। सरकार को चाहिये था कि इस आन्दोलन को अपनी प्रजा की ख़ातिर उठने न देते परन्तु सरकार अपने हाथ क्यों जलाती, इसमें तो उसका लाभ ही था।

आगे की क्रान्ति का विवरण देने के पूर्व एक महत्त्वपूर्ण सूचना दे देना आवश्यक है। इस समय तक, यानी सन् १९२८ से पहले ही पहले, सीमा प्रान्त की राजनीति में अब्दुल गफ्फार खाँ का नाम सुनाई पड़ने लगा था। अब्दुल गफ्फार खाँ, जिन्हें सुविधा के लिये आगे से हम उनके राजनैतिक नाम सीमान्त गाँधी से सम्बोधित करेंगे, अब राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे थे। सन् १९२० में आन्दोलन के अन्तर्गत उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया था। यह ब्रिटिश सरकार की नादानी का समय था। सरकार समझती थी कि जहाँ जेलों के जमादारों के डंडे और जेलरों के हण्टर पीठ पर टूटे नहीं, बेचारा कैदी सारा आन्दोलन-फान्दोलन भूल जायगा। इसीलिये अपनी इसी बाल-बुद्धि के सहारे इन पठान क्रान्तिकारियों पर भी इसी शक्ति को आज-माया गया, लेकिन क्या वे सारी यंत्रणायें और अत्याचार भी उन आजादी के सैनिकों के दिल से आजादी की आग निकाल सकी हैं? जो अत्याचार और यातनाएँ उन कैदियों पर ढाई गईं वे शायद संसार के इतिहास में रोम के उस पाशवी सम्राट् नीरो के अत्याचारों ही से समानता पा सकेंगे।

सी० प्रा० में क्रान्ति की तीसरी किरण

अब राजनैतिक परिस्थितियाँ और भी अधिक उलझती जाती थीं या दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि पठान अब और भी अधिक जागरूक होते जा रहे थे। जब सन् १९२५ ई० में ख़ैबर रेलवे (Khyber Railway) बनकर तैयार हो गई और उस पर दानवी 'लोको' दौड़ने लगे, तब अफ़रीदियों के कन्धों पर नया उत्तरदायित्व आ पड़ा। अब इस रेलवे लाइन की रक्षा का भार उन्हें सौंपा गया और साथ ही उनके भत्ते भी बढ़ा दिये गए। अफ़ग़ान युद्ध में पड़ने के कारण 'ख़ैबर राइफिल्स' (Khyber Rifles) को तोड़ दिया गया था और फिर उसे सजाने की आवश्यकता नहीं समझी गई। हाँ, सरकार ने एक मेहरबानी जरूर की। हमारी ब्रिटिश सरकार की अन्य अनेकों नीतियों में एक नीति शान्तिमय-प्रवेश (Peaceful Penetration) की

रही है। इसका अर्थ है कि सरकार अधिकार ज़रूर करना चाहती है परन्तु अधिकृत को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाती। अनेक हानियों में आर्थिक हानि भी एक है। यानी यह सच है कि सरकार कबाइलियों पर अधिकार करना चाहती है परन्तु वह उन पर कोई अत्याचार या आर्थिक हानि, नहीं करना चाहती। इसी नीति को मान कर अफ़रीदियों के तमाम पुराने पापों और अत्याचारों को भुलाकर सरकार ने उन 'खैबर राइफ़िल्स' के ६०० सिपाहियों को फिर से सेना में भर्ती कर लिया। हलचलों के विवरण के अन्तर्गत हम हाजी तुरंगज़ई उनके सहयोगी और सेनाध्यक्ष सैयद अकबर, इपी के फ़कीर, महसूदों के आक्रमणों और रंगीले रसूल की उत्तेजनाओं की चर्चा कर आये हैं। आगे के विद्रोह या क्रान्ति को समझने के लिए पाठकों को यह घटनाएँ ध्यान में रखना आवश्यक हैं।

इसी समय कबाइलों में प्रारम्भिक शिक्षा का भी प्रसार होने लगा। जिज्ञासु पठान अब देश-विदेश की घटनाओं से जानकारी पाने लगे थे। अब महात्मा गाँधी और सीमान्त गाँधी के नामों से लोग परिचित होने लगे थे। सड़कों और रेल के बन जाने से और चाहे जो नुकसान हुआ हो परन्तु लाभ ज़रूर हुआ कि इन्हीं साधनों के द्वारा पठान राजनीति सीखने लगे। काँग्रेस के उत्साही प्रचारक तिरंगे झण्डे ले लेकर कबीलों में घूमने लगे। एक नया साधन सचमुच आश्चर्यजनक था। यह साधन था तुरंगज़ई के हाजी का 'ज्वाला'। हाजी ने अपनी मातृभाषा पश्तो में 'ज्वाला' नाम का यह पत्र निकाला था जो सचमुच अपने जनक की भाँति ही आग्नेय था। देशभक्ति की भावनाओं को जगाने के लिए यह अत्यन्त तीव्र साधन था। और फिर आगया रेडियो। पेशावर और दिल्ली से पश्तो में व्याख्यान और अन्य चर्चाएँ होने लगीं। हुजरों की पहली रंगत में चार चाँद लग गए। लन्दन और बर्लिन, पेरिस और न्यूयार्क उतने ही पास हो गए जितनी कि हवा है।

यह देखकर कि राजनैतिक चालबाजियों से अपरिचित पठानों को मिंटो-मार्ले और मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों से वंचित रखा गया है,

सीमा प्रान्त में काँग्रेस ने बड़ा जबरदस्त आन्दोलन उठाया। यह आन्दोलन यद्यपि समय समय पर साँप के फन की तरह कुचला गया लेकिन कहते हैं यदि साँप को बिलकुल मार न दिया जाय तो प्रायः वह जिन्दा होकर मारने वाले से बदला लेता है। कुछ ऐसी ही दशा काँग्रेस आन्दोलन की हुई। हालाँकि काँग्रेस ने अँग्रेजों से वही बदला नहीं लिया जो साँप अपने मारने वाले से लेता है, परन्तु गाँधीवादी रंग चढ़ाये वह बदला ही था। हाँ तो उस काँग्रेसी आन्दोलन का अंकुर उगा साइमन कमीशन बनकर। महाशय साइमन को विधान बनाने का काम सौंपा गया था। बेचारे बड़े उत्साह और आशा (आशा थी यश की, उँगली में खून लगाकर शहीद बनने का ढोंग था) से सीमा प्रान्त में आये, लेकिन यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि उनका कैसा उपयुक्त स्वागत हुआ। 'साइमन लौट जाओ' (Simon Go Back) का नारा हमें खूब याद है, और यह भी स्मरण है कि महाशय साइमन के आगे आगे शोक स्वरूप काले झण्डे चलते थे और मर्सिये (रुदन-गान) गाये जाते थे। जब साइमन-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई और उसके अनुसार काम हुआ तो दीख पड़ा कि यह कुछ नहीं केवल मिंटो-मार्ले सुधारों का ही दूसरा नाम था। स्मरण रहे मिंटो-मार्ले के बाद मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार आ चुके थे। इस सुधार के अनुसार विधान निर्मात्री सभा में नामजद किए हुए और चुने हुए सदस्यों की संख्या लगभग बराबर करदी गई। परन्तु चुने जाने का अधिकार केवल एक खास वर्ग को ही दिया गया। यह सदस्य बड़े बड़े खानों और जमींदारों में से ही चुने जा सकते थे साथ ही म्यूनिसपल बोर्ड और जिला बोर्डों में से भी सदस्य आ सकते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बहुसंख्यक साधारण जनता का अब भी वही चक्की पीसनी पड़ी थी इतना ही नहीं यह सभा भी एक तमाशामात्र थी। इसके अधिकार बहुत संकुचित थे। कानून और प्रबन्ध (पुलिस) में अब भी इसे कोई हक नहीं मिला था। लेकिन सरकार की आशा पूरी नहीं हो पाई। बच्चे बहलने की अपेक्षा रूठ और गये। फिर असन्तोष प्रारम्भ हो गया।

काँग्रेसी कार्यकर्त्ता छिप छिप कर हिन्दुस्तान का सन्देश सीमा प्रान्त में कबाइलियों तक पहुँचाने लगे। लोगों में खूब उत्साह दिखाई पड़ा। ईपी का फ़क़ीर तो अवसर की ताक में तैयार ही बैठा था। फौरन उठ खड़ा हुआ। परन्तु अँग्रेज़ी बमभारों ने उसे उठने नहीं दिया यह पाठक देख आये हैं।

अब हम सन् १९२९—३० में आ गये हैं। मिंटो-मार्ले जैसे साइमन रिपोर्टकृत सुधारों से निराश होकर जब न्याय की सभी आशायें भस्म हो गईं तो सीमान्त गाँधी ने नये रूप से आन्दोलन की नींव डालनी शुरू की। इस समय तक खान साहब का प्रभाव प्रान्त में और देश में भी बहुत फैल चुका था, वे प्रान्त के लोकप्रिय नेता हो चुके थे। इसलिए अवसर से लाभ उठाकर, समय की आवश्यकता समझ उन्होंने 'अफ़गान-युवक-संघ (Afghan Youth League) की नींव डाली। इसके साथ ही आज़ादी की भावी लड़ाई के लिए सैनिक तैयार करने के विचार से 'खुदाई खिदमतगार' नाम से स्वयंसेवकों का दल बनाना आरम्भ कर दिया। यह खुदाई खिदमतगार वे ही हैं जिन्हें सरकार ने प्रत्यक्ष में तो लाल पोशाक देखकर परन्तु परोक्ष में एक और भारी गुप्त मतलब गाँठने के विचार से लाल क़ुर्ती वाले (Red Shirts) कहना प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटिश सरकार का यह नया नाम देने में क्या गुप्त मतलब था? जब खान साहब का यह आन्दोलन और सैनिक-भर्ती का काम दिन दूने रात चौगुने वेग से बढ़ने लगा तो भारत सरकार की छाती ज़ोर ज़ोर से धुकुर-पुकुर करने लगी। कहते हैं चोर को ज़रा सा बच्चा भी छींक कर भगा सकता है। इसे दबाने का और कोई मार्ग न पाकर सोचा लाओ इसे बदनाम ही करदें। खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे। लाल क़ुर्ती वाले कहकर इनका सम्बन्ध रूस की लाल सेना से जोड़ दिया। उस समय रूस के प्रति सर्व साधारण के भी विचार अच्छे न थे। कहा यह गया कि अब्दुल गफ्फार ख़ाँ साहब बोलशेविक (रूसी क्रान्तिकारी) लोगों से मिल गये हैं और उन्हीं के साथ मिलकर ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध लड़ने की तैयारियाँ कर रहे थे। परन्तु वह खुदा के बन्दे दास

थे। भला उन्हें लड़ाई से क्या काम। कहना न होगा कि यह सैनिक पूरी अहिंसा के सिद्धान्त पर बनाये गये थे। उस समय अब्दुल गफ्फार खाँ साहब ने बहुत से मुसलिम नेताओं के आगे सहायता याचना का हाथ फैलाया, परन्तु सभी ने उन्हें रूखा सा उत्तर देकर टरका दिया। यहीं तक होता तो भी खैर थी परन्तु इन अपरवर्गीय लोगों ने सरकार का ही पक्ष ग्रहण किया यानी खुदाई खिदमतगारों को हर प्रकार से अनुत्साहित करने का प्रयत्न किया। अन्त में इस खुदाई खिदमतगार आन्दोलन नामक शिशु की उँगली अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने पकड़ी। महात्मा गाँधीजी अध्यक्ष थे। पठानों को सहारा मिल गया। सम्पूर्ण अशान्तिपूर्ण इतिहास में यह पहला अवसर था जब कि पठानों ने भारत की आजादी के लिए, भारत के कन्धे से कन्धा लगाकर पूर्ण अहिंसात्मक ढंग से लड़ने की प्रतिज्ञा की। यह परिवर्त्तन का नवीन केन्द्रस्थल था। इतिहास ने एक नई धारा पकड़ी। महाशय अब्दुल क़य्यूम, जो स्वयं पठान हैं, के शब्दों में—

"पठान सदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करेंगे कि यह भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ही थी जिसने दुख की घड़ियों में आकर उनकी सहायता की थी।"*

और फिर सरकार का दमनचक्र चला। चाहे जिसको धर पकड़ लिया जाता था। आधी आधी रात को सोते लोगों को जगाकर घरों की तलाशियाँ ली जातीं। यदि यह दमनचक्र गिरफ्तारियों और तलाशियों तक आकर ही समाप्त हो जाता जैसा कि कभी नहीं हुआ, तो भी खैर थी। नौकरशाही के नीच कुत्तों ने हमारी ललनाओं की इज्जत लूटने में भी सङ्कोच नहीं किया। भोली जनता जिसे किसी भी आन्दोलन से कोई सरोकार न था दिन दहाड़े न्याय के रक्षकों के द्वारा लूट ली गई।

---

* "The Pathans will for ever gratefully remember that it was the Indian National Congress which came to their help in their hour of trial."

—*Abdul Qaiyum.*

पेशावर शहर की चार खास सड़कों 'किस्साख्वानी बाज़ार' और 'गोर खत्री' में जहाँ किसी समय मुगलों का दरबार रहता था, आग लगा दी गई। जहाँ कहीं भी किसी प्रकार के जुलूस इत्यादि होते वहीं पर ख़ूब गोली चलाई जाती। लेकिन नाहर पठान! 'ख़ून का बदला ख़ून होता है' कहाँ है वह तुम्हारी टेक? लेकिन किस जादू ने तुम्हें कपिला गाय से भी अधिक सीधा कर दिया कि जो यह सारा अपमान, सारी यातनायें और अत्याचार चुपचाप पी गये? हालाँकि अपने ही लोगों ने सरकार से मिलकर अपने बन्धुओं के गले पर कटारियाँ चलाईं परन्तु पठान डिगा नहीं। यह अग्नि परीक्षा थी, उसे खरा उतरना था, खरा उतरा, सोने से कुन्दन बनकर।

सरकार को हार माननी पड़ी। जब सब हथियार बेकार हो गये तो सरकार ने एक विचित्र हथियार का प्रयोग किया। यह हथियार था मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार। सन १९३२ में सीमा प्रान्त को भी वे अधिकार मिल गये जो शेष भारत को मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों से मिले थे। ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने चुनाव का बायकाट कर दिया। लेकिन फिर भी दुहरा शासन स्थापित हो गया। सर अब्दुल क़य्यूम पहले मंत्री थे। लेकिन ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ की कीर्ति अनायास ही सुगन्ध की तरह फैलती जा रही थी। वे सीमा प्रान्त के अभिमान ('फ़ख़्रे अफ़ग़ान') हो गए थे। पठान को अपने इस नेता पर गर्व था।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों का आगे का इतिहास लिखने के पूर्व यह समझ लिया जाय कि इस सङ्गठन कार्य का उद्देश्य क्या था। यों तो पाठक देख चुके हैं कि राजनैतिक अन्याय देखकर, और उसमें अपनी हीनता का अनुभव कर इसका प्रारम्भ किया गया था। इस वाक्य का दूसरा वाक्यांश महत्त्वपूर्ण है। ख़ुदाई ख़िदमतगारों का सङ्गठन सीधे राजनैतिक अन्याय के विरुद्ध न था। राजनैतिक अन्याय हुआ ही क्यों? क्यों मिंटो-मार्ले और मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों से केवल पठानों को ही वंचित रखा गया? इस प्रश्न का उत्तर ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ ने इस प्रकार निश्चित किया—क्योंकि हम में शक्ति नहीं है, क्योंकि

तक जागरूक नहीं हैं। इसी कमी को ध्यान में रखकर श्रीमान् गाँधी ने इन खुदाई खिदमतगारों के सम्बन्ध में अब्दुल क़य्यूम साहब का मत उद्धृत करते हैं—

"अपने आरम्भ काल में लाल कुर्ती वालों का आन्दोलन विशुद्ध रूप से सामाजिक सुधारों का आन्दोलन था। इसके कार्यकर्ताओं का उद्देश्य था फूट, कलह और मारकाट, जो किसी असाध्य रोग की भाँति पठान समाज के वक्षस्थल को खा रहे थे, उखाड़कर फेंक देना। वे इसके लिए चिन्तातुर थे कि समाज में से इस्लाम विरोधी रीति-रिवाजों को, जिनमें विवाह और मृत्यु के समय पर धन का लुटाना भी है, दूर कर दिया जाये। एक ग़रीब किसान वर्ग, जिसको भूखों मरने की नौबत आ गई है, और जो महाजनों के कर्ज़ से बुरी तरह दबा हुआ है, भला कैसे इस धन की बरबादी को सहन कर सकता था। और फिर असाक्षरता का वह अभिशाप था जिसे हटाना समय की अटल पुकार थी। जिस समाज में एक बड़ी संख्या अज्ञानी और निरक्षर लोगों की हो वहाँ किसी भी प्रकार की राजनैतिक प्रजातंत्र की योजनायें सफल नहीं हो सकतीं। सन् १९२९ के अक्टूबर में एक सभा बुलाई गई थी, जिसमें समाज-सुधार की एक योजना निश्चित की गई थी। यह भी तय हुआ कि एक बड़ी सभा बुलाई जाय, जो सचमुच १८–१९ अप्रेल, १९३० ई० में हुई थी। इसी सभा में यह निश्चय हुआ था कि पठानों के बीच समाज सुधार की भावनायें फैलाने के लिये खुदाई खिदमतगारों का एक दल बनाया जाय। जिन्होंने इस दल में अपना सहयोग दिया उन्होंने प्रतिज्ञा की—

१—हम सदा खुदा का हुक्म मानेंगे।

२—हम सदा निडर और वचन तथा कर्म में अहिंसक रहेंगे।

३—हम कभी प्रशंसा या निन्दा से विचलित न होंगे।

४—हम सदा आततायियों से दुखियों की रक्षा करेंगे।

५—हम अपनी सेवा के लिए कभी कोई पुरस्कार नहीं लेंगे।*

---

*" The Red-Shirt Movement was, it is inception, purely

उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि खुदाई खिदमतगार राजनैतिक वर्ग न होकर समाज के विनम्र सेवक थे। किन्तु आज के युग में समाज और राजनीति इस अभिन्न रीति से जुड़े हुए हैं कि उनको तोड़कर एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। राजनैतिक सेवा तो समाज सेवा है ही परन्तु इसका उल्टा सदा सत्य नहीं होता। आज के युग में यह अवश्य सत्य है। सामाजिक पतन और हीनता का कारण खोजते समय राजनैतिक दिशा की ओर निरीक्षक का ध्यान आवश्यक रूप से उठ जाता है। क्यों, भारतीय असाक्षर हैं ?· इसलिये क्योंकि ब्रिटिश सरकार की चाल नहीं चाहती कि भारतीय पढ़-लिख सकें। इस

a social reform movement. Its promotors aimed at eradicating blood feuds and vendetta, which like an incurable disease were eating into the vitals of Pathan society. They were anxious to do away with un-Islamic customs, involving waste of money on marriages and deaths. An impoverished peasantry, on the brink of starvation and heavily indebted to the money-lending class, could ill-offored such wasteful expenditure. Then there was that curse of illiteracy, the removal of which was a carlying need of the time. No scheme of political democracy could be worked succesfully among a people where a majority was ignorant or illiterate. A meeting was canvened in October, 1929. A programe of social reform was chalked out. It was decided to summon a bigger meeting which was actually held on the 18th. and 19th. of April, 1930. Here it was decided to set up a volunteer corpse of khundai khidmatgars to propagate and to carry out the ideas of social reform among the Pathans. Those who joined it were pledged to obey the order of God; to be fearless and non-violent in thought and action; never to be effected by flattery or abuse, to protect the oppressed as against the oppresor; and never to accept any remuncration for service."

—*Abdul Qaiyum.*

प्रकार कहने का तात्पर्य यह कि कोई भी संस्था जो सचमुच समाज-सेवा करना चाहती है, राजनीति से हटकर नहीं चल सकती। यही कारण था कि खुदाई खिदमतगारों का आन्दोलन भी सामाजिक से राजनैतिक हो गया और आज तो उसका पहला रूप लगभग लुप्त होता आ रहा है।

अब आगे का आन्दोलन लें। इस सम्बन्ध में उचित होगा कि हम पहले सन् १९३१-३३ का विवरण देने के लिए पाठकों के सम्मुख सरकारी रिपोर्ट ही रख दें। इससे पाठकों को हमारे अगले विवरण की सत्यता की जाँच करने में सहायता मिलेगी।

"रिपोर्ट का यह साल (१९३०-३१) काँग्रेस, जिसका प्रतिनिधि इस खुदाई खिदमतगारों से सम्पन्न अफ़ग़ान-युवक-सङ्घ था, की कार्रवाइयों से बहुत अधिक प्रभावित था। २२ अप्रैल को पेशावर शहर में उपद्रव शुरू हो गये, जिन्हें फ़ौजी शक्ति से दबाकर शान्त किया गया। (लेकिन) जिसके कारण राजनैतिक असन्तोष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। यह जरूरी समझा गया कि खान अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ के साथ ही साथ सभी राजनैतिक नेताओं को एकदम गिरफ्तार कर लिया जाय। पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेरा इस्माइल खां के नगर फ़ौजी और सिविल शक्ति के हाथों में सौंप दिये गये ताकि सर्व साधारण की विषम परिस्थिति काबू में की जा सके। परिस्थिति को सँभालने के लिये १३ मई से काँग्रेस और उसकी मातहत संस्थाओं को ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिया गया। आगे के महीनों में कपड़े (विदेशी) और शराब की दूकानों पर 'पिकेटिंग' और 'बायकाट' (बहिष्कार) के रूप में इधर उधर राजनैतिक हलचलें हुई थीं। अगस्त के महीने में सरकार और फ़ज़ल क़ादिर के अनुयायियों के बीच (मुल्ला फ़ज़ल क़ादिर बन्नू ज़िले के हाथीखेल वज़ीर नामक प्रान्त में आततायी होने के लिए प्रसिद्ध होता जा रहा था) कुछ झगड़ा हो गया। पेशावर ज़िले की इस क़ानूनी अराजकता के फलस्वरूप एक भारी आक्रमण जून के महीने में एक अफ़रीदी और दूसरे तुरंगजई के हाजी के लश्कर द्वारा हुआ।

दोनों को अन्त में खदेड़कर भगा दिया गया। अगस्त के महीने में अफ़रीदी फिर एक बार (दुआबन्दी में) टूट पड़े और भय था कि कहीं उतमानज़ाई और मोहमंद भी उनसे मिल न जायें। इसलिये अगस्त माह में पेशावर ज़िले में मार्शल लॉ जारी कर दिया गया, जिसके पश्चात् असन्तोष की स्थिति में सुधार होता गया। जनवरी में मि० गाँधी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के छूट जाने से हालत फिर बिगड़ गई। मार्च का महीना लगते और दिल्ली के समझौते की शर्तों के अनुसार अब्दुल ग़फ्फार खाँ और उनके अनुयायियों के छूटते ही स्थानीय राजनीतिक जोश की बाढ़ उमड़ आई।"

इस रिपोर्ट से हमें पहली बात यह मालूम होती है कि सरकार का राजनीतिक आन्दोलनों के प्रति कैसा रुख था। दूसरी बात यह भी स्पष्ट हो जाती है कि खुदाई खिदमतगारों का संगठन अब स्थाई ज़िलों के सीमित और संकुचित दायरे में ही नहीं रह गया था, बल्कि कबीला प्रदेश में भी इसके प्रशंसक और समर्थक थे। तुरंगज़ई का हाजी और इपी का फ़क़ीर जैसी विभूतियाँ इस पर दयादृष्टि रखती थीं। हाजी (तुरंगज़ई) ने जब खुदाई खिदमतगारों के साथ दुर्व्यवहार होते देखा था तभी उन्होंने आक्रमण किया था।

अब अपनी कहें। सन् १९३०, अप्रैल ३० को खान अब्दुल ग़फ्फार खाँ को जब वे पेशावर की ओर आ रहे थे, रास्ते में पकड़ लिया गया। वहाँ से पकड़ कर उन्हें नौशेरा ले जाया गया जहाँ 'फ्रंटियर क्राइम्स रेगूलेशन' (सीमा प्रान्तीय अपराध क़ानून) की ४९ वीं धारा के अन्तर्गत उन पर मुकद्दमा चलाने का नाटक खेला गया। उन्हें तीन साल का कठोर कारावास मिला। स्मरण रहे यह कारावास दण्ड वही था जो डाकुओं, हत्या के अपराधियों और छटे हुए बदमाशों को दिया जाता है। जब अब्दुल ग़फ्फार खाँ को जेल में डाल दिया गया तो सरकार को खुलकर खेलने का अवसर मिल गया। मई के महीने में उतमनज़ाइयों को सताने के लिए एक फ़ौज भेजी गई। वीर सिपाहियों ने गाँव को चारों ओर से घेर लिया। न कोई गाँव से बाहर जा सकता

था और न बाहर से अन्दर आ सकता था। पशुओं को भी निकलने का हुक्म नहीं था। बहुत सम्भव है वे जानवर कोई हिमाकत कर बैठें। नतीजा यह हुआ कि चारे-घास के अभाव में वे भूखे मर गये। यही नहीं, अभी बहुत कुछ शेष था। श्री निसार अहमद शेरवानी ने इस सम्बन्ध में केन्द्रीय असेम्बली में एक प्रस्ताव पर बहस करते हुये कहा था—

*वे (सिपाही) उतने ही से चुप होकर नहीं बैठ रहे। उन्होंने गाँव पर चारों ओर से घेरा डालकर नाकेबन्दी करदी और जिस मकान में खुदाई खिदमतगारों का आफिस था उस पर कब्जा कर लिया। मैं यहाँ पर आनरेबुल विदेश मंत्री महोदय (जो उस समय वहाँ उपस्थित थे) के मुँह पर कहता हूँ कि उन्होंने घर पर केवल कब्जा किया हो सो ही नहीं, बल्कि उस घर में जो आदमी थे उन्हें उठा उठा कर पहली मंजिल से नीचे फेंक दिया गया। (इस पर असेम्बली के श्रोताओं ने 'शर्म-शर्म' कहकर सरकार के प्रति तिरस्कार दिखाया) वे उठाकर फेंक दिये गये थे और बहुतों ने अपनी टाँगें तोड़ लीं और अन्यों ने अपनी

* "They did not stop there, they surrounded the village and went and occupied the house in which was the office of the khudai-khidmatgars; not only occupied the house, but I say to the very face of the Honourable the Foreign Secretary, the people who were there were thrown out from the first storey ('shame'). They were thrown out and several had broken legs and others broken arms; not only that in the very presence of the Honourable the Foreign Secretary, that office was burnt to ashes (cries of 'shame' from the Congress Party benches), and yet Government members say that those khudai-khidmatgars were violent, who should be punished."

Adopted from Abdul Qayum's.
Gold and Gems of the Pathan Frontier.

आहें। यही नहीं! ठीक आनरेबुल विदेश मंत्री की नाक के नीचे वह आफिस जलाकर खाक कर दिया गया। (कॉंग्रेस पार्टी की ओर से इस पर 'शर्म-शर्म' की आवाजें आईं) वह आफिस जलाकर खाक कर दिया गया और फिर भी सरकार के (हिमायती) सदस्य कहते हैं कि खुदाई खिदमतगार हिंसक हैं उन्हें दण्ड मिलना चाहिये।"

इस हृदय स्पर्शिनी आन्तरिक करुणा से आसावित वक्तृता को सुनकर हृदयवाले दहल गये। विदेश मंत्री महाशय एच० ए० एफ० मेटकाफ (जो बाद में सर ऑबरी मेटकाफ हो गये थे) को उत्तर देना पड़ा। उन्होंने कहा था—

"मैं मंजूर करता हूँ कि उस समय सरकारी ताक़तों ने कुछ खेद-जनक धरपकड़ की थी। मैं उसे पूरी तरह मानता हूँ। और जो कुछ वहाँ हुआ उसके लिए मैं बहुत अधिक दुखी हूँ। तुरन्त ही मैं उस स्थान पर गया और आगे होने वाली मार-पीट को रोक दिया········।"*

सरकारी दमन में एक वाक्य श्री शेरवानीजी का ही और जोड़ दें।

"जून के महीने में (जब गर्मी सबसे कड़ी पड़ती है—लेखक) पलटनों ने गाँवों को घेर लिया, और लोगों को घरों से निकाल कर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने उनके गलों से भारी भारी पत्थर के टुकड़े लटकाये और हुक्म दिया कि ऊपर पहाड़ों पर ले जाओ और वहाँ ढेर बनाओ। और तुम्हारे अफ़सरों ने उनसे कहा था—'यहाँ तुम्हारे नेता की समाधि है।'"†

---

* The Foreign Secretary, Mr. H. A. F. Metcalf (who later become Sir Aubery Metcalf) rose and said; "I admit that there was some regrettable violence by Government Forces on that occasion. I quite admit that. I am extremely sorry for all that happened. I immediately went to the spot and stopped all further violence—!'

† Mr Sherwani's speech reported in volume I of the 1935 Central Assembly Debates: 'In the month of June, troops

हमें भूलना नहीं है कि यह सब अत्याचार हुए उनके साथ जिनके यहाँ ख़ून का बदला ख़ून होता है। जो मरे-गिरे नहीं हैं, जिनके विषय में मौलाना शौकतअली ने कहा था—

"इस देश के सबसे अधिक अच्छे लोग सीमा प्रान्त के वासी हैं। वे शक्तिशाली हैं, शरीर से तगड़े हैं, सुन्दर हैं और वीर हैं।"*

पिछले पृष्ठों में हम ख़ुदाई खिदमतगारों के प्रति सरकारी रुख का निर्देश एक स्थान पर कर आये हैं। सरकार ने हिये की आँखों पर पर्दा डालकर तथा चर्म-चक्षुओं को धोखा देकर इन भगवान् के दासों को (बोलशेविक) 'लाल कुर्ती' करार दे दिया। और भी क्या-क्या सदुपाय अपनी स्वार्थ पूर्त्ति के लिए किये उसकी एक झाँकी हमें महाशय बी० दास के उस व्याख्यान में मिलती है जो उन्होंने उपरोक्त प्रस्ताव उपस्थित करते समय दिया था। महाशय बी० दास ने सीमा प्रान्त के तत्कालीन चीफ कमिश्नर ५ मई सन् १९३० के एक भाषण, जो उन्होंने प्रतिक्रिया-वादी एवं परिवर्त्तन-विरोधी स्थानों के सम्मुख दिया था, का अंश उद्धृत किया था, जिससे सरकारी मनोधारा का पता चल जाता है। अंश इस प्रकार है:—

† "क्या काँग्रेस तुम्हारी भूमि सम्पत्ति, जागीर और मुआफी की

---

surrounded the villages, brought out the people and made them stand in the sultry sun. Not only that they placed heavy stones on their necks and asked them to carry them uphill, and pile them there, and your officers told them that that was the tomb of their leader.

* Maulana Shaukat Ali described—"The finest of all people in this country are the people from the Frontier Province. They are powerful; physically strong, handsome and brave."

† "Is the Congress going to have with you your landed property, Jagirs and Muafis? Is it going to protect your frontiers? Will it maintain law and order amongst the

ज़मीन तुम्हारे लिए छोड़ देगी ? (स्पष्टतः ही यहाँ काँग्रेस की ज़मींदारी-प्रथा-विरोधिनी नीति को ही अपना उल्लू सीधा करने के लिये सरकार ने हथियार बना लिया था ।—लेखक) क्या वह तुम्हारी सीमा की रक्षा कर लेगी ? क्या वह जनता में अनुशासन बनाए रख सकेगी ? अब ठीक समय आया है जब तुम्हें उस सरकार की सहायता करनी चाहिए जो सदा तुम्हारी शुभचिन्तक रही है, जिसने सदा तुम्हारे प्रति न्याय किया है ? (सुनिये) आप लोग सरकार की कौनसी सहायता कर सकते हैं ? आप लोगों को चाहिये कि काँग्रेस के स्वयंसेवक जो लाल कुर्तियाँ पहनते हैं, उन्हें अपने गाँवों में घुसने से रोक दें। वे (स्वयंसेवक) अपने को खुदाई खिदमतगार कहते हैं। लेकिन वास्तव में तो वे गाँधी के खिदमतगार हैं। वे बोलशेविकों की पोशाक पहनते हैं। वे (आपके गाँवों में) ऐसी हवा पैदा करेंगे जैसा कि आपने सुनी होगी बोलशेविकों के राज्य में है।"

इतना हमें स्वीकार करना होगा कि कमिश्नर महोदय बड़े चतुर व्यक्ति थे। ज़मींदार और पूँजीपति खानों के लिए भला रूसी साम्यवाद से बड़ा डर किसका हो सकता है ? लेकिन जो जो दोष इन स्वयंसेवकों के और काँग्रेस के मत्थे मढ़े गये हैं, उन्हें सुनकर किसी भी आदमी को

---

people ? Now it is high time for you to help the Government, which has ever been benevolent towards you and has done justice towards you. What help can you render to the Government ? You must prevent Congress volunteers wearing red jackets from entering villages. They call themselves Khudai Khidmatgars (Servants of God). But in reality they are the servants of Gandhi. They wear the dress of the Bolsheviks. They create the same atmosphere as you have heard of in the Bolshevik's Dominion."

—*Chief Commissioner of the N. W. F. P's Comminique for the Khers on 5th May 1930.*

हँसी आये बिना नहीं रहेगी। खुदाई खिदमतगार खुदा के दास थे या गाँधी के इस पर हमें कुछ नहीं कहना है। कारण गाँधी और खुदा के बीच कौन पड़े। आज तो सचमुच गाँधी करोड़ों का खुदा ही हो गया है। रहे कॉंग्रेस पर लगाये आक्षेप—'क्या वह जनता में शान्ति और अनुशासन रख सकेगी?' सो इस सम्बन्ध में एक बार परीक्षा हो चुकी है और कमिश्नर महोदय यदि जीवित होंगे तो देख रहे होंगे कि किस प्रकार कॉंग्रेस ने देश की बागडोर सँभाली थी, और फिर जैसे भी बुरी भली तरह सँभाली हो अब तो उसी को सँभालनी है। हाँ झूठों के बादशाह को एक शिकस्त और दी गई। कहा गया, कॉंग्रेस हिन्दू संस्था है और तर्क था चूँकि गाँधीजी हिन्दू हैं। यदि गाँधीजी कॉंग्रेस के जन्मदाता होते तो सम्भव है हिन्दुओं के जाति वर्गीकरण के न्याय से कॉंग्रेस (हिंदू बाप की बेटी हिंदू) संस्था हो जाती। परन्तु वह तो है नहीं, फिर भी कहा यह गया कि कॉंग्रेस हिंदू संस्था है। यह इसलिए ताकि मुसलिम जनता को भड़का कर फोड़ दिया जाय और स्वातंत्र्य-युद्ध-सङ्गठन को निकम्मा कर दिया जाय। बाद में इसी हथियार का प्रयोग मुस्लिम लीग ने किया था। जी नहीं मानता। विदेशी सरकार के उस राक्षसी दमनचक्र एवं अत्याचारों का एक वर्णन और लिख दें। प्रस्ताव के समर्थन में यह रहस्य डा० खान साहिब ने खोला था।

"चारसद्दा में सन् १६३० में शराब की दूकान पर धरना दिया गया। वहाँ खुदाई खिदमतगारों को पीटा गया था, उनके कपड़े फाड़ दिये गए थे, उन्हें नितङ्ग नङ्गा कर दिया गया था। बाद को उन्होंने दो दो पोशाकें पहनाना शुरू कर दिया था। एक सफेद पोशाक भीतर और एक लाल पोशाक (सङ्गठन की प्रतीक) ऊपर। और फिर—

"जो घायल हमारे अस्पताल में आकर इकट्ठे हुए थे उन्हें बलपूर्वक बाहर भगा दिया। अस्पताल के कुछ मरीज चारसद्दा के अस्पताल में ले जाये गए, जहाँ से भी दूसरे दिन उन्हें एक मसजिद में रखा गया था और मैं उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिए वहाँ चला गया। बाद को पेशावर में हमारा एक अस्पताल हो गया था। लेकिन उस सबके होने

पर भी कोई भी आदमी नहीं कह सकता कि उस पुलिस या सेना के जो इन खुदाई खिदमतगारों को मार रही थी, एक भी खुरंट लगी हो।"*

अब हिन्दुस्तान के राजनैतिक क्षेत्रों में गाँधी-इरविन-समझौते की हवा बह रही थी। वातावरण में सरगर्मी और जोश था। २८ फरवरी, सन् १९३१ को उत्तमनजाई गाँव में एक सभा बुलाई गई। खान अब्दुल ग़फ्फ़ार खाँ और डा० खान साहिब यहीं के हैं। इस सभा में सरकार को कुछ बदबू सुँघाई दी। इसलिए इसे भङ्ग करने के लिए पलटनें भेजी गईं। किस सुन्दरतापूर्वक सभा भङ्ग की गई इसका वर्णन डा० खान साहिब ने बड़े साफ़ शब्दों में किया है—

"पलटनें वहाँ पहुँच गई थीं। लाठी की मार से खुदाई खिदमतगारों को नहीं भगाया जा सका। यह सत्य है कि कोई हुक्म नहीं दिया गया था (परन्तु अपनी लाठियों की मार को असफल जाते देख खिसिया कर—ले०) कुछ सिपाही क़ाबू से बाहर हो गए, उन्होंने गोली बरसाना शुरू कर दिया। केप्टिन बेनीज जो उस समय पलटन का संचालक था, चिल्लाया—'गोली मत चलाओ, गोली मत चलाओ।' लेकिन उसकी किसी ने नहीं सुनी। बन्दूकें चलती रहीं परन्तु खुदाई खिदमतगार

---

*"The picketing of liquoor shops began in Charsadda in 1930. There the khudai khidmatgars were beaten, their clothes were torn to pieces, they were made stark naked. Afterwards, they used to wear a double dress, a white band under and the red dress outside." 'Again" he proceeded, 'in our hospital, people who had collected there were all forcibly dispersed. Some of the patients in the hospital were taken to Charsadda Hospital and next day they were thrown out. They were put in a mosque and I went there to treat them and later on we had a hospital in Peshawar city. With all that, no body can cite a single scratch on the police or Army people who were dealing with these khudai khidmatgars.'

(*Central Assembly Debates, Vol I, 1935 p. 390.*)

तितर-बितर नहीं किए जा सके, वे वहीं अड़े हुए थे। तीस आदमी घायल हुए और दो मारे गए।"*

जिन दिनों दमनचक्र अपनी पूरी तेजी से चल रहा था उन्हीं दिनों सीमा प्रान्त में एक अँग्रेज आया जिसका नाम वर्नीज था। वर्नीज पुलिस के तत्कालीन असिसटेंट जनरल इंस्पेक्टर का मेहमान होकर आया था। इस अँग्रेज ने एक पुस्तक 'नङ्गा फकीर (Naked Faqir) नाम से लिखी थी। इस पुस्तक मे सीमा प्रान्त के विषय में कुछ बड़ी विपरीत बातें लिखी हैं। विपरीत सरकारी रिपोर्ट से। वर्नीज लिखता है:—

"मुझे खुशी है कि मैंने सीमा प्रान्त देखा। यह प्राचीन भारत का सबसे बुरा रूप है। शासन अकल्पनीय, कठोर और खासकर अयोग्य है। मेरी समझ में नहीं आता कि साइमन कमीशन ने किस प्रकार रिपोर्ट बना दी कि उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में कोई सुधार नहीं होने चाहिये। सीमा प्रान्त के खतरे के विषय में जो बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार किया जाता है वह अधिकांश में दिखावा है।" वह आगे लिखता है:—अगर वे (शासक) पूरी सेना का एक चौथाई भाग भी इस रेगिस्तान को सींचने में लगा दिया जाता तो बची हुई सेना का खर्च आधा रह जाता। अफरीदी लोग इस कारण लूट-मार करते हैं कि चूँकि वे भूखों मर रहे

*Dr. Khan Sahib said :—"The troops were there. Lathi charges could not disperse the Khudai Khidmatgars. Really no order was given, but some of the soldiers went out of control and they started firing. Captain Bares, who was in charge ot the party shouted, "Dont fire, dont fire," but no body listened to him. The firing went on, but the Khudai Khidmatgars could not be dispersed, they were still there. Thirty people were wounded, two killed."

Adapted From Abdul Qaiyum's Gold and Gems of the Pathan Frontier.

हैं। मेरी अभिलाषा है कि मैं (अज्ञान के) इस परदे को उठादूँ और होने वाली कुछ ज्यादतियों का खुलासा करदूँ।"*

लेकिन बर्नीज ने जो पर्दा खोला उसका परिणाम और जो कुछ हुआ सो तो हुआ ही, इतना अवश्य हुआ कि अँग्रेजी अत्याचार पहले से बढ़ गये। दूने उत्साह से गोरे सिपाही और किराये के टट्टू देशी सैनिक अपनी अपनी राइफिलें लेकर दौड़ पड़े। लेकिन पठानों ने इस सब अत्याचार को चुपचाप सह लिया। उन्होंने गाँधी के मुख से बुद्ध का सन्देश सुन लिया था। यह अत्याचार और मूक सहनशीलता आजादी की खातिर थी।

इसी समय एक ऐसी दुर्घटना घट गई जिसने सूबे में मानों बिजली का बटन दबा दिया। कैप्टन बर्नेज चारसद्दा का असिसटेंट कमिश्नर था। इसी की हत्या करने का प्रयत्न किया गया था। आफ़त के मारे एक हबीब नूर नामक पठान पर हत्या करने की कोशिश करने के अपराध में मुक़द्दमा चलाया गया था। लेकिन अभागा ही था वह अपराधी। गोली चूक गई। वह ब्रिटिश अफ़सर घायल भी नहीं हुआ था। कहने का मतलब यह कि किसी भी तरह हबीब नूर हत्या का अपराधी नहीं था। हाँ हत्या करने की कोशिश करने का अपराध उसके सिर जरूर आता था। लेकिन जिनके यहाँ मनुष्य का मूल्य कौड़ियों पर नापा जाता

---

* He says, "I am glad that I saw the Frontier. It is old India at its worst. The administration is unimaginative, callous and not particularly in competent. I cannot understand how the Simon Commission came to report that there should be no reform in the N. W. F. P. The much advertized Frontier danger is largely poppycock." He adds. "If they spent a quarter of the Army estimates on irrigating the desert, they would be able to have the expenditure of the remainder. The Afridis loot because they are starving. I wish I could lift the veil and expose some of the excesses up there.

—Bernays in -Naked Faquir

है वे किसी के प्राण लेने में कब हिचकेंगे ? हबीब नूर पर साधारण नहीं हत्या--अपराध--क़ानून (Murderous Outrages Act) में मुकद्दमा चलाया गया । बिना किसी पूर्व सूचनाके उसे गिरफ्तार कर लिया गया । किसी भी अपील या गवाही से उसे नहीं बचाया जा सकता है । दो ही दिन की मुकद्दमेबाज़ी से उसे मृत्यु-दण्ड सुना दिया गया । कितना सस्ता था उसका जीवन । हाई कोर्ट के मुकद्दमों पर कोई अपील नहीं की जा सकती थी, केवल पुनर्विचार के लिए मामला चीफ़ कमिश्नर के यहाँ भेजा जा सकता था । वही किया गया । अर्जी दी गई लेकिन वह रद्द करदी गई । यह तो होना ही था । फिर भी एक बार बर्नीज़ महाशय क्या कहते हैं:—

"एक ब्रिटिश अफ़सर को मारने की कोशिश की गई थी, परन्तु बेकार गई । लेकिन दो दिन से थोड़े ही समय में, इसके अपराधी को फाँसी दे दी गई थी ।"*

अब सन् १६३१–३२ में आकर सीमा प्रान्त की राजनैतिक भूमि में भी थोड़ी शान्ति आ गई थी । उधर हिन्दुस्तान में भी पहले का ज्वार उतर चुका था । और समझौते के प्रयत्न हो रहे थे । सीमा प्रान्त की इस वर्ष की दशा विवरण सरकारी रिपोर्ट में इस प्रकार मिलता है—

"सितम्बर के शुरू में प्रान्त की राजनैतिक हलचल चुप हो गई थी । यह बहुत कर इसलिये था चूँकि खान अब्दुल गफ्फार खाँ अपने केन्द्रस्थल पर नहीं थे । वे शिमला में गांधी से मिल चुकने पर और पंजाब में थोड़े समय के लिये रुकने के बाद सीधे डेरा इस्माइल खाँ चले गये, जहाँ उन्होंने एक सप्ताह वहाँ के हिन्दू मुसलिम वीरों में समझौता करने के असफल प्रयत्नों में व्यतीत किया ।"

---

*"An attempt was made on the life of a British official, it was unsuccessful ; but in less than two days, the perpetrator of it had been executed."

—Bernays in—Naked Faquir

मार्च सन् १६३१ में गांधी-इरविन-समझौते के प्रयत्न हो रहे थे। तभी सन् १६३२ में खान साहब को वर्धा में गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर इसलिये मुकद्दमा चलाया गया कि उन्होंने कुछ महीने पहिले बम्बई में कुछ ईसाइयों के सामने एक राजविद्रोहात्मक व्याख्यान क्यों दिया था। सचमुच अगर वह व्याख्यान राजविद्रोहात्मक ही था तो हमें इस पर कुछ नहीं कहना है। परन्तु क्या सचमुच वह था? इस पर मतभेद का कारण है दोनों पक्षों की मान्यताओं में भेद। जिसने व्याख्यान दिया था वह 'राज' के खिलाफ़ कदापि नहीं था, और हो भी कैसे सकता, 'राजा' था कहाँ? हाँ तो फिर ख़ान साहब के गिरफ्तार करने और मुक़द्दमा चला लेने के बाद सुधारों का काम आया। ठीक उसी तरह जैसे मारने के बाद पुचकारने का आता है। प्रान्त में नई सरकार स्थापित होने को थी और उसके लिये चुनाव होने वाले थे। पाठकों को विदित ही है अगस्त सन् १६३१ में खुदाई-खिदमतगारों की की संस्था कांग्रेस के बहुत निकट आ चुकी थी यहाँ तक कि एक प्रकार से उसका अविभाज्य अंग ही बन गई थी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अब उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी। जब चुनाव की बात चली तो 'लालकुर्ती वाले' कहे जाने वाले इन स्वयंसेवकों ने उसका बायकाट कर दिया। परन्तु उनके किये कुछ हो नहीं सका। हम कह आये हैं सीमा प्रान्त में दुहरा शासन (Dyarchy) आरम्भ हो गई। परिवर्तन विरोधी सर अब्दुल कय्यूम इस नई सरकार में पहले प्रधान मन्त्री थे।

सर अब्दुल कय्यूम साहब प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। उनमें कार्य करने की लगन थी और तत्परता भी। परन्तु जिस समय वे प्रधान मंत्री बनाये गये उस समय वे एक सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करके बैठे हुये थे। यही कारण था कि अपनी अधिक उम्र के कारण उनकी शक्ति इस समय तक क्षीण हो चुकी थी। उनमें वह कर्मठता नहीं थी जो प्रधान मंत्री में आवश्यक गुण होना चाहिये। उनके सम्बन्ध में जे० एस० ब्राइट महोदय ने कुछ मजेदार बातें लिखी हैं। पाठकों के लिये हम उन्हें उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं।

"सर अब्दुल क़य्यूम पठानों के प्रधान मन्त्री थे। वे बड़े अनुभवी और असाधारण योग्यता सम्पन्न अवकाश प्राप्त राजनैतिक अफ़सर थे। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि वे शासकों की हाँ में हाँ मिलाकर (उसका विरोध करके नहीं) काम करने को तैयार थे। ब्रिटिश सरकार के दृष्टि कोण से सर अब्दुल क़य्यूम साहब उतने ही बड़े शूरवीर थे जितने बड़े सर सिकन्दरहयात खाँ। लेकिन दोनों में बहुत थोड़ा अन्तर था। जहाँ सर सिकन्दर हयात खाँ थोड़े बहुत सभी वर्गों में लोक प्रिय थे, वहाँ सर कय्यूम साहब अपने ही लोगों का भी विश्वास नहीं पासके। शायद यह अन्तर मनोवैज्ञानिक था। लेकिन इस मनोवैज्ञानिक अन्तर के पीछे शारीरिक आधार था। उनके राजनैतिक विचार उनकी आयु के कारण थे। सर सिकन्दर नौजवान आदमी थे और नई व्यवस्था के साथ मिलकर काम कर सकते थे। लेकिन सर कय्यूम साहब जो स्वयं ही छुट्टी पा चुके थे बुड्ढे हो गये थे, और उन्हें अपने बुढ़ापे के दिनों में सहारे की लकड़ी की जरूरत पड़ गई थी। अब उनके लिये सम्भव नहीं था कि वे अपने दृष्टिकोण बदलते।*

---

*Sir Abdul Quaiyum was the first Prime Minister of the Pathans. He was a retired political officer of great experience and exceptional ability. Above all, he was ready to work with, not against the officials. From the British point of view, Sir Abdul Quaiyum was as hardy as Sir Sikander Hayat khan. But there was just a touch of difference. While Sir Sikander was popular among all the communities, more or less, Sir Quaiyum could not win the confidence of even his own. Perhaps the difference was psychological. But the psychological difference had a physiological background. Their political outlook was the outcome of their ages. Sir Sikander was young and could work himself up to the level of a new constitution. But the already retired Sir Quaiyum was rather old and needed a prop in his olden days. It was too late to change the angle of his vision."—

—*J. S. Bright M. A.*

उपरोक्त उद्धरण के साथ ही हम सर विलियम बार्टन का भी मत उपस्थित करते हैं। बार्टन साहब लिखते हैं :—

"यहाँ यह देखा जा सकता है कि लन्डन कान्फ्रेंस में उनको इस सूबे के लिये की सेवाओं के बावजूद और उनके अनुभव एवं स्वजाति के लिये राजनैतिक दर्जे को बढ़ाने में उनके उत्साह के बावजूद भी सर अब्दुल क़य्यूम का निर्वाचन लोकप्रिय न था।"*

असल बात तो यह है कि अब उनमें उतनी शक्ति नहीं थी कि राजकार्य को सँभाल सकते। शासकों को या निर्वाचकों को यह नहीं दीख सका कि अब उनकी शक्ति टूट गई थी।

सन् १६३२--३३ का काल प्रान्त में शान्तिमय था। सरकार ने सन् १६३१ में जो रुख इन उपद्रवियों और आन्दोलनकारियों के प्रति अख़्तियार किया उसके परिणामस्वरूप ख़ुदाई खिदमतगारों की हलचलें कुछ समय के लिए रुक-सी गईं। हलचलें रुक तो जरूर गईं परन्तु भीतर ही भीतर आग अब भी सुलग रही थी, बुझी नहीं थी। शासन में शान्ति बनाये रखने के लिए कुछ ज़िलों में फिर भी फौज-पलटन रखनी पड़ी थी। पेशावर ज़िले में, जहाँ आन्दोलन का जन्म हुआ था, वह कठिनाई से दबाया जा सका। खासकर चारसद्दा और मरदान के डिवीज़नों में तो और भी कठिनाई पड़ी। आगे के महीनों में (फरवरी और मार्च) 'लालकुर्ती वालों' के आन्दोलन की जो स्थिति थी उसका विवरण सरकारी रिपोर्ट में इस प्रकार मिलता है—

"फरवरी के आखीर तक यह साफ-साफ दीखने लगा था कि पेशावर जिसमें भी लाल कुर्ती वालों का आन्दोलन अगर बिल्कुल

---

* 'Here it may be observed," says Sir William Barton, "that despite his services to the province on the London Conference, despite his experience and his enthusiasim for the political advance of his community' Sir Abdul Quaiyyum's appointment was not popular."—

—*Sir. W. Barton.*

ध्वंस नहीं कर दिया गया था तो धरती में भीतर जरूर पहुँचा दिया गया था। लोगों के व्यवहार में भी अब सुधार स्पष्टतया हो रहा था। अब यह सम्भव था कि मरदान के प्रति भाग (Sub-division) के हस्तम क्षेत्र में से फौजों को हटा लिया जाय और फ़ौज की एक ही पल्टन रहने दी जाय। जिले के कई थानों में से दफ़ा १४४ और 'क्रिमिनल-प्रोसेजर-कोड' की रुकावटों को हटा लिया गया।

"मार्च के महीने में यह ध्यान देने योग्य है, कि लोग आने वाले सुधारों (जो नई सरकार भी स्थापना से होते) में रुचि दिखाने लगे थे और लाल कुर्ती वालों तथा काँग्रेस के आन्दोलन उनके दिमाग़ों से दूर होते जारहे थे। इस बात के साफ़ संकेत दीख रहे थे कि सभी ओर लोग अनुभव कर रहे हैं कि हिन्दू-प्रधान-काँग्रेस का लक्ष्य ठीक वही कभी नहीं हो सकता जो ६० प्रतिशत मुसलमानों से भरे समाज का होगा।"

उपरोक्त विवरण पढ़ने के पश्चात् पाठकों के दिमाग़ पर यह बात आ जाती है कि ख़ुदाई खिदमतगारों का संगठन शायद आगे न चलेगा। लेकिन बात ऐसी न थी। यह सच है कि सरकारी दमन की मार के कारण यह सो सा गया था। जीवित वह था परन्तु दबा हुआ। कभी-कभी छुट-पुट हल-चल हो जाती थी। परन्तु इस ओर सरकार को अब दमन चलाने की जरूरत नहीं पड़ी। हाँ यह निश्चित है कि यह छुटपुट कार्यवाहियाँ भी सरकार की उल्लू जैसी आँख से छिपी न थीं। सरकार देख रही थी कि जनता में अब इसके प्रति एक प्रकार की अरुचि बढ़ रही थी। लेकिन जाने किसी निगाह से, शायद सोते से में दीखा था, सरकार ने यह घटनाएँ देखीं। अब इस आन्दोलन को फिर उठते देखकर सचमुच उस समय के अफ़सरों के कान खड़े हो गये होंगे। आज अगर उनमें से कोई जीवित है तो वह हाथ मल मल कर पछता रहा होगा। इन छुटमुट घटनाओं को लेकर सन् १९३३-३४ की सरकारी रिपोर्ट में लिखा गया है।

"यह हल चलें राजनैतिक दृष्टि से इतने कम महत्व की हैं, और जन

साधारण में उनका असर इतना कम हुआ कि एक या दो को छोड़ कर शेष को किसी भी न्याय से 'घटना' कहना कठिन है। परिणामतः इस संक्षिप्त विवरण में उन्हें अलग से वर्णन करने के लिये स्थान नहीं मिल सकता। अपवादों को उनके काल-क्रमानुसार वर्णित किया जायगा, बची हुइयों के लिये यही कहना बहुत होगा कि इन हलचलों में कुछ इस प्रकार की घटनाएँ थीं। इने गिने लोगों की गुप्त बैठकें, जो प्रायः रात के समय एकान्त जगहों पर होती थीं; बग़ावती पर्चे छिपकर बाँटना; पिकेटिंग करने के असफल एवं छिपे छिपे प्रयत्न, लोगों को लगान न देने के लिये बहकाना; जिनके बीच बीच में कभी कभी मील के पत्थरों और पुलों को लाल रँग से रँग देने की उद्दण्डताएँ होती रहती थीं। इन तमाशों का जैसे जैसे वे होते गये, सरकार ने सहज ही परन्तु दृढ़तापूर्वक मुकाबला किया, लेकिन तो भी इन उत्पातों ने (जो सरकार की दृष्टि में स्वाँग थे) और उनके मुकाबले के लिये की हुई कार्यवाहियों ने बहुत थोड़े से अधिक किसी का ध्यान आकर्षित नहीं किया। लेकिन यह और भी अधिक स्पष्ट हो गया कि ये (उत्पात) किसी वास्तविक आन्दोलन की अपेक्षा थोड़े से लाल कुर्ती वालों के कारण थे जिन्हें इतर प्रदेश के काँग्रेस के संचालकों से इस कार्य को करने के लिये रुपये के रूप में शक्ति मिलती रहती थी।

"जिस प्रकार की ये हलचलें होती थीं, उनसे मुकाबला करने का एक बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग शीघ्र ही ढूँढ निकाला गया। जिला अधिकारियों ने गाँवों में भविष्य में होने वाले लाल कुर्ती वालों की एक सूची बनाई फिर जन शान्ति कानून (Public Tranquility Act) के अनुसार उन गाँव वालों पर सामूहिक जुर्माने करने का ढंग बनाया गया जिन्हें उपरोक्त प्रकार के लालकुर्ती दल के जुलूसों में भाग लेते या उसके लिये उत्तरदायी होते पाया गया था। ये जुर्माने केवल उन्हीं ग्राम वासियों से लिये जाते थे जिनका नाम उस सूची में होता था।'

पाठक सरकारी रिपोर्ट के उपरोक्त उद्धरण से यह समझ गये कि किस प्रकार सन् १९३१ में दुहरे शासन के स्थापित हो जाने से खुदाई

खिदमत गारों का आन्दोलन, जो उस प्रान्त में जनता का अकेला ही आन्दोलन था, धीमा पड़ गया। ये वर्ष सरकारी विचार से शान्ति के थे, जनता के विचार से तन्द्रा के। लेकिन 'हलचलों' के अन्तर्गत पाठक देख आये हैं कि तुरंगजई के हाजी के विरोध करने पर भी ईपी के फ़क़ीर ने सन् १९३४ में एक आक्रमण किया था। परन्तु वह असफल रहा। दण्ड स्वरूप कबाइलों के देश में सड़क और भी भीतरी चली गई। यही दण्ड था।

यहाँसे आगे बढ़नेके पूर्व एक आन्दोलन की बात और कहदें। महात्मा गांधी का नमक-कर विरोध आन्दोलन छिड़ा तो पठान लोगों के कान खड़े हो गये। वे देखने लगे यह क्या है। जिरगाओं में राजनैतिक चर्चा गर्मी पकड़ने लगी। पठानों को निश्चय हो गया अब गया अँग्रेजी राज्य। नमक-कर-कानून को भंग करने का अर्थ उन्होंने लगाया ब्रिटिश सत्ता को ही तोड़ने की तैयारी है। यों वह तो थी ही, परन्तु उन्होंने समझा अभी, इसी क्षण। इसलिये प्रत्येक ने अपने-अपने छुरे पैनाने शुरू कर दिये। इससे अच्छा अवसर नहीं मिलने का। पेशावर की किस्सा-खानी सड़क पर छुरे चमकने लगे। किस्साखनी पेशावर के आन्दोलन-कारियों, उपद्रवियों का केन्द्रस्थल है। अफ़रीदियों के दिल काबू से बाहर हो गये। दल के दल आकर पेशावर को चारों ओर से घेरने लगे। खेतों की आड़ का सहारा लेकर ये लोग झुण्ड के झुण्ड आ-आकर घिरने लगे। इधर आक्रमण हुआ उधर अँग्रेजों के बमवर्षक आसमान में गरजने लगे। बेचारे कबाइलों को भागते ही बना। इस प्रकार नमक-कर भंग आन्दोलन को देखकर जो आग उमड़ी थी, वह यों सो गई।

राष्ट्रीय जागरण के इस परिच्छेद के अन्दर यह उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि बाजार की घाटी में चोरा नामक स्थान पर एक स्कूल की स्थापना की गई। यह विषय भी पाठकों के राष्ट्रीय जागरण का ही अंश है। अब पठान जागृत होने लगा था। वह नई सभ्यता की ओर आकर्षित हो रहा था।

सन् १९३५ का भारतीय-विधान

सन् १९३५ में अँग्रेज़ी सरकार की नई देन भारतीय-विधान आया। उपद्रवों और आन्दोलन के सिलसिले में पहले यह बता देना उपयुक्त होगा कि इसका प्रभाव सीमा प्रान्त में कबाइलियों के देश में क्या हुआ।

भारत में विधान के आते ही सीमा प्रान्त में उपद्रवों का जोर बढ़ने लगा। आलस में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना पठान को पसन्द नहीं है। जिन क्षेत्रों में इस समय शान्ति हो गई थी वहाँ हलचलें दिखाई पड़ने लगीं। सड़कें बनाने का काम एक ओर फेंक दिया गया। फिर मुल्लाओं ने चकमक पत्थर रगड़ा। अफ़रीदियों ने अपना फूँस आगे बढ़ा दिया। उपद्रव प्रारम्भ हो गया। चोरा का स्कूल जला दिया गया। निस्सन्देह पठानों की यह भूल थी। परन्तु जोश और होश साथ-साथ नहीं चलते। लेकिन यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि यह बीसवीं शताब्दी की चौथी दशाब्दी थी। काँग्रेस का रंग चढ़ चुका था। परिणामतः कोई भी हत्याकाण्ड नहीं हुआ।

वज़ीरिस्तान में भी कुछ उपद्रव और अशान्ति हुई। परन्तु सरकारी फ़ौजों ने वाना और रमज़क पर अधिकार कर लिया। सच पूछा जाय तो इस उपद्रव से तो सरकार को लाभ ही हुआ, क्योंकि इसके बहाने प्रान्त में उसकी पकड़ और भी मज़बूत हो गई। महसूदों और मोहमंदों ने भी उठकर फिर हथियार डाल दिये।

हाँ तो अब शासन की दृष्टि से १९३५ के भारतीय विधान का विचार करें। इसके अनुसार भारत के अन्य प्रान्तों की तरह ही सीमा प्रान्त में भी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना हो गई। पाठकों को स्मरण होगा कि पिछले चुनाव के समय खुदाई ख़िदमतगारों ने उसका बायकाट किया था। लेकिन इस बार के चुनाव में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। इनकी ओर से उम्मेदवार चुनाव लड़ने के लिए खड़े हुए। इनके विरोधियों में प्रतिक्रिया तथा परिवर्त्तन विरोधी खान लोग जो सरकार के पिट्ठू थे, तो थे ही, साथ ही साथ अफ़सर वर्ग भी विरोध में था।

गांधी-इरविन समझौते के बावजूद भी नौकरशाही कांग्रेस की ओर सन्देह से देखती रही। यह सरकारी अफसर नहीं चाहते थे कि कॉंग्रेसी उम्मेदवार चुनाव में जीत जायें और इस प्रकार प्रान्त के शासक बन बैठें। अपनी इस कुटिलता को पूरा करने के लिये उन्होंने कुछ भी न उठा रखा। जितने भी प्रकार की कठिनाइयाँ और अड़चनें कॉंग्रेस के मार्ग में डाली जा सकती थीं इन स्वार्थलोलुपों ने डालीं। इस प्रकार कॉंग्रेस के खिलाफ खान और हिन्दुस्तानी अफसर आपस में मिल गये। इस समय सबसे मजेदार बात तो यह हुई कि जिन सर अब्दुल क़य्यूम साहब से पठान लोग चिढ़ते थे, तथा प्रजातन्त्रवादी होने के लिये जिनका विरोध करते थे, उन्हीं को इस चुनाव में उन्हें अपना नेता मानना पड़ा। वहाँ अब्दुलक़यूम के साथ यह भी बात थी कि वह सरकार की ओर से भी नामजद हुये थे। हालाँकि यह नामजद होने का काम सरकारी तौर पर घोषित नहीं हुआ था, परन्तु फिर भी सत्य यही था। हालाँकि दिखाने के लिये तो ये सरकारी अफसर तटस्थ थे परन्तु इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि वे छिपकर क़य्यूम साहब की सहायता कर रहे थे। यह कुछ ब्रिटिश अफसरों ही की धूर्तता थी कि कुछ हिन्दुस्तानी लोगों ने कॉंग्रेस को हराने के लिये बुरे से बुरे काम किये। उनके काम सरासर भ्रष्ट और अनैतिक थे।

इन सब आपत्तियों, विरोधों एवं अड़चनों के होते हुये भी कॉंग्रेसी सदस्य अपनी सत्यता एवं अहिंसा के बल पर चुनाव लड़ते रहे। चुनाव हुआ। परन्तु विपत्तियों का दुर्भाग्य। उनकी सबकी सब करतूतें कॉंग्रेस का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकीं। कॉंग्रेस के २१ उम्मेदवार सफल हुये थे। यह संख्या अन्य दलों की अपेक्षा सबसे बड़ी थी। कुल ५० में से २१ जगहें तो कॉंग्रेस को मिलीं बाकी २६ में तीन दल थे। (१) पहला दल उनका था जो यद्यपि कॉंग्रेसी दल की ओर से खड़े नहीं हुये थे फिर भी कॉंग्रेस के साथ ही थे। ये लोग कॉंग्रेस के साथ मिलकर एक हो जाने से बहुसंख्यकों में आ गये थे। (२) दूसरा दल था हिन्दू-

विरुद्ध राष्ट्रीयों का ये सदस्य संख्या में ६ थे। (३) तीसरा दल स्वतन्त्र लोगों का था ये किसी भी दल या पार्टी की ओर से न थे, वरन् स्वयं ही अपना दल बनाये बैठे थे।

शासक वर्ग इस परिणाम को देखकर एक दूसरे का मुँह ताकते रह गये। उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि काँग्रेस इस प्रकार ज़बर्दस्त शक्ति बन जायगी। लेकिन फिर भी काँग्रेस को स्थान नहीं दिया गया। साधारण आदमी की समझ में नहीं आ सकता कि जब काँग्रेस और उसके समर्थक बहुसंख्या (Majority) में थे तो उन्हें प्रधान मन्त्रित्व पद क्यों नहीं मिला? इसके खिलाफ़ दो चार हाँ हुजूरों के बल पर ही कैसे सर अब्दुल क़यूम साहब को यह निमन्त्रण मिल गया कि वह अपना मन्त्रिमण्डल बनावें? ख़ैर क़यूम साहब का मन्त्रिमण्डल बना। असेम्बली की मीटिंग बुलाई गई। लेकिन कुछ इस प्रकार का जाल बिछाया गया था कि जिससे काँग्रेस को अविश्वास का प्रस्ताव रखने का अवसर ही न मिल सके। लेकिन बकरी की माँ कब तक ख़ैर मनाती। उसी समय काँग्रेस के चारों ओर से अनेक शक्तिधारायें आकर उसे शक्तिशाली बना रही थीं। क़यूम साहब के मन्त्रिमण्डल को मुँह की खानी पड़ी और स्थान ग्रहण करने के कोई थोड़े ही महीने बाद स्तीफ़ा देकर हटना पड़ा। इसी समय एक काँग्रेस-पार्लियामेन्टरी-बोर्ड (Congress Parliamentay Board) सीमा प्रान्त में आया। इसमें सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद, तथा डा० राजेन्द्रप्रसाद जैसे व्यक्तित्व थे। इस बोर्ड की सिफ़ारिशों को मानकर क़यूम साहब के हट जाने पर डा० खान साहब को मन्त्रिमण्डल बनाने का निमन्त्रण मिला। यह काँग्रेसी सचिव दल केवल दो वर्ष और तीन माह, नवम्बर १९३९, तक चला था। डा० खान साहब बड़े निर्भीक एवं निडर नेता थे। वे किसी भी भय या आपत्ति से डर कर सत्य को छोड़ने वाले आदमी न थे। परम विचारवान, नीति निपुण एवं साहसी थे। वे कूटनीतिज्ञ नहीं थे। कुछ भी छिपाकर या डरकर करने की चोर जैसी प्रवृत्ति न थी।

पुराने जमाने, जब सरकारी अफसरों की मनमानी लूट चलती थी, लद गये थे। अब खुदाई खिदमतगारों या कहें कांग्रेस, का राज्य था। वे अफसर जो पहले स्वच्छन्दविहार करते थे अब रुक गये। इस समय यह बात आश्चर्य-जनक दीखती है कि सरकार के बदल जाने से ब्रिटिश अफसरों ने तो अपना व्यवहार ठीक कर लिया, वे अवसरवादी सिद्ध हुये। जैसी बहै बयार पीठि तब तैसी दीजै। जिन कांग्रेसी और खुदाई खिदमतगारों को उन्होंने जूते की नोक पर नचाया था, अब उन्हीं के साथ कंधा मिलाकर बैठने को तैयार हो गये। परन्तु हिन्दुस्तानी नौकर? बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुभान अल्ला। ये अपनी शान में वैसे ही खड़े रहे। इसका कारण था कि अधिकाश में ये लोग पुरातन प्रिय थे। यही कारण था कि उनको यह कांग्रेसीराज्य अच्छा नहीं लगा। लेकिन यह कह देना कि सभी हिन्दुस्तानी नौकर ऐसे थे उन उदारमना सज्जनों के प्रति अन्याय होगा जिन्होंने वस्तुतः कांग्रेस के साथ मिल कर देश हित का काम किया। हिन्दुस्तानियों के विरोध का कारण यह था कि अभी तक जिन अनुचित उपायों से वे जनता से रुपया ऐंठते रहे थे, वे अब नहीं चल सकते थे। उनकी आमदनी बन्द होगई थी। इसलिये इन लोगों ने चमगादड़ का सा रँग धारण किया। सामने तो वे कॉंग्रेसी राज्य की प्रशंसा करते थे परन्तु परोक्ष में षडयंत्र भी रच रहे थे। ये षड्यंत्र ये गुप्त ढंग पुराने जमाने को फिर से लाने के लिये थे। देश का दुर्भाग्य कि इस नये मंत्रि-मंडल में अभी इतनी शक्ति नहीं बन पाई थी कि वह इन कपट वेषधारियों का मुक़ाबला कर सके और फिर क़ानून उनके पक्ष में था। वह इनकी रक्षा करता था। नौकरशाही के अनेकों अत्याचार और उद्दण्डताओं का परोक्ष कारण हमारा भारतीय विधान था। हमारी परतन्त्रता इसी में तो है कि जब अन्य स्वतंत्र देशों के सरकारी नौकरियों पर छाँट-छाँट कर योग्य व्यक्ति रखे जाते हैं, हमारे देश में देश घातक, दुष्ट और अयोग्यों को पहला स्थान मिलता है। आज भी अगर पुलिस जैसे विभागों की जाँच की जाय तो कम से कम नहीं दो तिहाई भाग ($\frac{2}{3}$) निकाल देना पड़ेगा।

यह कांग्रेसी मंत्रिमंडल कुल जमा मिलाकर सवा दो साल तक रहा। इसी बीच में अनेकों विभागों में सुधार करने का बीड़ा उठा लिया गया। परन्तु गवर्नर के विशेपाधिकारों और कुछ सुधार विरोधी लोगों ने बड़ी अड़चनें डालीं।

सर्व प्रथम एक बिल इस असेम्बली में रखा गया कि जितने भी दमनकारी क़ानून हैं उन्हें तोड़ दिया जाय। मंत्रि-मंडल और असेम्बली ने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु जब यह प्रस्ताव गवर्नर की स्वीकृति के लिये गया तो वहाँ गवर्नर ने अपने विशेपाधिकार से इसे रद्द कर दिया।

दूसरी मार आकर आनरेरी मजिस्ट्रेटों पर पड़ी। सीमा प्रान्त में काँग्रेसी मंत्रिमंडल ने आनरेरी मजिस्ट्रेटों को खतम कर दिया। उनके समय में इन लोगों का काम नियमित रूप से न्यायालयों में होने लगा। पाठक आनरेरी मजिस्ट्रेटों को जानते हैं। ये सब के सब निरक्षर भट्टाचार्य, दुराचारी एवं अनुभव हीन थे। ये लोग क़ानून की क ख ग भी नहीं जानते थे। लेकिन फिर भी न्याय का काम उन्हें सौंपा गया। इसमें ब्रिटिश सरकार का स्वार्थ लगा था। ये आनरेरी मजिस्ट्रेट अधिकतर बड़े खान हुआ करते थे। पद का लोभ देकर सरकार इनसे वही काम लेती थी जो श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण से लिया था। भेद इतना ही था कि वहाँ परमार्थ भावना थी यहाँ शुद्ध स्वार्थ। ये मजिस्ट्रेट जनता के शोषण के लिये सरकार के नाखून थे। जेलदार जो कुछ गाँवों का सम्मिलित न्यायाधीश होता था प्रायः पुलिस का दाँया हाथ होता था जिससे वह (पुलिस) रिश्वतें लेती थी। आनरेरी मजिस्ट्रेटों की भाँति ही इन जेलदारों की भी वह दशा हुई और इन्हीं के साथ-साथ मुआफीदार थे। यह मुआफ़ीदार सच्चे अर्थों में, सरकारी कोष के अनुसार नहीं, देशद्रोही एवं अराष्ट्रीय लोग होते थे। ये बिना पैसे के सरकारी गुप्तचर थे जो सरकारके लिये जनता और आन्दोलनकारियों के बारे में झूँठी अधिक और सच्ची कम खबरें ला लाकर दिया करते थे। इनको भी वही ठिकाना दिखाया गया। आगे जाकर किस प्रकार यह लोग स्वार्थपूर्ति के लिये

मुसलिम लीग के दीवाने बन गये, इसे अब्दुल क़य्यूम के शब्दों में ही पाठक सुन लें।

"उस समय मंत्रियों ने यह नहीं समझा कि हमने साँप को गले में डाल लिया है। ये आनरेरी मजिस्ट्रेट, जेलदार और मुआफ़ीदार शीघ्र ही 'इसलाम के दीवाने शूरवीर' हो गये, और 'इसलाम खतरे में है' जैसे नारों को लगाकर सीमा प्रान्त में मुसलिम लीग के यह पहले रंगरूट थे और जो आज भी उसके मेरुदण्ड बने हुये हैं। मुसलिम लीग में इस वर्ग को बड़ा अच्छा मौक़ा इस बात का मिल गया कि वे दिखावे के लिये 'इसलाम के सैनिक' बने रह कर भी अपने स्वार्थों की पूर्ति कर सकते थे और साथ ही प्रगतिवादी वर्ग से अपना बदला भी ले सकते थे।"*

सीमा प्रान्त में बेगार लेने का ढंग कुछ-कुछ इङ्गलैंड जैसा था। जिस प्रकार फ्यूडल ढंग के अनुसार कृषकों को अपने जमींदारों की खेती मुफ्त में करनी पड़ती थी, उसी प्रकार सीमा प्रान्त में चौकीदारी की पद्धति थी। किसानों को मुफ्त में अपने जमींदारों के खेतों की रात में रखवाली करनी पड़ती थी। रात को जब ये मालिक आराम की नींद सोते थे, इन बेचारे ग़रीबों को पूरी-पूरी रात जगकर खेतों की रखवाली करनी पड़ती थी। न्याय के विचार से यह अन्याय था। कांग्रेस ने इसका

* "Little did the Congress Ministers then realize that they had brought a hornets nest about their ears. The Zaildars, honorary magistrates, and Muafidars soon became the 'Champions of Islam', and, with the cry of 'Islam in danger', were the Frontier's first recruits to Muslim League, of which in this province, they still form the back bone. This class saw an admirably opportunity in the Muslim League, where, while posing as champions of Islam, they could protect their own vested interests and settle old scores against the progressive forces."

—*Abdul Qaiyum.*

भी मूलोच्छेदन किया और ग़रीब किसानों को रात में सुख की नींद सोने का मौक़ा मिल गया। नौकरियों के विषय में भी जो धाँधलेबाजी चल रही थी वह भी असह्य थी। स्वार्थलोलुप लोग प्रायः हर एक नौकरी पर अपना क़ब्ज़ा किये बैठे थे। पहली बार सरकार ने प्रयत्न किया, जिसमें कुछ हद तक वह सफल भी हो गई, कि ग़रीब लोगों को भी नौकरियाँ मिल सकीं।

काँग्रेस मंत्रिमंडल ने भारत सरकार की सीमा सम्बन्धी नीति की भी आलोचना की। वन्नू की सीमा पर जीवन दुर्लभ हो गया। दिन रात आक्रमणों का भय रहता था। इस ओर काँग्रेस ने भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई आर्थिक थी। प्रान्त इतना धन सम्पन्न न था कि इन परिस्थितियों को सँभाल कर चल सके। उसका खर्च आमदनी से अधिक था। खर्च मद्दे में पुलिस का हिस्सा बहुत बड़ा था। इस विषम व्यवस्था को देखकर अर्थमंत्री ने असेम्बली के सम्मुख एक प्रस्ताव पेश किया जिसके मुताबिक पुलिस अफ़सरों की तनख्वाहों में कमी कर दी गई। लेकिन काँग्रेस सफल न हो सकी। गवर्नर महोदय ने "टेरीट्रयूज़ रिपील बिल" को भी पास नहीं होने दिया।

गवर्नर के इस निरंकुश व्यवहार की काँग्रेस के समर्थकों ने सभी ओर आलोचना की। असेम्बली में भी उसकी बड़ी आलोचनाएँ हुई। इसी बीच सीमा-प्रान्त में पं० जवाहर लाल नेहरू और महात्मा गांधी ने मिलकर यात्रा की। इन नेताओं का खूब जोर शोर से स्वागत किया गया। बीस हज़ार पठानों ने गगन भेदी, 'मलंग बाबा जिन्दा बाद' के नारों से पूरे प्रान्त को गुँजा दिया।

इन सुधारों और कानूनी प्रतिबन्धों के अतिरिक्त एक सबसे बड़ा काम काँग्रेस सरकार ने यह किया कि स्वार्थ लोलुपों की आशायें मिट्टी में मिला दी गईं। काँग्रेस के हाथों में शक्ति आते देखकर कुछ व्यक्तियों ने इसलिये काँग्रेस का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया कि इसके द्वारा वे अपनी जेबें भर सकेंगे। इसलिये अब काँग्रेस के

अनुयायियों की संख्या जोरों के साथ बढ़ने लगी । ऐसी [illegible] सम्भव नहीं था कि ढोंगियों को बाहर निकाला जा सके । [illegible] कुछ नाम कमाने के लिये आतुर लोग अनाधिकार [illegible] । [illegible] बढ़ने के प्रयत्न करने लगे । इसका परिणाम यह हुआ कि [illegible] संगठन में भारी गड़बड़ घोटाला मच गया । लोग अपनी अपनी डेढ़ ईंट की हवेली बनाने लगे । इसका अदृष्ट परिणाम यह हुआ कि शक्ति का ह्रास होने लगा । इस प्रकार के झगड़े और आपसी झगड़े [illegible] स्वय किस पार्टी या दल का नहीं होता । इस प्रकार सभी दलों में [illegible] होना आवश्यक सा है । लेकिन इन को दबाकर रखने, इन पर अपने व्यक्तित्व से चमक चढ़ाते रहने के लिये आवश्यकता होती है [illegible] व्यक्ति की । 'खान अब्दुल गफ्फार खाँ' सीमा-प्रान्त के ऐसे ही नेता हैं ।

सीमा प्रान्त के इस कॉंग्रेस मंत्रिमंडल को कुल मिलाकर [illegible] ही कह सकते हैं । इस छोटे से समय में यह सब करने के लिये [illegible] उसके सचमुच ही कृतज्ञ हैं । जब यूरोप में [illegible] महायुद्ध आरम्भ हुआ तो ब्रिटेन की युद्ध नीति से मत भेद होने के कारण मंत्रिमंडल ने अन्य प्रान्तों के साथ ही साथ त्याग पत्र दे दिया । हिन्दुस्तान को अनावश्यकरूप से युद्ध में घसीट लिया गया था ।

सीमा-प्रान्त में मुसलिम लीग प्रवेश

हिन्दुस्तान में जब मुसलिम लीग बन गई तो जिन्ना साहब के हाथ पाँव दूर दूर तक फैलने लगे । सिन्धु के उस पार अभी जिन्ना साहब लीग को संगठित कर रहे थे कि तभी अधिकतर प्रान्तों में कॉंग्रेस मंत्रिमंडल बन गये । यह जिन्ना साहब को हार्दिक दुख हुआ । उनको रोना इस बात का था कि कांग्रेस ने मुसलमानों के साथ मिलकर मंत्रिमंडल क्यों नहीं बनाये । लीग चाहती थी कि कॉंग्रेस सम्मिलित मंत्रिमंडल (Coalition Ministry) बनाये परन्तु यह नहीं हो सका । यह असन्तोष उन प्रान्तों में विशेष कर था जहाँ मुसलमान अल्पसंख्या में थे । कॉंग्रेस पर मुसलमानों ने यह दोष मढ़ा कि वह मुसलमानों

को उचित अनुपात में नौकरियाँ नहीं देती है। जब काँग्रेस ने इस प्रकार का मत बनाया कि प्रान्तों में हिन्दी और देवनागरी लिपि का प्रचलन किया जाय तब तो लीग के कान खड़े हो गये। उनको झूठा डर हुआ कि बस अब उनकी उर्दू गई। हालाँकि यह निश्चित था कि यह तथा अन्य अनेकों डर बनावटी और हवाई थे। प्रमाण रूप से हम आज के लीगी तथा पुराने काँग्रेसी श्री अब्दुल कय्यूम साहब का मत उद्धृत हैं।

"देवनागरी लिपि में हिन्दी के पुनुर्जीवित करने तथा प्रचार करने की योजनाओं को देखकर वे (मुसलिम लीगी) आँखें चढ़ाने लगे। इसमें उन्हें उर्दू भाषा के लिये सच्चा खतरा दीखता था। यह तथा और बहुत से दूसरे असन्तोष, जिनमें कुछ तो ठीक थे, और जो बाक़ी ज्यादा-तर या तो काल्पनिक थे या जिन्हें ख़ूब बढ़ा चढ़ा कर दिखाया गया था, मुसलिम जनता को कांग्रेस के ख़िलाफ़ उभाड़ने के लिये बनाये गये थे।"

इन आपत्तिजनक बातों का निर्णय करने के लिये (या सच कहें तो निर्माण करने के लिये) मुसलिम लीग की ओर से एक कमेटी 'पीरपुर कमेटी' के नाम से नियुक्त की गई। इस कमेटी ने जो निर्णय दिया उसमें बहुत से ऐसे अधिकार दिखाये जिनसे मुसलिम जनता को वंचित रखा गया था। इसी प्रकार बहुत से ऐसे विषय भी दिखाये जो मुसलिम वर्ग के लिये हानिकारक थे तथा उसकी इच्छा के विरुद्ध लाद दिये गये थे। इस कमेटी के निर्णय को पढ़ते समय भी उपरोक्त कथन (उद्धरण) को ध्यान में रखना चाहिये। सच बात तो यह है कि मुसलिम बहु संख्यक प्रान्तों में भी—यथा उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त—काँग्रेसी मंत्रि-मंडल देखकर लीग के दुख का पारावार न था। यह एक प्रकार से उसका अपमान था। लीग समझती थी और अब भी समझती है कि वही मुसलिम जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। अब लीग ने योजनायें बनाना शुरू कीं। निश्चय किया गया कि जैसे हो उस प्रकार पठानों को काँग्रेस से फोड़ लिया जाय तथा काँग्रेस मंत्रि मंडल को हटा दिया जाय। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये मौलाना शौकत-

अली, काज़ी मुहम्मद ईसा तथा नवाबजादा लियाक़तअलीख़ाँ जैसे लीगी महारथी सीमा प्रान्त में भेजे गये। उन्होंने क्या किया, किस प्रकार जाल में भोली चिड़ियों को फँसाया इसकी लम्बी और गुप्त कथा है।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया था। काँग्रेस मंत्रिमंडल भी भंग हो चुका। अब लीग की बन आई। उसने खुल कर अपना प्रचार आरम्भ किया। काँग्रेस के द्वारा 'सताये हुये' जेलदार, मुआफीदार, आनरेरी मजिस्ट्रेट, नौकरशाही के अफ़सर, बड़े-बड़े खान और सरदार दौड़ दौड़ कर लीग में दाखिला कराने लगे। नौकरियों में जिनकी ठेकेदारी तोड़ दी गई थी वह भी काँग्रेस से बहुत बिगड़े हुये थे, उन्होंने भी फ़ौरन आकर लीग में अपना नाम लिखा लिया। तात्पर्य यह कि लीग के हाथ में वे लोग जिनकी स्वार्थ हानि हुई थी, आ आकर पड़ने लगे। इसलाम खतरे में है, चिल्लाकर वे अपना स्वार्थ लीग में रह कर भी पूरे कर सकते थे। लीग ने यह कोशिशें भी कीं कि अपना मंत्रिमण्डल भी स्थापित कर ले।

युद्ध अपनी पूरी गति से चल रहा था। जर्मनी इटली और जापान के तानाशाह विजय मदमत्त हो रहे थे। तभी सन् १६४२ का आन्दोलन उठा। वह पुरानी बात नहीं है। हिन्दुस्तान में उसका प्रभाव पाठकों को मालूम है। सीमा प्रान्त में अन्य प्रान्तों की तरह दमन चक्र चलाया गया। असेम्बली के जो सदस्य काँग्रेसी थे उन्हें पकड़ कर जेलों में ठूँस दिया गया और उनके साथ ही और भी हजारों जान अनजान, अपराधी और निरपराधी लोगों को कठोर यातनाओं के साथ जेलों में भेड़ बकरियों की तरह बन्द कर दिया गया। जिस समय दस काँग्रेसी एम० एल० ए० जेलों पड़े पड़े दुख भोग रहे थे, लीग ने सोचा यह अच्छा अवसर है। और उसने मंत्रिमण्डल बनाने का ताना बाना पूरना शुरू कर दिया। इसमें सरकार का भी हित था। वह संसार को और विशेष कर उत्तरी अमरीका को जो श्री विजयलक्ष्मी पंडित की मार्मिक 'स्पीचों' को सुनकर भारत के साथ बहुत सहानुभूति रखने लगा था, दिखाना चाहती थी कि काँग्रेस हिन्दू संस्था है और सारे मुसलमान काँग्रेस

के खिलाफ़ हैं। लीग की कार्रवाहियाँ बड़ी सरगर्मी के साथ चलने लगीं। सरदार मुहम्मद औरंगज़ेब खाँ ने जो सीमाप्रान्त के लीगी नेता थे, ऐलान किया कि हिन्दू काँग्रेस को वह सीमाप्रान्त से बाहर निकाल देंगे। देहली से पेशावर तक दौड़ें लगने लगीं। क़ायदे आज़म जिन्ना साहब के साथ मुलाक़ातें होने लगीं। इन मुलाकातों का प्रत्यक्ष में एक ही उद्देश्य था किस प्रकार सीमाप्रान्त में लीगी मन्त्रि मण्डल बैठाया जाय। सन् १९४३ में गवर्नर महादय लीग से मिल गये और लीगी मन्त्रि मण्डल बना लिया गया। बाक़ायदा असेम्बली की बैठक बुलाई गई। सबसे पहला और अन्तिम भी जो बिल इस असेम्बली में उपस्थित हुआ वह मन्त्रियों की तनख्वाहें बढ़ाने का था। तनख्वाहें बढ़ाना। भूखे देश पर एक तो यों ही सैकड़ों अफ़सरों की ढेरों बड़ी तनख्वाहों का खर्च है ऊपर से मन्त्रियों की तनख्वाहें तिगुनी कर देने का यह बिल जो उपस्थित किया गया। इसी में तो था प्रजा का हित। इस छोटे से सूबे में जिसके खर्च का पूरा वह ख़ुद नहीं डाल सकता और केन्द्रीय सरकार को अपनी गाँठ से देना पड़ता है, मन्त्रियों की संख्या पाँच करदी गई। यह बढ़ती थी। सात नये एम० एल० ए० लोगों को स्पीकर डिप्टी स्पीकर, सेक्रेटरी आदि का काम मिल गया।

इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि अल्प संख्यकों का मन्त्रिमण्डल बने। सवाल तो उसे स्थिर और बनायें रखने का था। द्वार-द्वार सहायता की भीख माँगी गई लेकिन मुफ़्त कोई सहायता क्यों देने लगा।

दूसरा युद्ध समाप्त हुआ। जेल में जो काँग्रेसी सदस्य पड़े हुये थे वे छोड़ दिये गये। नया चुनाव प्रारम्भ हुआ। हमें मालूम है कि अब फिर काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल १२ मार्च सन् १९४५ को स्थापित हो गया है। इस मन्त्रिमण्डल की सच्चाई और कुशलता तो भविष्य में मालूम होगी। लेकिन भविष्य उज्ज्वल है। डा० खान साहब के प्रधान मन्त्रित्व में आशा है वह सफलता पूर्वक काम कर सकेगी

आगे चल कर सन् १९४६ में कबाइलियों की ओर से आन्दोलन

हुआ। इसे दबाने के लिए बम्बबाजी करने की सोची गई थी, परन्तु अन्तर्कालीन सरकार के उपाध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू ने उसका विरोध किया। उन्होंने स्वयं ही सीमाप्रान्त में जाकर कबाइलियों की बात सुनने का निश्चय किया, परन्तु जब वह चले तो विरोधी पक्ष के लोगों ने उनका बहुत विरोध किया। उनके मार्ग में तरह-तरह के रोड़े अटकाये गये। परन्तु वे गये। शायद इस दुस्साहस में उन्हें चोट भी आई, परन्तु एकबार कबाइली समझ गये कि उनके सच्चे मित्र काँग्रेसी हैं।

इस परिच्छेद को हम बिल्कुल आज की समस्या का थोड़ा हवाला देकर समाप्त किए देते हैं। ब्रिटेन की सरकार ३ जून सन् १९४७ वाली घोषणा के अनुसार, जिसे काँग्रेस और लीग दोनों ने मान लिया है, हिन्दुस्तान के दो भागों, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बाँट दिया गया है। पंजाब और बंगाल का मसला हल हो चुका है। अब सवाल उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त का रह गया है। सीमा प्रान्त में इस समय स्पष्टतः दो प्रमुख दल हैं। एक लीग और दूसरा ख़ुदाई खिदमतगार। ख़ुदाई खिदमतगार के नेता आज भी खान अब्दुलगफ्फार खाँ डा० खान साहब आदि-आदि हैं। ख़ुदाई खिदमतगारों के समर्थक भी थोड़े नहीं हैं। इस समय प्रश्न इस प्रकार है—लीग कहती है कि सीमाप्रान्त को पाकिस्तान के राज्य में आना चाहिये, इसके लिए वह चाहती है, और इसका समर्थन उक्त सरकारी घोषणा भी करती है कि जनमत लिया जाना चाहिये। जनमत का आधार वह पाकिस्तान या हिन्दुस्तान रख रही है। लेकिन बादशाह खान आदि ख़ुदाई खिदमतगारों के नेताओं का इससे विरोध है। उनका कहना है कि जनमत पाकिस्तान या हिन्दुस्तान के लिए नहीं वरन् पाकिस्तान या स्वतन्त्र पठानिस्तान के लिए होना चाहिये। ख़ुदाई खिदमतगारों के नेताओं का स्पष्ट कहना है कि यदि जनमत 'पाकिस्तान या हिन्दुस्तान' के लिए होगा तो वे और उनके साथी, इसमें भाग न लेंगे। उनकी कल्पना स्वतन्त्र पठानिस्तान बनाने की है। इसका स्पष्टीकरण डा० खान साहिब तथा खान अब्दुल-

गफ्फार खाँ भी अपने अनेकों भाषणों और मुलाक़ातों में कर चुके हैं। हम यहाँ पर संक्षेप में खान साहब की उस बातचीत को उद्धृत करते हैं जो बन्नू में उनके और जिन्ना साहब के बीच २३ जून १९४७ को हुई थी। डा० साहब ने कहा था—

"पठान स्वतन्त्र पठान राज्य बनाना चाहते हैं। मुसलमान हमारे भाई हैं और हम चाहते हैं कि हमारा उनसे दोस्ती का व्यवहार रहे। लेकिन हम डरते हैं कि यदि हम पाकिस्तानी विधान परिषद् में सम्मिलित होंगे तो वहाँ रईसों के लिये ही विधान बनेगा और पठान लोग ग़रीब आदमी हैं।"

इस पर जिन्ना साहब ने कहा कि आप पाकिस्तानी विधान परिषद् में आ जायँ। डा० साहब ने कहा कि हम आने को तैयार हैं, जब तक विधान बनेगा हम परिषद् में बैठेंगे, परन्तु यदि यह विधान हमारे लिये उपयुक्त नहीं हुआ तो हमें अधिकार होगा कि हम उसे छोड़ दें। जिन्ना साहब इसके लिये तैयार नहीं हैं। वे फिर भी 'पाकिस्तान या हिन्दुस्तान' के लिये जनमत लेना चाहते हैं। कॉंग्रेस पठानों से सहमत है। गाँधीजी ने भी अपनी एक मुलाक़ात में वायसराय लार्ड माँउन्टबेटेन से पठानों की इस माँग का समर्थन किया था और कहा था कि जनमत पाकिस्तान या पठानिस्तान के लिये ही होना चाहिये।

शेष भविष्य के गर्भ में है। सम्भव है जब तक यह पुस्तक पाठकों के हाथ में पहुँचे झगड़ा तै हो जाय। बहुत सम्भव है सरकारी बल पर जिन्ना साहब सीमा प्रान्त को पाकिस्तान में घसीट लायें। परन्तु लेखक का तो निश्चित विचार है कि पठान प्राण पण से इसका विरोध करेंगे। यदि आज बहकावे में आ जायेंगे तो बाद को अपनी भूल स्वीकार करेंगे और स्वतन्त्रता के लिये लड़ेंगे। पाठक इतिहास के अन्तर्गत और इस परिच्छेद में भी देख चुके हैं कि पठान सब से अधिक क़ीमत अपनी आज़ादी की मानते हैं। आज़ादी पर वे अपने सजातीय का ख्याल नहीं करते। इसके अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं। आशा है पठानों का स्वतन्त्र पठानिस्तान का स्वप्न सच्चा होगा।

पठान की रोटी का सवाल

"पठानों के द्वारा होने वाली सम्पूर्ण आपत्तियों का मूलकरण उनकी दरिद्रता है। वे चोरी करते हैं क्योंकि उन्हें करनी पड़ती है। आत्मबध (भूख से) बचने के लिये वे मनुष्य बध करते हैं। उन्हें जीवित रहने के (साधन सम्पन्न) अवसर दीजिये और वे भारत के सच्चे नागरिक बन जायँगे।"

—जे० एस० ब्राइट

"मेरी समझ से पठानी उत्तर-पश्चिम देश की समस्या प्रधान रूप से आर्थिक हैं। बल-प्रदर्शन और रिश्वतों से हम किसी हल के निकट नहीं पहुँच सके हैं। जिसकी जरूरत है वह तो इस विषय के निकट सर्वथा भिन्न ही पहुँच होनी चाहिये।"

—श्री अब्दुल कय्यूम

इस समय तक पाठक पठानों के जीवन तथा जीवन साधनों से थोड़ा परिचय पा चुके हैं। इसके साथ ही उनके देश और देश की शक्तियों तथा अभावों का परिचय भी हमने कुछ संक्षेप के भौगोलिक विवरण में दिया था। आरम्भ में हमने सरकारी प्रचार की बात कही थी जो इन पठानोंको डाकू, लुटेरा, धार्मिक दीवाना अमानवीय कहकर बदनाम करता है। हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि पठान लोग धर्म के नाम पर कुछ जल्दी बिगड़ बैठते हैं। इसका प्रमुख कारण भी हम कह आये हैं कि मुल्लाओं का प्रचार है। अन्य देशों में डाकू और लुटेरे की बात जहाँ तक आती है वहाँ हमें विशेष रूप से इस अध्याय में कहना है। सरकारी प्रचारकों से ही हम पूछते हैं—"क्या मनुष्य को पेट भरने का अधिकार नहीं है ?" निस्सन्देह इसे बड़े से बड़ा हिटलर भी अस्वीकार नहीं कर सकता। अँग्रेजी सरकार को भी मानना होगा कि मनुष्य को जीने का अधिकार है। तब हम दूसरा प्रश्न पूछते हैं—"क्या पठान मनुष्य नहीं हैं ?" आज अँग्रेज अपनी भूल समझ गये हैं। पठान मनुष्य हैं शायद हम ग़ुलाम भारतीयों से भी श्रेष्ठतर। भौगोलिक

विवरण के अध्याय में पाठक देख आये हैं कि सीमा प्रान्त की अधिकाँश भूमि एक दम बंजर और उजाड़ है। वहाँ किसी प्रकार की पैदावार नहीं होती। इसके अतिरिक्त पैदावार के कुछ साधन भी नहीं हैं। पानी की कमी, उचित ज्ञान की कमी और फिर ऊपर से सरकारी बम्बों की मार तथा उपद्रवों की बहुलता आदि ऐसे कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप पठान अपने पेट भरने लायक अन्न पैदा नहीं कर पाता। देश भर में कोई भी ऐसा व्यापार या शिल्प नहीं है जिससे असंख्यों बेकार पठानों को काम मिल सके। इस सबका परिमाण यह होता है कि अधिकांश जनता या तो पूरी साल बेकारी में काटती है या फिर कुछ लोगों को थोड़े दिनों तक तो काम मिल जाता है बाद को वह भी ठलुआ क्लब के सदस्य होजाते हैं। ऊजड़ और बंजर कहने का तात्पर्य यह नहीं कि कि देश में कुछ पैदा नहीं हो सकता। नहीं, सच बात तो यह है कि अब भी बहुत बड़ा भूभाग उपजाऊ है, परन्तु अनुपयोग से बंजर होता जारहा है। बंजर होने कारण है अपने को शासक घोषित करने वाली सरकार की लापरवाही। यदि सरकार मार कर पठानों को शान्त करने का प्रयत्न छोड़कर शान्तिपूर्वक उनके देश का हित करने में अपना ध्यान लगाती तो निस्सन्देह ये लोग अभी तक 'शान्त' और 'सभ्य' हो जाते। परन्तु ऐसा न करके वह तो सदा पल्टनों और फौजों से ही इन पर अपना अधिकार जमाने की बेकार कोशिशें करती रही। अगर इस उपजाऊ जमीन को जो पानी और इस्तैमाल के अभाव में बंजर होती जा रही है, सरकार ने अच्छा बनाने का प्रयत्न किया होता, बेकारों को काम दिलाने की चेष्टा की होती तो जहाँ एक ओर बेकारों को काम मिलता वहाँ दूसरी ओर भारतीय सेना (यदि वे लोग सेना में भर्ती किये जाते जिसके लिये वे सर्वथा उपयुक्त हैं) भी पुष्ट एवं समृद्ध होती। जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये जरूरी है कि नहरें खोदी जायँ। बेकारी को दूर करने का एक दूसरा उपाय हो सकता था घरेलूधंधों को प्रोत्साहन देना। जो कुछ धंधे चल रहे हैं उन्हें धन जन तथा कानून से सहायता देने पर निस्स-

न्देह प्रान्त का बड़ा उपकार होता। शिक्षा के विषय में हम कह आये हैं। प्रान्त के मूल निवासियों तक सारे स्कूलों और कालेजों की एक किरण भी नहीं पहुँच पाती। अन्य प्रान्तीयों के लड़के ही इन स्कूलों में बहुतायत से मिलते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि स्कूलों की संख्या बढ़ाई जाय, आजाद कबाइली प्रदेश में शिक्षा का प्रचार किया जाय, छात्र वृत्तियाँ तथा वजीफे देकर गरीबों के बच्चों, जो बहुत बड़ी संख्या में हैं, को प्रोत्साहन दिया जाय यह सब तो सरकार ने नहीं किया। इन्हें 'सभ्य' बनाने के लिये सरकार ने जिस नीति का अनुसरण किया है पाठकों से वह अविदित नहीं है। अब हम इन्हीं समस्याओं को तथा उनको सँभालने के लिये आवश्यक हल को विशद रूप से लिखेंगे।

शेष भारत के साथ ही सीमा प्रान्त भी कृषि जीवी देश है। वहाँ न तो साधन हैं और न फिलहाल लोगों की मनोवृत्ति ही ऐसी है कि कोई बड़ा उद्योग धन्धा चलाया जा सके। सीमा प्रान्त में बड़े बड़े शहर या नगर नहीं वरन गाँव और नगले हैं। निवासी वणिक व्यापारी नहीं बल्कि किसान और मजदूर हैं। मजदूर भी मिल या कारखानों के नहीं बल्कि खेतों के। आर्थिक विचार से हम पठानों को दो प्रमुख वर्गों में बाँट सकते हैं। १ पहला वर्ग तो उन जमींदार खानों का है जिनके अधिकार में जमीन है और जो कृषक वर्ग से लगान वसूल करते हैं। (२) दूसरा वर्ग किसानों का है। उनकी दशा एक प्रकार से बहुत हीन है। उन्हें लगान देनी पड़ती है। बेगार में अपने जमींदार की जमीन जोतनी पड़ती है।

हम कह आये हैं हजारों एकड़ जमीन उपजाऊ होते हुये भी वन्ध्या पड़ी है। उसमें बीज नहीं बोया जाता। सबसे बड़ा अभाव पानी का है। यहाँ पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि सीमा प्रान्त स्थाई जिलों और आजाद कबाइली दो भागों में प्रमुख रूप से बँटा हुआ है। स्थाई जिलों में सिंचाई के कुछ साधन अब सरकार ने बनवा दिये हैं यथा नहरें। इसी प्रकार की आशा पाठक आजाद कबाइली देश में नहीं कर सकते। यहाँ जो थोड़ी बहुत पैदावार होती है उसमें पानी के

साधन हैं—कुएँ, जलस्रोत या प्रपात। यह साधन पाठक सोच सकते है कितने हीन और अपूर्ण हैं। यदि इस हजारों एकड़ जमीन में पानी देकर सिंचाई की जाती और कृषकों को खेती करने की सुविधायें दी जातीं तो अनाज और फल वहाँ बहुतायत से उत्पन्न हो सकते। स्थाई जिलों में प्रान्तीय सरकार ने नहरें बनाने का कुछ काम किया जरूर है परन्तु अर्थाभाव उसे यह सब नहीं करने देता। अर्थाभाव के जहाँ अन्य अनेक कारण हैं वहाँ एक कारण यह भी है कि सेना पर सीमा प्रान्त में बहुत अधिक आवश्यकता से भी अधिक खर्च किया जाता है। अर्थाभाव की पूर्ति फिलहाल आशा की जाती है केन्द्रीय सरकार करेगी और फिर कोढ़ में खाज। एक तो वैसे ही पानी की कमी है, ऊपर से उसका दुरुपयोग भी किया जाता है। जिस पानी ने लाखों भूखे पठानों को रोटी दाल का सामान जुटा दिया होता, वही पानी सैनिकों की छावनी तथा अफ़सरों के बँगलों में बाग़ लगाने में बरबाद किया जाता है। यह सच है कि बाग़ लगाना अच्छा है, परन्तु वह क्या तब जब दूसरी ओर लोग प्यास से तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ रहे हों? यह तो दूसरे के घर में आग लगाकर हाथ सेंकना हुआ। बारा नदी के पानी को पेशावर की छावनियों में ले जाकर लुटाया जाता है। दूसरी ओर अफ़रीदियों का प्रान्त प्यासा ही पड़ा रहा है। सच तो यह है कि यदि पैदावार बढ़ाने के प्रयत्न किये गये होते तो अवश्य ही बहुत से झगड़े बन्द हो जाते। जो लोग आज मार पीट और उपद्रवों में व्यस्त हैं, और जिन्हें शान्त रखने में सरकार की बहुत बड़ी जन-धन हानि होती है, वे ही आकर शान्ति पूर्वक कहीं न कहीं बस जाते और सीमा प्रान्त निस्सन्देह शान्त हो जाता। यह तर्क कि—'नहीं उपद्रवी पठान किसी भी प्रकार शान्त होकर नहीं बैठेंगे, लड़ना-भिड़ना तो उनका काम ही है, झूठा और आधार हीन है। मोहमंद और कुछ अफ़रीदी इसके प्रमाण हैं। चारसद्दा के मैदान में जहाँ सिंचाई की सुविधा है मोहमंद आकर बस गये हैं। उसी प्रकार पेशावर की तहसील और कोहाट जिले में अफ़रीदियों ने शान्ति पूर्वक रहना स्थिर कर लिया है।

सीमा प्रान्त में सिंचाई—

अब हम सीमा प्रान्त के दो भागों का अलग-अलग विवरण न करके सम्मिलित रूप से ही प्रान्त की सिंचाई के साधनों, और उनमें आवश्यक सुधारों की चर्चा करेंगे। हम कह आये हैं कि सिंचाई के साधनों में नहरें, कुएँ, स्रोत, धारायें आदि हैं। पहले नहरों को ही लें।

नहरें:—सीमा प्रान्त के पड़ोसी प्रान्त पंजाब को देखते हुये वहाँ नहरें बहुत ही कम हैं। उनकी संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। सन् १६३८ की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार प्रमुख नहरों द्वारा सींची गई कुल जमीन ४,६०,८६६ (चार लाख, साठ हज़ार, आठ सौ निन्यानवे) एकड़ थी। नहरों के बनाने की, प्रत्यक्ष और परोक्ष कुल लागत मार्च सन् १६३८ ई० तक ३,२०,७८,४७६ (तीन करोड़ बीस लाख, अठत्तर हज़ार चार सौ छहत्तर) रु० थी, सब प्रत्यक्ष और परोक्ष साधनों से कर इत्यादि की आमदनी २४,६६,८६६ रु० (चौबीस लाख, छयासठ हज़ार आठ सौ निन्यानवें) थी। चालू खर्च ८,६६,६७६ रु० (आठ लाख, निन्यावें हज़ार नौ सौ उन्हासी रु०) हो गया था, और लागत मूल पर ब्याज का रुपया ११,२१,६५६ (ग्यारह लाख, इक्कीस हज़ार, छः सौ उनसठ) था। इस कुल जमा खर्च के बाद जो लाभ हुआ था वह ४,४५,२६१ रु० (चार लाख, पैंतालीस हज़ार, दो सौ इकसठ रु०) था। इतर स्वात नदी से जो नहरें निकाली गई थीं उनके द्वारा सींची गई जमीन कुल मिलाकर १,५७५४५ एकड़ थी। इस व्यवस्था से सरकार को कुल लागत पर का १२'८७ प्रतिशत लाभ हुआ था। लाभ का यह विचार कर इत्यादि से आई हुई आमदनी को मान कर किया गया था। काबुल नदी से जो नहर चली थी उसने कुल ५०,२३६ एकड़ जमीन को पानी दिया और उससे हुआ लाभ कुल लागत पर ८'६५ प्रतिशत था। यह लाभ भी ऊपर जैसा ही था। अपर स्वात नदी की नहर से सींची जानेवाली भूमि २,१२,६३२ एकड़ थी, इसका अकेला चालू खर्च ३,६४,३१२ रु० (तीन लाख, चौरानवे हज़ार, तीन सौ बारह रु०) था।

उपरोक्त साधनों से ही कुल लागत पर जो लाभ हुआ वह कुल मिला कर १'६५ प्रतिशत था।

ये तीन नहरें यानी इतर स्वात नहर, काबुल नहर, और अपर स्वात नहर, पेशावर और मरदान के जिलों में सिंचाई करती हैं और इनके द्वारा सींचा गया कुल प्रदेश ४,२०,४१६ (चार लाख, बीस हज़ार, चार सौ सोलह) एकड़ था। चौथी उल्लेखनीय नहर पहाड़पुर की। यह डेरा इस्माइलखाँ के जिले में चलती है। सन् १६३७—३८ में इससे कुछ भी आर्थिक लाभ सरकार को नहीं हुआ। हाँ इसके द्वारा सींची गई जमीन अवश्य ४०,००४ एकड़ थी। उपरोक्त विचार ही से देखने पर इस नहर के द्वारा १'०२ प्रतिशत की हानि हुई। कुल मिलाकर देखने पर विदित होता है कि नहरों के बनाने का काम सचमुच ही बढ़ रहा है। परन्तु पाठक यह देख रहे होंगे कि यह नहरें प्रधान रूप से क्या लगभग पूर्ण रूप से ही स्थाई जिलों में बसी हैं। कबाइली प्रान्त में इनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। क्या सरकार उस ओर ध्यान देगी ? पेशावर और कोहाट के बीच में अब भी बहुत उर्वरा भूमि पानी के अभाव में पड़ी-पड़ी अपनी उत्पादक शक्तियों को मिटा रही है।

कुएँ और अन्य साधन—

नहरों के बाद अब हम कुओं की ओर पाठकों को ले चलें। हमारे युक्त प्रान्त की भाँति सीमा प्रान्त में भी सिंचाई के लिए कुओं से काम लिया जाता है। और सच पूछा जाय तो अभी तक तो यह कुएँ ही बहुत बड़े भू-भाग को सींच रहे हैं। सीमाप्रान्त के कुएँ फ़ारसी ढंग के हैं जिन्हें 'अरहट' (Arhat) कहते हैं। इसमें पशुशक्ति का प्रयोग होता है। कुओं के बाद नम्बर स्रोतों का है। यह सोते स्थाई जिले और आज़ाद कबाइली प्रान्त में बहुतायत से फैले हुए हैं। कहीं-कहीं तो ये बड़े काम के सिद्ध हुये हैं। कोहाट के सोते नमूने के लिये पेश किये जा सकते हैं। एक बहुत बड़ा भू-भाग इनके द्वारा सिंच कर अनाज और फल इत्यादि उत्पन्न करने के लिये तैयार होता रहता है। लेकिन कुओं की दशा भी शोचनीय है। एक तो यह कुएँ संख्या में

बहुत कम हैं दूसरे जरूरत की जगहों पर नहीं हैं। लोग पुराने खुदे कुओं को ही चलाते रहते हैं। इस दिशा में आशा की जाती है कि सरकार कृषकों को रुपया देकर वार्षिक सहायता करे और प्रोत्साहन दे कि वे और भी अधिक कुएँ उचित स्थानों पर बढ़िया ढंग से खोदें। अभी यह सम्भव नहीं दीखता। किसी दिन जब अपनी राष्ट्रीय सरकार बन जायगी, जब स्वतन्त्र पठानिस्तान का निर्माण हो जायगा तो निस्सन्देह ही सुदूर गाँवों में भी बिजली पहुँच सकेगी और तब पम्पों व नलों से पानी निकाला जा सकेगा।

जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ, तथा अनाज का अभाव विकराल बनकर उठ खड़ा हुआ तो 'अधिक अन्न उत्पन्न करो' के नारे लगने लगे, स्थान-स्थान पर पर्चे चिपकाये गये। दीवारों पर लिखा गया 'अधिक अन्न उत्पन्न करो' (Grow more food) अधिक अन्न उत्पन्न करने के लिए आवश्यक था कि अधिक साधन उपस्थित किये जायँ। इसी आवश्यकता को समझ कर सीमाप्रान्त में भी सिंचाई की ओर अधिक नहरें खोदने की योजना बनाई गई। योजना थी पाँच नहरों को बनाना। इनमें दोआब नहर की शाखा 'नई मिचनी शाखा' (New Michni Branch) जो योजना में प्रमुख थी, अब बनकर तैयार हो चुकी है। इसका लागत खर्च २,८३,६७५ रु० (दो लाख, तिरसी हजार, छः सौ पचहत्तर रुपया) हुआ है, और आशा यह की जाती है कि इसके द्वारा लगभग ५००० एकड़ भूमि को सींच कर उपजाऊ बनाया जा सकेगा। इसी प्रकार की एक दूसरी योजना 'जोशेख लिंकिंग योजना' (Joesheikh Linknig Scheme) है जो अभी विचाराधीन है। जब उस पर विचार हो जायगा और वह विचार भी कार्यान्वित हो जायगा तो आशा की जाती है कि लगभग २०,००० एकड़ भूमि को पैदावार करने के योग्य बनाया जा सकेगा। केन्द्रीय सरकार ने वचन दिया था कि इस योजना में जो खर्च होगा उसका आधा वह स्वयं उठा लेगी। बारा नहर को आगे बढ़ाने की भी एक दूसरी योजना बनाई जा रही है। पहाड़पुर नहर की टक्करबाह को सुधारने की उसे

नये रूप से बनाने की तथा काबुल नदी की नहर को विकास देने की योजनाओं को पूरा करने के लिये सरकारी बजट में स्थान दिया गया है। इसके लिये रुपया निश्चित किया गया था। काबुल वाली नहर के बन जाने से आशा है १५,००० एकड़ भूमि को सींचा जा सकेगा, और इस प्रकार प्रान्त की बहुत बड़ी आवश्यकता पूरी की जा सकेगी।

हम जानते हैं कि सीमाप्रान्त की पैदावार इतनी अच्छी नहीं है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। सीमाप्रान्त की खेतीबारी इस दशा में बहुत दरिद्र है। वह अपने ही लोगों का पेट नहीं भर सकती। ऐसी दशा में दो ही रास्ते रह जाते हैं। पहला तो यह कि जो मुर्गियाँ अन्डे और माँस सीमाप्रान्त दूसरे देशों और प्रान्तों को देता है उनके बदले में उसे अनाज मिलना चाहिये। दूसरा यह कि सीमाप्रान्त को खुद ही अपनी कृषि को सुधार का अपनी रोटी का सवाल हल करना चाहिये। इनमें से पहले को विचार कर देखने से विदित होता है कि ऐसे समय में जब सभी ओर अन्न का भारी अभाव है यह सम्भव नहीं कि कोई देश अपने बच्चों को भूखा रखकर सीमा प्रान्त के भूखों को खिला सके। अगर आज से चार महीने पहले जैसी दशा होती तो सम्भव था कि हिन्दुस्तान खुद एक जून खाकर दूसरी जून की सीमाप्रान्त को दे सकता। परन्तु जब बँटवारा हो गया है और सीमा प्रान्त चाहता है कि अपना स्वतंत्र पठानिस्तान बनाये तब तो शायद उसके सजातीय पाकिस्तानी भाई भी उसे अन्न दे सकेंगे, इसमें सन्देह है। जो भी हो जब स्वतंत्ररूप से पठानिस्तान बनाने की योजनायें हो रही हैं तो यह मान लिया जा सकता है कि भविष्य में सीमा प्रान्त अपनी रोटी की आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा। पहले विचार से यदि यह भी मान लें कि कोई देश सहायता दे सकेगा तो युद्ध काल में जब आयात निर्यात की सुविधायें नहीं रहेंगी, जैसा कि पिछले युद्ध में नहीं रही थी, तो क्या सीमा प्रान्त को भूखा ही मरना पड़ेगा। हर दशा में यही उचित जान पड़ता है कि पठानों को स्वावलम्बी बनना चाहिये। और यह असम्भव भी नहीं है। प्रकृति की ओर

से जरूरत से भी ज्यादा भूमि जोतने और बोने के लिये मिली है। अब आवश्यकता इस बात की है वह इस भूमि पर अपने परिश्रम से काम करके अन्न पैदा करे। तो आशा है, कृषि में बहुत सुधार हो जायगा।

प्रारम्भिक शिक्षा, गाँव में प्रचार, सफाई अस्पताल, रूढ़ियों का बहिष्कार, बेकारी में कमी करना, तथा चरित्र सुधार पर जोर देना आदि काम तो आर्थिक उन्नति के लिये आवश्यक हैं ही, इसके साथ ही कुछ खंडन कार्य भी जरूरी है। स्वतंत्र पठानिस्तान की प्रजा सत्तात्मक सरकार हो या पाकिस्तान की डिक्टेटरशाही हो, हम दोनों से ही प्रार्थना करते हैं कि उसे सबसे पहले कुछ अन्य विभागों में सुधार करना चाहिये जहाँ आवश्यकता से अधिक खर्च हो जाता है। बर्नीज़ के शब्द पाठक भूले न होंगे :—

"यदि अपनी सेना का चौथाई भाग भी रेगिस्तान को सींचने में लगाद तो बची हुई फौज का खर्च उनके लिये आधा कर देना सम्भव हो सकेगा।"

यह तो रही फौज की बात। पुलिस में भी इसी प्रकार अन्धा धुन्ध खर्च किया जाता है। पिछली लड़ाई के छिड़ने के पहले प्रान्त में जो फालतू (Additional) पुलिस रहती थी वह २०१ थी। लेकिन युद्ध के बीच में बढ़ा कर कितनी अधिक करदी गई है यह विचारते ही आश्चर्य चकित रहना पड़ता है। आज यह फालतू पुलिस ६,७७५ है। सीमा प्रान्त जैसे छोटे प्रान्त में यह संख्या बहुत अधिक है। युद्ध के समय इस पुलिस को बहुत से कामों के लिये रखा गया था। यथा सीमान्त की रक्षा करना, अपराधियों को जो गैर कानूनी घोषित कर दिये गये हैं गिरफ्तार करना, फौज छोड़कर भाग आने वाले सैनिकों को पकड़ना या गैर कानूनी भगोड़ों की सँभाल करना। इस फालतू पुलिस का खर्च भी तो थोड़ा नहीं है। ६१'४१ लाख रुपयों में से जो इसका खर्च है ६० प्रतिशत खर्च केन्द्रीय सरकार को देना पड़ता है। शान्ति के दिनों में भी ६५०० की फालतू पुलिस रखना कहाँ

की बुद्धिमानी हो सकती है जब कि दूसरी ओर लोग खानेको भी मोहताज हों। हम यह मान सकते हैं कि युद्ध काल में इस तरह की पुलिस रखने में यह उद्देश्य उचित ही था कि हजारों बेकारों को काम मिल गया। और प्रान्त में शान्ति रह सकी। लेकिन शान्ति के समय हम यही कहेंगे कि पुलिस को कम करके उन साधनों में बढ़ती की जाय जिनसे लाखों बेकार कारबार वाले हो जायेंगे। चूँकि हम कृषि की बात कर रहे हैं इसलिये कहेंगे कि लोगों को खेती के काम की ओर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहिये।

हाइड्रो एलेक्ट्रिक या बिजली

आज के युग में बिजली का महत्व सर्वमान्य सा हो गया है। जहाँ तक इससे काम कम लोगों का हो जाता है वहाँ अच्छा और सहल भी हो जाता है। अभी हिन्दुस्तान में इसे नगरों तक ही सीमित रखा गया है। कुछ उद्योग धंधों ही में इसका इस्तेमाल होता है। खेती ही अभी अछूती है। वहाँ वही हल, बैल और मनुष्य का परिश्रम काम करता है। एक तो कुल हिन्दुस्तान में ही बिजली पैदा करने की योजनायें कम हैं फिर भला सीमा प्रान्त में हम अधिक की आशा कर ही कैसे सकते हैं।

सीमा प्रान्त में हाइड्रो-एलेक्ट्रिक स्कीमों में सबसे पहली और बड़ी मालकंद की है। इस दिशा में यह प्रयत्न बहुत ही महत्वशाली है। यह योजना प्रान्तीय सरकार की ओर से बनी थी। सम्भव था कि अगर किसी रईस संस्था या कम्पनी का मुँह ताकते रहते (कि वह कोई ऐसी योजना बनवा दे) तो शायद अभी तक प्रान्त को यह महान् वरदान न मिल पाता। जब इसे आरम्भ किया गया तो अन्दाज लगाया गया कि इसका खर्च जाकर कहीं ४२, २७, २०५ रु० (बयालीस लाख, सत्ताईस हजार, दो सौ पाँच रुपया) बैठा था। स्थानीय सरकार ने इसे अपने सन् १९३४-३५ के बजट में मंजूर भी कर लिया था। इसका 'पावर हाऊस' अपर स्वात नहर पर बना हुआ है। मालकंद के क़िले के पास जहाँ नहर बेनून सुरंग से निकलकर दारागई नुल्ला में

उतरती है वहीं यह पावर हाऊस स्थित है। स्वात नदी को सुरंग में होकर जब निकाला जाता है तब उसका बहाव बढ़ जाता है। एक सेकेन्ड में १००० घन फीट पानी निकलता है। पचास फीट की ऊँचाई से जब यह पानी गिरता है तो १६,००० K. W. विद्युत शक्ति दिन रात अविराम रूप से साल भर तक पैदा होती रहती है। इस कारखाने से फिर शक्ति छोटे छोटे (सब स्टेशनों) पावर हाऊसों में भेजी जाती है। ये पावर हाऊस मरदान, नोशेरा पेशावर छावनी और चारसद्दा में स्थित हैं। इन छोटे पावर हाऊसों से ही नोशेरा, रिसालपुरा और और पेशावर छावनी को फोजों के काम के लिये बिजली जाती है। मरदान, होती, नोशेरा, चारसद्दा और अन्य अनेकों पास के गाँव में भी बिजली सीधे यहीं से ले जाई जाती है। खेती, उद्योग धंधों प्रकाश आदि के लिये बिजली बहुत सस्ती दर पर मिल जाती है। सम्भव था कि यह काम आगे भी चलता और कुछ नई योजनायें भी बनाई जातीं लेकिन इस द्वितीय महायुद्ध ने सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। जरूरी सामान का मिलना कठिन हो गया और जिसके कि कारण बिजली को सुदूर गाँवों में ले जाना सम्भव नहीं हो सका। पिछली कुछ वर्षों से लगान में बढ़ती करदी गई है। सरकार को इससे मिलने वाली लगान में से आवश्यक खर्च निकाल कर सन् १९४५ में बढ़ती १,६२,००० रु० (एक लाख, बासठ हजार रुपया) थी जब कि इसके पहले की साल १९४४ में कुल बढ़ती ८९,००० रु० (नवासी हजार रुपया) थी। इससे विदित होता है कि बिजली की शक्ति से कितनी आमदनी बढ़ गई। बढ़ती एक ही साल में लगभग दूनी हो गई। सन् १९४६ में बढ़ती लगभग १,९८००० रु० (एक लाख, अट्ठानवें हजार रुपया) थी। सन् १९४१-४२ की साल में बढ़ती अधिक नहीं थी। लगभग उतनी ही थी जितना व्याज लागत मूलधन पर देना होता है। आशा की जाती है कि अगले वर्षों में इस बिजली की योजना से बहुत आर्थिक लाभ होगा। और जब युद्ध समाप्त हो गया है तो हम आशा करते हैं कि भावी सरकार इस दशा में प्रयत्नशील रहेगी कि बिजली

बनाने के नये कारखाने खुलें और जिससे उद्योग धन्धों में भी उन्नति हो सके। एक ओर जहाँ लाखों आदमियों को काम मिल सकेगा वहीं दूसरी ओर सीमाप्रान्त स्वावलम्बी भी बन सकेगा।

सीमा प्रान्त की खनिज सम्पत्ति

निस्सन्देह कृषि कार्य के लिये सीमा प्रान्त बहुत उपयुक्त नहीं है। प्रान्त का बहुत बड़ा भू-भाग पहाड़ी है, खोदकर खेती की जा सके यह सम्भव नहीं है। इसके लिये हम प्रकृति को दोषी कह सकते हैं। लेकिन जहाँ इस दिशा में प्रकृति ने पठान के साथ अन्याय (?) किया है वहाँ दूसरी ओर उसने खनिज सम्पत्ति भी बहुत बड़े परिमाण में और संख्या में दे रखी है। नीचे की पंक्तियों में हम सीमा प्रान्त की खनिज सम्पत्ति का विवरण देंगे। खोज कार्य प्रान्त में बहुत कम हुआ है और इसलिए जिस सम्पत्ति की चर्चा हम करेंगे, पाठक निश्चित समझें वही बस नहीं है। जाने कितने प्रकार के कितने खनिज पदार्थ जमीन की पर्तों में दबे पड़े हैं। नीचे का विवरण हम सन् १६२६ की उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के आर्थिक और औद्योगिक साधन नामक छपी रिपोर्ट में से दे रहे हैं।

(१) नमक—

कोहाट जिले के मध्यस्थ पहाड़ी सिलसिले में नमक की बड़ी बड़ी खानें हैं। ये खानें कुशालगढ़ से नीचे बहादुरखेल से लेकर दोपर की पहाड़ियों तक फैली हुई हैं। इस प्रकार एक प्रकार से नमक की इन खानों ने पूरे कोहाट जिले को ही घेर कर रख लिया है। इनका सिलसिला लगभग पचास मील लम्बा और अटूट रूप से क़रीब बीस मील चौड़ाई में छाया है। संसार की नमक की सबसे बड़ी चट्टानों में, इन खानों का नाम गिना जाता है। जिले में से नमक तीन स्थानों पर खोदकर निकाला जाता है। ये स्थान हैं—जट्टा, बहादुरखेल और करका। ये तीन भारत सरकार के 'नमक विभाग' के अधिकार में हैं। अभी जिस गति और जिस परिमाण में नमक मिल रहा है उसे देखकर अनुमान किया

जाता है कि यह खानें कभी समाप्त नहीं हो सकेंगी। जिन तीन स्थानों पर नमक निकाला जा रहा है उनकी स्थिति और फैलाव का विवरण नीचे दिया जाता है।

(१) जट्टा का फैलाव—शाह डरंग से लेकर डोपर तक है तथा फिर डोपर से लेकर करार तक और करार से सारदग तक।

(२) बहादुर खेल की खान का फैलाव—बहादुर खेल के पूर्व में यह चट्टान मालखंडो तक फैली हुई है। इसके पश्चिम में गोल तक तथा उत्तर में मंजेली से सारदग तक है। दक्षिण में सुदूर लताम्बर तक इसका विस्तार है। खास बहादुर खेल पर नमक की पर्तें आठ मील की दूरी तक फैली हुई देखी जा सकती हैं। इनकी चौड़ाई क़रीब चौथाई मील है और गहराई एक स्थान पर १००० फ़ीट तक है।

(३) करक की खान का फैलाव—इस वर्ग में नमक की पर्तें सुदूर २३ मील की दूरी तक फैली हुई पड़ी हैं।

नमक निकालने के यह तीन प्रमुख अड्डे हैं। इनके अलावा अनेकों स्थानों पर बहुत से और भी अड्डे हैं जिनका वर्णन देना सम्भव नहीं है। ये तीन इसलिए प्रमुख हैं चूँकि बेचने के लिए नमक केवल यहीं पर निकाला जाता है, बाकी अड्डे छोटे और खुद के स्तैमाल के लिए हैं। लेकिन इन बचे हुये अड्डों पर भी सरकारी नियन्त्रण है, वह इसलिये ताकि चोरी न होने लगे और लोग सरकार को ठगने लगें।

ठीक उन स्थानों पर जहाँ नमक निकाला जाता है खुले हुये छेद कर लिये गये हैं परन्तु जट्टा वाली खान में पत्थर या जमीन की ऊपरी पर्त को हटाने में कुछ कठिनाई होती है। इसलिए सरकार के नमक विभाग ने निश्चय किया है कि निकट भविष्य में गड्ढे खोदकर जगह बना लेने पर नमक निकालने वाली पद्धति छोड़ कर अब नियमित रूप से खोदने का काम जारी रखना चाहिये। जट्टा और बहादुर खेल में तो खुदाई आदि से सुरंग फोड़कर की जाती है। लेकिन करक में घनों की चोट से चट्टान तोड़-तोड़कर नमक निकाला जाता है। व्यापारी या ठेकेदार

लोग जो नमक की इन खानों का ठेका लेते हैं सारा इन्तजाम खुद ही करते हैं। मजदूर इकट्ठे करना, लाने ले जाने के साधन योजना आदि जितनी भी प्रकार की आवश्यकताएँ होती हैं वे व्यापारियों या इन ठेकेदारों के मत्थे पड़ती हैं, सरकार को इनसे कोई सरोकार नहीं है। सरकार को तो केवल १ रुपया ४ आना प्रति मन के हिसाब से कर या लगान जो कहें, मिलता है। (स्मरण रहे यह सन् १९२९ के पहले था।)

प्रति वर्ष अनुमानतः जितना नमक इन खानों से निकाला जाता है, उसके आँकड़े इस प्रकार होंगे।

(१)	जट्टा	... ... ४,५०,०००	(चार लाख, पचास हजार) मन। स्मरण रहे इस सिलसिले में सबसे अधिक नमक देने वाली खान यही जट्टा की है।
(२)	बहादुर खेल	... १,००,००० मन।	दूसरा नम्बर पाठक देखते हैं बहादुर खेल का है।
(३)	करक	... ३०,००० मन।	सबसे कम।
	कुल	५,८०,००० मन।	हम कह आये हैं कोहाट की नमक की खानें संसार की सबसे बड़ी खानों में से हैं।

कोहाट जिले की खानों से निकलने वाला नमक भूरे रंग का होता है। जिसके टुकड़ों में काँच कैसे पारदर्शक धब्बे होते हैं। गुण में यह नमक बहुत बढ़िया नहीं है। खेवरा की मेयो की खानों तथा कालबाग (पंजाब) की नमक खानों से जो नमक निकलता है वह इससे अपेक्षाकृत उत्तम है। कोहाट का नमक सिन्धु पार के जिलों में तो काम आता ही है, कुछ परिमाण अफगानिस्तान और सीमा प्रान्त की सीमा पर स्थित कबाइली प्रान्त में भी भेजा जाता हैं।

[२] लोहा—

लोहे के विचार से सीमा प्रान्त अत्यन्त साधारण है। लोहा बहुत ही कम मिल सका है। इसमें भी ब्रिटिश शासित प्रान्त में तो एक भी

खान नहीं मिली है। हाँ आज़ाद कबाइली प्रदेश में अवश्य कुछ खानें है जिनमें कच्चा मिश्रित लोहा मिलता हैं। ये खानें निम्नलिखित स्थानों में हैं:—

(१) सुलेमानी पहाड़ियाँ—(वज़ीरिस्तान में)
(२) वजीरी पहाड़ियाँ—(कोह-ए-मसूद में)
(३) बजौर—(पेशावर के उत्तर में)

इन तीनों जगहों से किसी समय अच्छी तादाद में लोहा मिल जाता था। उस समय कच्ची धातु को कोयले से गर्म करके लोहा तैयार किया जाता था और यह परिमाण अच्छा था। परन्तु एक यह तादाद घटने लगी है। उतना लोहा अब नहीं मिल पाता। इस कमी का कारण यह है कि जहाँ जहाँ लोहे के खाने हैं वहाँ आस-पास कोयला नहीं है और यह हम जानते हैं कि लोहे को साफ करने के लिये कोयला आवश्यक रूप से चाहिये। कोयले की इस कमी के कारण भविष्य में भी कभी अच्छी तादाद में लोहा निकाला जा सकेगा ऐसा सम्भव नहीं दीखता। तात्पर्य यह कि इस प्रान्त को लोहे के लिये दूसरों का ही मुँह देखना पड़ेगा।

(३) सुरमा :—

सीमाप्रान्त में थोड़ा बहुत सुरमा भी मिलता है। यह धातु हजारा ज़िले के बकोट नामक स्थान पर मिलती है। परन्तु इसका परिमाण भी बहुत कम है। अभी कुछ समय पूर्व खोज करने के लिये कुछ खानों की खुदाई शुरू की गई थी परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं हो सका। थोड़ा बहुत सुरमा बजौर नामक स्थान पर भी पाया गया। परन्तु इसकी उत्पत्ति भी पहले के ही समान बहुत कम है।

(४) सोना :—

मिट्टी या धूल से मिली हुई सोने की कच्ची धातु भी प्रान्त में एक-दो स्थानों पर मिली हैं। काबुल नदी और सिन्धु नदी के गर्भ में कहीं कहीं सोना मिला है। और निस्सन्देह ही कुछ लोग मिट्टी को धो और छान कर कुछ सोना निकाल लेते हैं। इन नदियों में इस प्रकार सोना

मिलने की बात से हम एक निश्चय पर पहुँचते हैं। वह यह कि जिन पहाड़ियों से नदियाँ निकलती हैं वहाँ पर सोना जरूर होगा। यदि पहाड़ियों में न होगा तो जिस मार्ग से यह नदियाँ बहती हुई ब्रिटिश राज्य में उतरती हैं, उसमें कहीं ऐसा स्थान होगा जहाँ सोना मिलता हो। सीधे-सीधे कच्चे सोने को बाहर भेज सकना अभी सम्भव नहीं दीखता और साथ ही साफ़ करने के साधन भी बहुत कम हैं। तात्पर्य यह कि सीमाप्रान्त में सोना न तो अधिक है, और न जो है उसका अच्छी तरह उपयोग किया जा रहा है।

(५) प्लैटीनम :—

काबुल और सिन्धु नदियों के किनारों पर गर्भ में जहाँ-जहाँ सोना मिलता है वहीं-वहीं उसके साथ प्लैटीनम के कण भी मिलते हैं। सच बात तो यह है कि यह धातु बहुत कम परिमाण में पाई जाती है। यह परिमाण इतनी कम है कि साफ़ करके वह न कुछ के बराबर ही मिल सकी है। और साथ ही जो आदमी सोने को साफ़ करते हैं वे भी बड़ी लापरवाही करते हैं कि सोना साफ़ करते समय प्लैटीनम के कणों को वे बहाकर फेंक देते हैं।

(६) गन्धक :—

थोड़ी तादाद में गन्धक भी पाया जाता है। कोहाट के जिले में जो नमक की खानें मिलती हैं उन्हीं के साथ गन्धक के कण भी पाये गये हैं। यह गन्धक मुल्ला सराय, पनोबा, असपीना और नकबन्द में गुम्बत के समीप मिला है। सीमाप्रान्त में जब सिक्ख राज्य था तभी कुछ गन्धक निकालने का काम हुआ था। उस समय बारूद बनाने के लिये गन्धक का उपयोग किया गया था। थोड़ा बहुत बाहर भी भेजा जाता था। परन्तु इधर की सालों में उसकी उपेक्षा रही है। किसी भी व्यापारिक कम्पनी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। खोज करनेवालों का अनुमान है कि डेराइस्माइल खाँ के सुलेमानी पहाड़ों में भी कुछ गन्धक पाया गया है। यह गन्धक खरिया मिट्टी के साथ मिलता है।

(७) खरिया मिट्टी :—

खरिया मिट्टी भी एक खनिज पदार्थ है जो सीमाप्रान्त में अच्छे परिमाण में मिलती है। कोहाट जिले के पहाड़ी भू-भाग में यह बहुतायत से मिलती है। इसकी तादाद यहाँ इतनी अधिक है कि चाहे जितने गढ्ढे खोद कर चाहे जितनी मिट्टी निकाली जा सकती है, परन्तु कठिनाई तो यह है कि इसे निकालने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। कहीं-कहीं पर नमक की चट्टानों के साथ भी खरिया मिट्टी मिलती है। परन्तु नमक के साथ मिलने वाली मिट्टी बहुत ही घटिया है। कारण कुछ खराब मिलावटों के कारण इसका रंग दूधिया न रह कर भूरा और बादामी है। यह खरिया मिट्टी व्यापार के लिये बड़े महत्व की चीज़ है। इसका चूरा रेत कर लेने पर एक प्रकार का पलस्तर बड़ी आसानी से बन जाता है।

(८) चूना:—

सीमा प्रान्त में पृथ्वी के गर्भ का एक भी स्थान ऐसा नहीं जहाँ किसी न किसी शक्ल में चूना न मिलता हो। लेकिन इतना अधिक मिलने पर भी शुद्ध चूना कठिनाई से ही मिलता है, इस कारण इसका उपयोग बहुत नहीं हो पाता। सारे प्रान्त में पहाड़ियों से चूना निकलता है। लेकिन किसी प्रकार से वह बाहर नहीं भेजा जाता। प्रान्त की ही खपत उससे हो पाती है। कई जिलों में चूना मिलता है, परन्तु जला कर जो तेज़ चूना बनता है वह सर्वथा प्रादेशिक उपयोग में ही आजाता है, इसलिये आवश्यक नहीं कि अलग-अलग इनके नाम गिनाए जायँ। जिन स्थानों पर शुद्ध चूना बड़ी तादाद में पाया जाता है वे नीचे लिखे हैं:—

(१) पेरा, जानी खेल, डोमेल और खजूरी—(बन्नू जिले में)
(२) चिरात की पहाड़ियाँ, नौशेरा तहसील—(पेशावर जिले में)
(३) बहादुर खेल—(कोहाट जिले में)
(४) पहाड़पुर—डेरा इस्माइल जिले में)

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि चूना सीमा प्रान्त में बहुत मिलता है।

(९) पुटेशियम क्लोराइड (Potassium chlorride):—

कोहाट के बहादुर खेल प्रदेश में जहाँ नमक मिलता है वहीं पुटेशियम क्लोराइड भी बहुत बड़ी तादाद में मिलता है। अधिक तादाद में मिलने के साथ ही उसमें बहुत कुछ शुद्ध मिलता है और कुछ नमक के साथ मिला हुआ भी। लेकिन इसकी ओर लोगों का ध्यान अधिक नहीं है। व्यापार के विचार से इसकी खुदाई बहुत कम हो रही है।

(१०) पुटेशियम नाइट्रेट (Potassium Nitrate):—

पुटेशियम क्लोराइड की तरह ही पुटेशियम नाइट्रेट भी सीमा प्रान्त में खूब मिलता है। अनेक स्थानों पर इसके घर हैं। यहाँ पर पुटेशियम नाइट्रेट शुद्ध रूप में न निकल कर शोरे के रूप में मिट्टी के के साथ मिला हुआ मिलता है। परन्तु कहने लायक एक भी जगह ऐसी नहीं है जहाँ अच्छी तादाद में यह नाइट्रेट शोरे से शुद्ध किया जा सके। साफ करने की छोटी छोटी कंम्पनियाँ पेशावर जिले में कुछ मिलती भी हैं, परन्तु उनके द्वारा होने वाली पैदावार इतनी कम है कि उससे व्यापार का कुछ भी काम नहीं निकल सकता। जो थोड़ा बहुत शोरा साफ किया भी जाता है वह वहीं के कामों में आ जाता है। यथा बारूद बनाना या आतिशबाजी के खिलौने तैयार करना।

(११) संगमरमर:—

पेशावर के निकट यूसुफजाइयों का जो प्रदेश है उसी में मनरी नामक स्थान में एक प्रकार का पीला संगमरमर मिलता है। इसे संग-ए-शाहद मक्सूदी के नाम से पुकारते हैं। कुछ अशुद्ध और मिश्रित रूप में थोड़ा बहुत संगमरमर नोशेरा की पहाड़ियों में भी पाया जाता है। लेकिन यह बहुत अच्छा नहीं है। इन दोनों ही जगहों का पत्थर बहुत घटिया है। इस कारण व्यापारिक दृष्टि से उसके मिलने न मिलने का कोई मूल्य नहीं है।

(१२) स्लेटः—

अबटाबाद के उत्तर पूर्व में जो पहाड़ी सिलसिला है वही पर छोटे छोटे आकार के टुकड़ों में स्लेट भी मिलती है। लेकिन यह भी बहुत घटिया है। न तो (इसके घटिया होने के कारण) इससे छतें ही पाट सकते है और न किसी और ही काम में ले सकते हैं। इस कारण व्यापार में इसका महत्व बहुत कम है।

(१३) सोप-स्टोन (Soap stone):—

सीमा प्रान्त में सोप स्टोन कई स्थानों पर मिलता है। यथा पेशावर के निकट युसूफजाइयों के प्रदेश में शाखोट नामक स्थान पर शिंकी के निकट खजूरी चौकी के पास और बन्नू जमक सड़क पर भी सोप स्टोन मिलता है। बन्नू जमक सड़क के पास तो एक बहुत बड़ी सफेद पत्थर की पहाड़ी है, जो अन्दाज लगाया जाता है, कि सोप स्टोन ही है लेकिन स्लेट आदि की भाँति यह भी अपेक्षित पड़ी है। व्यापार के लिये इसकी खुदाई पूरे उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में कहीं भी नहीं होती।

(१४) फायर-क्ले (Fire clay):—

यह मिट्टी भी यूसुफजाइयों के प्रदेश में शाखोट में मिलती है। इसके अलावा बन्नू जिले के मियाँवली वाले भाग की नामल की पहाड़ियों में भी यह पाई जाती है।

(१५) ऐसबेस्टोज़ः—

ऐसबेस्टोज एक प्रकार का खनिज पदार्थ है जो आग नहीं पकड़ता। सीमा प्रान्त में यह भी बहुतायत से मिलता है। सीमा के उस पार ऐसबेस्टोज की लम्बी लम्बी चट्टानें मिलती हैं और बड़ी से बड़ी तादाद में ऐसबेस्टोज निकाला जा सकता है। देश की बोली (पठान की बोली) में इसे 'संग ए-नशादर' (Sang-i-nashadar) कहते है। औद्योगिक दृष्टि से यह बहुत मूल्यवान् पदार्थ है। इसकी क़ीमत इसके इस गुण में है कि भारी आग में भी यह जलती नहीं है।

इससे बहुत प्रकार के सामान बनाये जाते है, और जहाँ कहीं आग का डर होता है, या अग्निरोधक मसाले की जरूरत रहती है (जैसे भट्ठियों में) वहाँ इसे ही काम में लाया जाता है। जबलपुर की कहकर जो सफेद ईंट बनती है वह इसी की होती है। सीमा प्रान्त में यद्यपि यह पदार्थ खूब मिलता है लेकिन फिर भी इसकी खुदाई और खपत अभी अच्छी नहीं है। इस कारण यह अपेक्षित सा बढ़ा है।

[१६] गेरू (Red Ochre):—

गेरू की उपयोगिता हमें मालूम है कि इससे रँग और रोग़न इत्यादि तैयार किये जाते है। सीमा प्रान्त में यह यूसुफज़ाइयों के प्रदेश में लंडखोर नामक स्थान पर मिलता है। पर कठिनाई यह है अभी तक इसकी पूरी खुदाई नहीं हो रही है।

[१७] 'सज्जी' या 'क्षार':—

सीमा प्रान्त में लगभग सभी ओर धोबी लोग सोडियम या कारबोनेट्स का प्रारम्भिक रूप जो यह सज्जी खार होती है, उसी को लेकर अपने कपड़े आदि धोने के काम में लाते हैं। जिस धरती पर ये रसायन जैसे रेह मिलते हैं वहाँ पानी भरा रहता है और क्षार इस पानी में घुल जाता है। ऐसी अवस्था में फ़िल्टर पेपर से छानकर और पानी को भाप बनाकर उड़ाकर यह खार निकाला जाता है। सज्जी बनाने के कुछ कुछ और भी तरीक़े हैं। कुछ पेड़ों और झाड़ियों की पत्तियाँ एवं डालें जलाकर भी सज्जी निकाली जाती है। इसके लिये सलसोला फेटाइड (Salsola Foetidi) (खरलना) का पेड़ बहुत उपयुक्त है। जब यह झाड़ियाँ या पत्तियाँ जलाई जा सकती हैं तो राख साथ ही कुछ पत्थर जैसा पदार्थ रह जाता है यही सज्जी है। इसे निकाल लिया जाता है।

[१८] सिलिका:—

भूगर्भ विद्या विभाग ने, सुना जाता है (सन् १९२१) हाल

हो ही सिलिका की कुछ खानों का पता चलाया है। कि यहाँ सिलिका दनदानों की शक्ल में मिलता है। यह स्थान हजारा जिले में हबीबुल्ला की गढ़ी के पास है काँच बनाने के लिये सिलका एक प्रधान रूप से आवश्यक पदार्थ है। इसलिये इन खानों का महत्व बहुत बढ़ जायगा यदि यहाँ से निकाल कर सिलिका संयुक्त प्रान्त और उत्तरी भारत के कैम्प के कारखानों के लिये (यथा फीरोजाबाद) भेज दिया जायगा। अब चूँकि गढ़ी हबीबुल्ला से लेकर हवेलियन तक रेल बन गई है, इसलिये सम्भव है भविष्य में कभी हबीबुल्ला की गढ़ी काँच के कारखानों का जबरदस्त केन्द्र बन जाय।

[१९] लिग्नाइट, फिटकरी, मिट्टी का तेल और पीएइया:—

बन्नू और डेराइस्माइल खाँ जिलों के शेख बूदीं पहाड़ी सिलसिलों में लिग्नाइट, फिटकरी, मिट्टी का तेल और पीएइया पाई गई है। परन्तु यह भी बन्द पड़ी है। किसी व्यापार के विचार से इसकी खुदाई नहीं हो रही है।

(२०) मिट्टी का तैल और पैट्रोल—

सीमाप्रान्त में खनिज तैलों में मिट्टी का तैल और पैट्रोल नीचे लिखी जगहों पर मिलता है।

(१) पनोबा, चारलक्की के पास (कोहाट जिले में)

(२) दलवती बाँदा, मारवान की श्रेणियों में (बन्नू जिला)

(३) टाँक तहसील
(४) कुन्डाल
(५) डुरनंडा
} (डेराइस्माइल खाँ जिला)

(६) मुगलकोट, शिरानियों के देश के समीप

इतनी जगहों में तैल और पेट्रोल मिलती है। सन् १९२९ तक सरकार ने लाइसेन्स नीचे लिखी कम्पनियों को इसलिये दिये थे कि वे उपयुक्त स्थान बतावें जहाँ कुएँ खोदे जावें। कम्पनी ये हैं :—

(१) [illegible] पेट्रोलियम को० लि० ।
(२) [illegible] को० लि० ।
(३) [illegible] को० लि० ।

इन [illegible] ने छेद करके कुओं का पता लगाना शुरू कर दिया [illegible] परिणाम विशेष सन्तोषजनक नहीं निकले ।

[illegible] सम्पत्ति रहते हुये भी सीमाप्रान्त अभी [illegible] पहला कारण तो स्वयं कबाइली और अन्य [illegible] और झगड़े जब तक चलते हैं, तब तक [illegible] में कुछ भी सुधार हो सके । यदि यह झगड़े [illegible] जायें, तथा सरकार इस ओर ध्यान दे तो [illegible] द्वारा सीमाप्रान्त की इस सम्पत्ति का सदु- [illegible] जब कि आज 'अपनी सरकार' बनने जा रही [illegible] स्वावलम्बी होकर अपने पैरों पर खड़े होने को [illegible] जरूरी है कि आविष्कार शालाएँ खोली [illegible] वस्तुओं का पता लगायें । इस समय जब कि [illegible] क्लोराइड और पुटेशियम नाइट्रेट, और [illegible] बहुतायत से मिल रहा है तो सरकार को चाहिये कि [illegible] इस ओर ध्यान दे और समुन्नत बनाने का प्रयत्न करे । जो कुछ [illegible] उसे देखते तो यही कहना पड़ता है कि सीमा-प्रान्त की धरती अभी कुमारी ही है ।

वनस्पति भी सीमाप्रान्त की बहुत अधिक है । बड़ी-बड़ी घाटियाँ हैं जिनमें अगणित प्रकार की काष्ट सम्पत्ति मिलती है । चीड़, देवदार जैसी उपयोगी लकड़ी बहुत बड़ी तादाद में उपलब्ध है । इसी प्रकार घाटियों के अलावा बड़े-बड़े वन प्रदेश हैं । लेकिन यह सब भी आवागमन के साधनों के अभाव में यों ही पड़े हैं उनका कुछ भी लाभ मानव समाज को नहीं होता । अगर मालकन्द, कुर्रम, और कगान के प्रान्तों में रेल या मोटर से आने जाने की सुविधायें हो जाती तो निश्चय रूप से इनका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता । इन स्थानों की

आबहवा इतनी अच्छी है कि संसार के श्रेष्ठतम शिमला और नैनीताल वहाँ बन सकते हैं। आवागमन के साधनों को मिलते ही कौन जाने कि सीमाप्रान्त फिर अपने ऐतिहासिक गौरव को पा ले और दुनिया भर की तिजारत का केन्द्र बन जाये।

कुल मिलाकर कहना होगा कि सीमाप्रान्त में खनिज पदार्थ खूब हैं। तब भला यह देश ग़रीब क्यों होगा। वहाँ श्रम भी सस्ता है। ऊनी सूती कपड़े बनाना, खाँड़, गेहूँ, चावल, तमाखू, फल पैदा करना, जानवरों की खालें निकालना, मुर्गी पालना और 'डेरी फार्म' खोलना, जैसे अनेक उद्योग धन्धे हैं जो चलाए जा सकते हैं। जो सोना व्यर्थ ही उपद्रवी कबाइलियों पर रिश्वत में लुटाया जाता है, अगर वह सोना इस ओर सुधार करने में लगाया जाय तो निस्सन्देह ही पठान स्वावलम्बी बन सकेंगे। जहाँ सोना, प्लैटीनम, मिट्टी का तेल और पेट्रोल जैसे मूल्यवान पदार्थ मिलते हैं वहाँ के लोग क्या भूखे मरने चाहिये? अगर इस ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय तो जो स्थान ग़रीब हैं, उनके निवासियों की रोटी का भी इन्तज़ाम बड़ी अच्छी तरह हो सकता है। यहाँ तक कि वज़ीरिस्तान भी जिसे हम सूखा और उजाड़ देखते हैं, बड़ा भारी ख़ज़ाना हो सकता है। सुधार के लिये कुछ सुझाव इस प्रकार रखे जा सकते हैं।

(१) उपद्रवी लोगों को शान्त किया जाय। इसके लिये फ़ौज और पल्टन नहीं, बल्कि भोजन और शिक्षा चाहिये। रेडियो आदि इसमें सहायक होंगे।

(२) जहाँ-जहाँ खनिज सम्पत्ति मिलने की सम्भावना हो वहाँ के लिये निरीक्षण शालाएँ स्थापित की जायँ। लोगों तथा आविष्कारकों को प्रोत्साहन दिया जाय कि वे उत्साह के साथ इस धन का पता लगायें।

(३) रेल, मोटर का प्रबन्ध सामान लाने जाने के लिए होना चाहिये और उसके लिए सड़कों का निर्माण आवश्यक है।

तात्पर्य यह कि जब कृषि के विचार से किसी प्रकार सीमाप्रान्त दरिद्र है, तो सरकार को चाहिये कि वह इस भूगर्भ स्थित सम्पत्ति का

समुचित उपभोग करे और तब निस्सन्देह बदले में अन्न आदि वह दूसरे देशों से पा सकेगी।

सीमा प्रान्त के उद्योग धन्धेः—

फलः—खेती और खनिज सम्पत्ति की भाँति ही उद्योग धन्धे भी उपेक्षित रहे हैं। सरकार ने इनके बढ़ाने और विकास देने के लिये कुछ श्रम किया है, यह कहना कठिन है। जिन दिनों द्वितीय महायुद्ध हो रहा था, दो एक उद्योग धंधे जोर पा गये थे। फौजों के लिये भोजन के प्रबन्ध में जो आवश्यक चीजें आती हैं उन्हीं का धन्धा कुछ चल निकला था। इनमें फल सुखाने का काम प्रमुख रूप से है। हरे फल जैसे, अँगूर, छुहारा आदि सुखाकर किसमिस जैसी चीजें बनाने के लिये स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे कारखाने खुल गये थे। ये फल सुखाने का काम विशेष रूप से गर्मी के महीनों में होता है। सन् १९४३ में ३५०० टन (लगभग ९८,००० मन) फलों को सुखाकर बाहर भेजा गया था। कुछ इतनी ही बड़ी तादादमें १९४४ में भी बाहर से माँग आई थी। इसका केन्द्र पेशावर है जहाँ एक तो सरकारी कारखाना है और कुछ प्राइवेट तौर पर कुछ पूँजीपतियों के कारखाने भी बने हैं। पेशावर के निकटस्थ नसीरपुर के लिये सरकार ने ६½ लाख रुपये इसलिये दिये हैं ताकि कुछ अन्य कारखाने खुल सकें। नसीरपुर केन्द्रीय स्थल है। इसके चारों ओर खूब फल उत्पन्न होते हैं। इसलिये आशा की जाती है कि भविष्य में इसकी समृद्धि अच्छी हो सकेगी। सच पूछा जाय तो पूरा सीमा प्रान्त एक बहुत बड़ा बाग है जिसमें फल उगाने, सुखाने, और उनका रस निकालने जैसे कई एक धंधे बड़े मजे से चल सकते हैं। लेकिन इसमें भी सरकार की सहायता की आवश्यकता है। युद्ध की कठिन परिस्थितियों के कारण इस धंधे पर जो चोट पहुँची है उसे दूर करने के लिये सरकार को कुछ रोक थाम करनी चाहिये। इस दिशा में सब से पहला काम तो यह होना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार हिन्दुस्तान में बाहर से फलों के आगमन को रोक दे। यदि बाहर से फल आते

रहे तो यह निश्चित है कि नसीरपुर का कारखाना ठप्प हो जायगा। सरकार को इस पर अपना रक्षा का हाथ रखना चाहिये।

माँस:—माँस को बाहर भेजने का काम सीमा प्रान्त में पहले से चला आ रहा है। किन्तु युद्ध काल में तो वह बहुत उन्नति पा गया। सुरक्षा-विभाग (Defence Department) की छत्रछाया में नौशेरा में माँस बनाने का एक कारखाना है। इस कारखाने का सारा प्रबन्ध एवं उसके मूल्य आदि निर्धारण का काम प्रान्तीय सरकार सुरक्षा-विभाग के लिये करती है। माँस के इस व्यापार से, सरकार द्वारा इसे अधिकृत कर लेने से सीमा प्रान्त के निवासियों की रोटी पर सीधा बोझ पड़ता है। कुछ तो अन्न के अभाव में और कुछ धार्मिक भावना के कारण माँस पठानों का बहुत प्रमुख खाद्य पदार्थ बन गया है। और फिर जो खाद्य है, उसी माँस को इस प्रकार बाहर ले जाना, एक प्रकार से भूखे के हाथों से ग्रास छीनना है। यह इसलिये कि जब माँस बाहर जाने लगा तो निवासियों के लिये कमी आई, कमी आने पर क़ीमत बढ़ी। इधर के वर्षों में तो माँस का बाजार बहुत ज्यादा तेज हो गया है। वहाँ माँस की क़ीमतें इतनी बढ़ गई हैं कि हिन्दुस्तान में क़ीमत शायद ही उतनी ऊँची चढ़ी हो। सच बात तो यह है कि जिस प्रान्त में अन्न न हो, वहाँ से उसका एक मात्र सहारा माँस भी छीन लिया जाय तो पाठक सोच सकते हैं, परिणाम भुखमरी के अलावा क्या हो सकता है ?

हिन्दुस्तान की आर्थिक व्यवस्था में 'घरेलू उद्योग धन्धे' बनाम 'मशीन' पर भारी मतभेद चल रहा है। एक ओर गांधी जी और उनके अनुयायियों का एक ही मत है—मशीनों का बहिष्कार करो। दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यता के भौतिकवाद में जिनके दिमाग़ पले हैं वे दृढ़ता पूर्वक हठ करते हैं—यदि देश के चालीस करोड़ों को सुखी और खुशहाल रखना है, यदि हिन्दुस्तान को शेष संसार के साथ सभ्यता की दौड़ में आगे रहना है तो आवश्यक है कि 'चारागयुग' (Postoral Age) की रूढ़ि छोड़ कर मशीनों का उपयोग करें। इस भारी मतभेद का कारण दोनों वर्गों के लोगों के जीवन विषयक दृष्टिकोण में भेद है। एक

जहाँ जीवन को खाना पीना मौज उड़ाना (उचित अनुचित चाहे जिस तरीक़े से) मानता है वहाँ दूसरा यह मानते हुए भी तरीक़े में उचित अनुचित का विचार करना चाहता है। एक अति आध्यात्मिक है दूसरा अति भौतिक। किन्तु मूर्त्तिमान जीवन के क्षेत्र में दोनों ही अव्यवहार्य अनुपयुक्त हैं। न तो जीवन अब लँगोटी लगाकर साधु बन जाने का, और न लन्दनशाही या पेरिसशाही बन जाने का है। दोनों को मिलाकर एक तीसरे प्रकार के जीवन की आवश्यकता है ऐसी दशा में यह मानते हुये भी कि घरेलू उद्योग धन्धों का समुचित विकास राष्ट्र की आर्थिक स्थिति को सम बनाये रखने के लिये आवश्यक है, यह कहना पड़ता है कि हम मशीनों के बिना नहीं रह सकते। रहने का अर्थ निस्सन्देह वही है जिसको लेकर दूसरे मतवाले ने अपने तर्क का समर्थन किया है, यानी—यदि देश के चालीस करोड़ों को सुखी और ख़ुशहाल रखना है, यदि हिन्दुस्तान को शेष संसार के साथ सभ्यता की दौड़ में आगे रहना है तो (उनकी तरह न कह कर, हम कहेंगे) हमें अतिवादी न बनना चाहिये, उद्योग धन्धों को घरेलू माप और बड़े माप दोनों पर चलाना चाहिये। यह तो रही हिन्दुस्तान की। यों तो सीमाप्रान्त वैसे ही हिन्दुस्तान के साथ जुड़ा है, उस पर ख़ुद उसकी परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि जिन्हें देख कर मशीनों का प्रयोग आवश्यक है। पाठक देखेंगे कि सीमाप्रान्त के उद्योग धन्धे कुछ इस प्रकार के हैं कि यदि उन्हें मशीनों के द्वारा चलाया जाय तो राष्ट्र का हित अधिक हो सकेगा बनिस्बत इसके कि उन्हें घरेलू रहने दिया जाय। अब हम एक-एक धन्धे को क्रमशः लेते हैं।

शक्कर :—

सीमाप्रान्त में शक्कर के उद्योग के लिये बहुत क्षेत्र है। इस दिशा में काँग्रेस मन्त्रि मण्डल ने बहुत काम किया था। उसने मरदान ज़िले के तख़्तबाई स्थान पर एक शक्कर का कारख़ाना खोल दिया था। गन्ने की खेती विशेष रूप से पेशावर और मरदान ज़िले में होती है। क़रीब ६३,००० एकड़ बहुत उपजाऊ भूमि गन्ने के खेत लगते हैं। यह

गन्ना गुण में भी बहुत उत्तम है। जब यह कारखाना स्थापित नहीं हुआ था, तब तक गन्ने पेरने का काम हमारे हिन्दुस्तान के अधिकांश गाँवों की तरह ही, देशी कोल्हुओं से ही होता है। पानी का काम बहुत मन्द होता था। जब काँग्रेस मन्त्रि मण्डल ने शक्कर की मिल स्थापित करने का विचार प्रस्ताव रूप में उपस्थित किया तो कुछ लोगों ने इसकी सफलता में शंका उत्पन्न की। वे लोग समझते थे कि यह मिल न चल सकेगी। लोग अपना रुपया लगाने में उत्साह नहीं दिखाते थे। लेकिन काँग्रेस मन्त्रि मण्डल ने जन-हित देखकर इस बाजी पर एक साथ २ लाख रुपया लगा दिया। सच पूछा जाय तो यह मिल खूब चली। लड़ाई के समय जब शक्कर मिलना वैसा ही हो गया जैसा अफीम का मिलना। तब भी सीमाप्रान्त में इस मिल की कृपा से यह अभाव इतना नहीं अखरा जितना अन्य प्रान्तों में। और फिर सीमाप्रान्त में शक्कर की आवश्यकता भी बहुत बड़ी है। बहुत बड़ी तादाद में पठान लोग चाय पीते हैं। युद्ध काल में हम जानते हैं, आवागमन के अधिकांश साधन, रेल, मोटर, जहाज़ आदि लड़ाई का सामान लाने जाने में जुटे रहते हैं। उस समय सीमाप्रान्त को बाहर से शक्कर मिल सकना कठिन था। उस कमी की पूर्ति इस शक्कर की मिल ने बड़ी अच्छी तरह की है। तख्तबाई की मिल हम कह चुके हैं, सरकार द्वारा स्थापित की गई थी, और उसके प्रबन्ध का काम भी सरकार ही करती है। मिल फायदेमन्द हो सकेगी, इसमें बड़े-बड़े विद्वानों को भी सन्देह था। श्री जे० सी० कुमारप्पा ने अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट—'उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त के आर्थिक विकास की एक योजना (१९४०)' में लिखा था :—

"(तख्त बाई की) यह योजना बेमौके और अनुपयुक्त लोगों की है यदि यह टूट गई तो सरकार को इससे आर्थिक हानि होगी, और अगर, यह सफल होकर चलती भी रही तो आज जो गुड़ बनाने वाले हैं उनमें बहुत सों की बरबादी हो जायगी।"*

* "The scheme is ill-advised and ill-timed, it will result in financial loss to the State if it fails, and if it succeeds, it

लेकिन सौभाग्य से कुमारप्पाजी की यह भविष्यवाणी निर्मूल हुई। न तो मिल ही टूटी जिससे सरकार को हानि होती और न गुड़ बनाने वालों को ही कोई धक्का लगा। जब भविष्य में खेती बारी बढ़ेगी तो क्या आवश्यक नहीं होगा कि इसी प्रकार की और भी मिलें बनाई जायँ। पठानिस्तान में (यदि वह बन गया, बनेगा तो अवश्य आज न सही कल सही) जब सीमा प्रान्त को स्वावलम्बी बनाता है, जैसी घोषणा नित्य प्रति ही नेता लोग कर रहे हैं, यह आवश्यक होगा कि इस उद्योग की ओर भी उन्नति की जाय।

गुड़ः— शक्कर के अन्तर्गत ही गुड़ बनाने का घरेलू धंधा भी सीमा प्रान्त में चल रहा है। श्री कुमारप्पा जी के मतानुसार केवल चारसद्दा और मरदान जिलों में ही १० लाख मन गुड़ प्रति वर्ष बनाया जाता है। कि लेकिन दूसरी ओर शक्कर की माँग भी दिन प्रति दिन बढ़ रही है। प्रति वर्ष लगभग ६,७०,००० (छः लाख सत्तर हजार मन) चीनी और लगभग ८५,००० (पचासी हजार मन) चाय इस प्रान्त में बाहर से आती है' यह देखकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि पठानों को चीनी कितनी बड़ी आवश्यकता है। ऐसी दशा में उपयुक्त ही होगा कि गुड़ बनाने का उद्योग और भी अधिक उन्नत किया जाय। पेशावर और मरदान के जिलों में अच्छा गुड़ होता है, परन्तु उसमें भी सुधार की बहुत गुंजाइश है। कि उसे अधिक वैज्ञानिक तरीके से साफ करके बनाया जाय। यहाँ एक बात इस धन्धे के सम्बन्ध में विशेष रूप से कहनी होगी। यह धंधा अभी घरेलू है और अधिकतर गन्ना बोने वाले किसान ही गुड़ बनाते हैं। भविष्य में हम सरकार से यह आशा करते हैं कि वह पूँजी पतियों से इस धन्धे की रक्षा करें जहाँ तक हो सके इसका काम किसानों के ही हाथ में रहे।

---

will spell ruin several of the successful 'gur' producers of the day."

—From—A Plan for the Economic Development of the N. W. F. P.

Report by—J. C. Kumaruppa.

ऊन:— सीमा प्रान्त पहाड़ी देश है घाटियों में जहाँ अन्न उत्पन्न नहीं होता, बड़े बड़े चारागाह हैं। इसलिये बहुत बड़ी संख्या में पठान लोग भेड़े चराते है। परिमाण में ऊन का कारोबार ब्रिटिश अधिकृत प्रान्त और कबाइली प्रदेश दोनों में ही बहुत बड़े परिणाम में होता है। सीमा प्रान्त को प्रकृति की ओर से यह देन मिली है कि वह बहुत अच्छी ऊन बना सके। ऊन की पैदावार इतनी अधिक है कि अगर वह घरेलू धंधा न रह कर कारखानों में बुना जाया जाने लगे तो निस्सन्देह यह कारोबार बहुत उन्नति कर जायगा। श्री कुमारप्पा जी के मतानुसार कुल प्रान्त में लगभग ४० हजार मन ऊन प्रति वर्ष होती है। लेकिन साधनों की कमी के कारण केवल ५००० हजार मन की खपत इस प्रान्त में होती है बाकी ३५ हजार मन बाहर कम्बल आदि कपड़ों के लिए भेज दी जाती है। बहुत कुछ तो भारत के अन्य प्रान्तों में चली जाती है और बचने वाली विदेशों में भी पहुँचाई जाती है। इस ऊन के अलावा बकरियों के ८,००० मन बाल भी यहाँ निकलते हैं। इसका करीब एक तिहाई हिस्सा उत्तरी अमेरिका को चला जाता है, जहाँ इनसे पेटियाँ बनाई जाती हैं। शेष बाल प्रान्त में ही खप जाते हैं और उनकी रस्सियाँ बनाई जाती है। तात्पर्य यह कि सीमा प्रान्त में ऊन के व्यापार को चलने के व्यापार को चलाने के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इसकी किस्म को और भी उत्तम बनाया जाय। इस विषय में वैज्ञानिकों को चाहिये कि खोज करके भेड़ पालने वालों को अच्छा परामर्श दें जिससे भविष्य में इस दिशा में उन्नति हो सके। इसके लिये श्री कुमारप्पा जी ने कुछ सुझाव पेश किये हैं जो इस प्रकार हैं।

"(समृद्धि करने के) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सरकार को प्रचारक भेजने चाहिये तो जो लोगों को बतायें कि वे ऊन के क्रमानुसार दर्जे नियुक्त करें, ऊन के कपड़े और दूसरे माल बनावें।"*

* "To this end the grading of wool, the introduction of weaving of cloth and manufacture of woolen goods, should be

इस समय ऊन का काम हो रहा है उनमें स्वात और बगान के शाल या साड़ियाँ प्रमुख है। स्वात में बनती है पर्दे के काम में भी बहुत अच्छी तरह तरह आसकती हैं हमारे यहाँ जो काश्मीरी पट्टियाँ कोट आदि के लिये चलती है कि उनमें चित्राल की ऊनी पट्टियाँ किस कौशल से आ बैठती हैं यह यह हमें विदित नहीं। परन्तु यह हमें मालूम है कि चित्राल में बहुत बढ़िया पट्टियाँ बनती है। पट्टियों के अलावा चित्राल में ऊनी चोगे भी बहुत बढ़िया बनते है। ये चोगे, ओवर कोट के लिये बहुत उपयुक्त होते है। अफ़ग़ानिस्तान और काश्मीर ऊन बनाने के बड़े बड़े केन्द्र है। जब अफ़ग़ानिस्तान में ऊन की एक ही मिल है तो भला सीमा प्रान्त ही क्यों पिछड़ रहे। हम प्रान्तीय सरकार और केन्द्रीय सरकार से अर्ज करते है कि वे इस उद्योग की उन्नति बनाने के लिये हर प्रकार की मदद दें। बढ़िया किस्म की भेड़ें पैदा हो सके, पैदा होने वाली ऊन का समुचित उपयोग हो सके, इसके लिये आवश्यक है कि सरकार पठानो की आर्थिक मदद करें। हमारी समझ में यदि घरेलू उद्योग की उन्नति करने के साथ ही साथ एक मिल भी खोल दी जाय तो निस्सन्देह इस दिशा में सफलता प्राप्त हो सकेगी।

चमड़ा:—

सीमा प्रान्त में ऊन की तरह ही एक उद्योग चमड़े का है। चमड़े का काम करने के लिये सीमा प्रान्त में बहुत बड़ा काम फैला पड़ा है। गाय भैंस, बैल, बकरी और भेड़ों की खालें बहुत बड़ी तादाद में स्थाई जिलों और कबाइली देश दोनों जगहों पर मिलती है। प्रति वर्ष करीब १ लाख जानवर सीमा प्रान्त में बाहर से पहुँचते हैं कि इनमें कुछ तो दूध, मक्खन, और पनीर आदि के काम के लिये होते हैं। लेकिन ज्यादातर वे सब काटने के लिये आते हैं। ये कुल जानवर जो सीमा प्रान्त में आते हैं उनमें से केवल सातवाँ भाग ही प्रान्त में

introduced through the agencies of the Government.

—*Kumaruppa's Report.*

खप पाता है । बाकी जानवर बाहर भेज दिये जाते हैं प्रति वर्ष ४०,००० मन पका और अधपका चमड़ा सीमा प्रान्त में बाहर से आता है और कोई ३०,०० (तीस हजार मन) अधपकी खालें भी । सबसे अड़चन धन की है । धन की कमी के कारण अच्छे अच्छे कारीगर भी अपनी योग्यता का पूरा प्रदर्शक नहीं कर पाते । परिमाण स्वरूप सच पूछिये तो प्रान्त की (कुल मिलाकर देशी) भी बहुत बड़ी हानि हो रही है । अगर रुपया होता तो चमड़ा और जानवर बाहर भेजे जाते हैं वे बाकी भी सीमा प्रान्त में ही खप जाते । और इससे देश को बहुत बड़ा आर्थिक लाभ अवश्य होता ।

यहाँ प्रान्तीय सरकार को चाहिये कि वह अपने धन से चमड़ा पकाने का कोई कारखाना चलाये । निस्सन्देह शुरू में इसमें कुछ खतरा है परन्तु बाद को यह निस्सन्देह ही बहुत लाभदायक सिद्ध होगी सरकार को यह भी चाहिये कि वह इस उपयोग को पूँजीपतियों से बचाये ।

कुछ अन्य उद्योग धंधे—

ऊपर हमने जिन उद्योगों का विवरण दिया है वे प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त भी कुछ छोटे मोटे घरेलू धंधे होते हैं । इनके विषय में कुमारप्पाजी ने अपनी रिपोर्ट में अच्छा विचार किया है । इन घरेलू धंधों में कुछ यह हैं । सूत कातना, और कपड़े बुनना, तेल निकालना, साबुन बनाना, रंग और रोग़न बनाना, डेयरी फार्म चलाना, काग़ज़ बनाना, मधु मक्खी पालना, घी निकालना, मुर्गियाँ पालना, लकड़ी के सामान बनाना, तांगा बनाना आदि आदि । आवश्यकता इस बात की है कि सरकार इस ओर अपना ध्यान दे । ऐसे स्कूल और शिक्षा केन्द्र स्थापित करे, जहाँ लोगों को इन घरेलू धंधों की समुचित शिक्षा दी जा सके । इसके साथ ही सरकार को अपनी कर व्यवस्था भी सँभालनी चाहिये । यह प्रत्येक सरकार का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह कर इस परिमाण और ढंग से लगाये कि कर देने वालों पर वह बोझ न बन जाये ।

सीमा प्रान्त की आर्थिक दशा का उपरोक्त वर्णन कर चुकने पर

हम एक निश्चय पर पहुँचते हैं। इतनी अधिक खनिज सम्पत्ति होते हुये, इतनी उर्वर ज़मीन होते हुये, और उद्योग धंधों के इतने अच्छे साधन होते हुये भी सीमा प्रान्त क्यों दरिद्र देश बना हुआ है? विवरण से पाठक यह जान गये होंगे कि प्रकृति की ओर से प्रान्त को कोई अभाव नहीं है। जो अभाव है वह व्यवस्था का है। स्पष्ट दीख पड़ता है कि व्यवस्था में कुछ ऐसी कमियाँ और खराबियाँ हैं जिनके कारण भूखों को अन्न भी नहीं मिल पाता। और सरकार भी इस ओर कोई ध्यान नहीं देती। ध्यान देना तो दूर रहा उल्टे सरकार ने समय समय पर सोने और चाँदी की रिश्वतें दे देकर पठानों के नैतिक आचरण को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार बार-बार सोना देकर उनकी उत्पादक शक्तियों को निकम्मा बनाने का प्रयत्न किया है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार एक निश्चित योजना बना ले। जहाँ तक कबाइली देश की बात है उसका भार केन्द्र की सरकार पर है, परन्तु स्थाई ज़िलों के लिये प्रान्तीय सरकार उत्तरदायी है। इन दोनों को चाहिये कि अपने-अपने अधिकृत भाग में वह एक एक निश्चित योजना देश-सुधार के लिये बनायें। योजना कुछ इस प्रकार से हो सकती है।

एक कमेटी बनाई जाय। इस कमेटी में औद्योगिक वर्ग, कृषक वर्ग, के प्रतिनिधि होने चाहिये तथा साथ ही कुछ अच्छे अर्थ शास्त्री और कृषि शास्त्र के विद्वान् भी हों। इस कमेटी के हाथ में यह काम सौंपा जाय कि वह यह निश्चित करे कि कौन-कौन से उद्योग तो बड़े मापदण्ड चल सकते हैं, और कौन-कौन से घरेलू होने योग्य हैं। प्रत्येक की योग्यतानुसार उसे समृद्ध करने के साधन इकट्ठे किये जाय। यह कमेटी सरकार से आर्थिक सहायता लेकर इन उद्योगपतियों की सहायता करे।

इसके अतिरिक्त कुछ पूर्व तैयारियाँ भी आवश्यक हैं।

(१) स्थान-स्थान पर कबाइली देश में भी स्कूल खोलने चाहिये। और पठान बच्चों को निशुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध ही नहीं करना चाहिए, वरन् पठानों को आरम्भ में तो पढ़ने के लिये प्रोत्साहन भी देना पड़ेगा। सम्भव है कहीं-कहीं और ज़बर्दस्ती भी करनी पड़े। शिक्षा

के अन्तर्गत ही रेडियो, और अखबारों की योजनाएँ भी बनाई जानी चाहिये। पश्तो भाषा में अधिक से अधिक अखबार निकलने चाहिये, जो पठानों को देश विदेश की परिस्थितियों से अवगत रखें। इसी शिक्षा में औद्योगिक शिक्षा भी अनिवार्य है। स्थान-स्थान पर ऐसे कालेज और स्कूल बनने चाहिये जो लोगों को घरेलू धंधों के सम्बन्ध में शिक्षा दें।

(२) सीमा प्रान्त आवागमन के साधनों के विचार से बहुत पीछे है। एक एक सड़क के बनाने में सैंकड़ों से लेकर हज़ारों तक जानें चली गई हैं। लोगों को सड़कों का महत्व शिक्षा द्वारा समझाना होगा। सड़कों के साथ ही रेल, तार, मोटर आदि साधनों का होना भी पूरी तरह जरूरी है।

(३) यहाँ पर नौकरियों की बात कहना भी अप्रासंगिक न होगा। सरकार को प्रयत्न करना चाहिये कि जहाँ तक हो सके सरकारी नौकरियाँ सीमा प्रान्त वासियों को ही मिलें। इस विषय में सरकार को जाति द्वेष से बरी होने की पहली आवश्यकता है। नौकरियों में प्रतिशत की गणना न करके यह देखना चाहिये कि आया आदमी उस पद के के योग्य है या नहीं।

(४) पठानों का एक बहुत बड़ा भाग सेना में लिया जा सकता है। पठान संसार की किसी भी जाति से लड़ने में कमजोर नहीं पड़ेगा। ऐसी दशा में यह उपयुक्त नहीं होगा कि बेकार अफरीदियों और वजीरियों की तरह की सी राष्ट्रीय सेना बनाई जाय।

(५) चूँकि पाठक देख आये हैं सीमा प्रान्त में सिलिका बहुत मिलता है। और काँच बनाने में 'सिलिका' एक प्रमुख वस्तु है। इसलिये सहज ही काँच के एक या दो कारखाने चल सकते हैं। सरकार को चाहिये कि इस ओर ध्यान दें।

आज जब यह स्पष्ट हो चुका है, कि सीमा हिन्दुस्तान के पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दो भाग होंगे तो समस्या कुछ टेढ़ी हो गई है। पठानों ने स्वतंत्र पठानिस्तान बनाने की घोषणा की है। दूसरी ओर मुसलिम लीग भेवक डरा रहे हैं कि अगर पठानिस्तान पाकिस्तान में सम्मिलित

नहीं हुआ, यानी उसने लीग की तानाशाही न मानी तो वह भूखों मर जायगा। इस विषय पर ऑर्डर का जवाब बादशाह खाँ ने २९ जून सन् १९५७ को जो दिया है उसे हम पाठकों के लिये उद्धृत करते हैं। अब्दुल गफ्फार खाँ साहब ने अपना यह व्याख्यान नोशेरा में दिया था। जो लोग कहते हैं स्वतन्त्र पठानिस्तान भूखों मर जायगा, उन्हें चुप करते हुये खान साहब कहते हैं:—

"यह कहना कि पठानिस्तान राज्य (आर्थिक) घाटे में रहेगा, गलत है। आज हमारी शासन प्रणाली बहुत ही अधिक खर्चीले ढंग पर चल रही है, अकेले गवर्नर पर ही लाखों रुपये खर्च हो जाते हैं। इसके अलावा और भी ब्रिटिश अफसर हैं जो प्रान्त की आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा उड़ा जाते हैं। अगर यह बरबादी बन्द कर दी जाय और रुपये को उत्पादक योजनाओं पर व्यय किया जाय तो निश्चय ही हम अपने प्रान्त को स्वावलम्बी बना सकेंगे।"

हम भी निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि सम्भव है आरम्भ की कुछ मांगों में कुछ कमी पड़ी और सीमा प्रान्त को अन्य प्रान्तों से सहायता माँगनी पड़े परन्तु अन्त में वह अवश्य ही अपना पेट भर सकेगा। ब्रिटिश अफसरों की तनख्वाहें निस्सन्देह पूरे देश में भारी हानि पहुँचाती हैं उनका मूलोच्छेदन कर देने से अवश्य ही खान साहब का वक्तव्य सत्य सिद्ध हो सकेगा। यदि उपरोक्त योजना के द्वारा काम किया गया तो इसमें सन्देह नहीं कि पठान की रोटी का सवाल हल हो सकेगा।

कबाइली देश में ब्रिटेन की प्रवेश नीति

पिछले परिच्छेद में जो सरकारी रिपोर्ट हमने उद्धृत की है, उससे पाठक प्रवेश नीति का कुछ इशारा पा गये हैं। जब-जब कोई असन्तोष या उपद्रव हुआ तब-तब अँग्रेज़ सरकार ने उसे बलपूर्वक दबा दिया, यह नीति का कार्यक्रम रहा है। इस परिच्छेद में हम कबाइली देश में ब्रिटिश नीति का जिक्र करेंगे। हिन्दुस्तान में घुसने के लिए अँग्रेजों

ने जो नीति काम में ली है वह सर्व विदित है। 'रियासतों के झगड़ों में हस्तक्षेप करके किसी एक पक्ष का साथ देकर ब्रिटेन वासियों ने अपनी सत्ता स्थापित की थी ; यह भी उनकी प्रवेश नीति है। 'फूट डाल कर राज्य करना'; 'झूठे वायदे कर देना'; 'पाशविक दमन चलाना' आदि कुछ नीतियाँ हैं जिनके द्वारा अँग्रेज़ सरकार हिन्दुस्तान पर हावी हो सकी। यह तो रही शेष हिन्दुस्तान की बात। कबाइली देश में ब्रिटेन ने जिस नीति का अनुसरण किया उसका संक्षिप्त विवरण हम पाठकों के सामने रखते हैं। इस परिच्छेद का महत्व पहले बता देना जरूरी होगा। इसमें हम हिन्दुस्तानियों का खास मतलब है। अँग्रेज जो अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिये कबाइली देश में लड़ते रहे हैं सो विलायती पैसे से नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी रुपये से। हमारा करोड़ों रुपया उनके इस खेल में खर्च हो गया, लाखों जानें चली गईं। लेकिन आश्चर्य तो यही है कि फिर भी हम यह नहीं जानते कि हमारा रुपया लग रहा है। हमारा रुपया किस प्रकार कहाँ खर्च किया जा रहा है, हम यह सब नहीं पूछ सकते। अब पाठक समझ गये होंगे कि इस परिच्छेद का क्या महत्व है। इसके द्वारा पाठक जान जायेंगे कि हमारा रुपया किस प्रकार खर्च किया गया है।

सबसे पहले सीमाप्रान्त जो सिक्खों के अधिकार में था, अँग्रेजों ने अपने हस्तगत कर लिया। स्मरण रहे अँग्रेज वही भाग हस्तगत कर पाये थे जो स्थाई जिलों के नाम से आज प्रसिद्ध है। इस प्रकार केवल सीमान्त के जिलों को सिक्खों से लेना और शेष भाग छोड़ देना भूल थी। डा० कोलिंस डेवीज लिखता है :—

"सबसे पहली और भारी ग़लती, आरम्भ का ही काम, सीमान्त के जिलों को सिक्खों से छीन लेने की थी।"

यहाँ पर एक दूसरा मार्ग भी था। केवल सीमान्त के जिलों को ही न लेकर काबुल ग़ज़नी और कन्धार तक जो 'रक्षा की वैज्ञानिक सीमा थी, का भाग जीत लिया जाता। किन्तु वह तो नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप ही आगे के झगड़े चले।

सीमाप्रान्त की विजय में अँग्रेज सरकार का दूसरा क़दम था। सीमाप्रान्त का पंजाब से तोड़कर वहाँ एक फ़ौजी राज्य, यदि पूरी तरह नहीं तो आधा सा, स्थापित करना। यह शासन व्यवस्था इतनी कठोर थी कि सिन्धु के इस पार और उस पार का देश एक दूसरे से सर्वथा तोड़ दिया गया। न तो यहाँ की हलचल का पता वहाँ पहुँच पाता था और न वहाँ की दुर्दशा (?) का पता हमें यहाँ मिल पाता था। लेकिन धीरे-धीरे अन्धकार फटता गया। यद्यपि सरकार ने लोगों के मार्ग में तरह-तरह के रोड़े अटकाये लेकिन फिर भी कुछ राजनैतिक विचार के लोगों के मुँह से हम उस सुदूर की हालत से परिचय पाने लगे। यह तो रही खास सीमाप्रान्त (यानी ब्रिटिश अधिकृत भाग) की बात, कबाइली देश तो और भी अधिक गहरे अँधेरे में था। यहाँ तक कि आज तक वहाँ की आबादी की ठीक-ठीक गणना नहीं हो सकी है। अनुमान किया जाता है कि वह कोई ३ लाख के क़रीब होगी।

स्थाई ज़िलों में जहाँ कमिश्नर का शासन होता था, उस प्रकार की कोई शासन-प्रणाली कबाइली देश में न थी। कबाइली देश को राजनैतिक और सुरक्षा के विभागों के सुपुर्द कर दिया गया था। यहाँ पर किसी प्रकार का निश्चित क़ानून न था। फ़ौजों की मनमानी होती थी। सच पूछा जाय तो कबाइली देश सिपाहियों का ट्रेनिंग स्कूल था। यहाँ लड़ाई की सच्ची शिक्षा मिलती थी। यहाँ लड़ने के नित नये अवसर आते थे और सैनिकों को अपने हथियारों का कौशल दिखाने की अच्छी बन आती थी। हम देख आये हैं कबाइली देश में जब से अँग्रेजों ने क़दम रखा तब से आज तक निरन्तर ही लड़ाइयाँ, उपद्रव, झगड़े आदि होते रहे हैं। इन झगड़ों का कारण क्या था ? हमें मालूम है पठान सबसे अधिक स्वतन्त्रता प्रिय व्यक्ति है। जब सरकार ने उसकी स्वतन्त्रता में दख़लन्दाजी की तो उसने इसका डटकर विरोध किया, इसकी रक्षा के लिये अपना तन-मन-धन सब कुछ अर्पण कर दिया। अब हमारे सम्मुख यह आता है कि अँग्रेज कबाइली देश पर अधिकार क्यों करना चाहते थे।

यह आरम्भ ही में कह दें। विजय करने में उद्देश्य साम्राज्य-विस्तार से कुछ दूसरा नहीं था। हाँ इसके लिये, क्योंकि यह तो कोई उद्देश्य नहीं है, कुछ और बहाने बनाये गये। इन बहानों को लिखते हैं। ब्रिटेन का कहना था—'रूस निरन्तर आगे बढ़ता चला आ रहा है। उससे हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार को साम्राज्य का भय है। इसके लिए आवश्यक है कि सीमा पर एक जबर्दस्त शक्ति स्थापित की जाय जो रूस को आगे बढ़ने से रोक सके। यह जबर्दस्त शक्ति अफ़ग़ानिस्तान राज्य भी हो सकती है।' यह सच था कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रूस बड़ी तेजी के साथ आक्सस नदी की ओर बढ़ता जा रहा था। थोड़े दिनों में तो उसने मध्य एशिया के बुखारा और खीवा भी हड़प लिये। इस रूस की आगे बढ़ती हुई लहरों को रोकने के लिये, हमें बताया गया था कि अँग्रेज हमारे ही हित के लिये यह आवश्यक समझते हैं कि सीमा पर कोई दृढ़ शक्ति स्थापित करनी चाहिये। पाठकों को मालूम होगा इन दिनों कबाइली देश वस्तुतः अफ़ग़ानिस्तान ही का एक भाग था। होता यह था कि जब-जब अफ़-ग़ानिस्तान का अमीर शक्तिशाली होता था तब-तब कबाइली लोगों की स्वच्छन्दता पर थोड़ा बन्धन पड़ जाता था, परन्तु ज्योंही कोई अमीर दुर्बल हुआ कबाइली मनमानी कर उठते थे। सीमाप्रान्त को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के बाद कबाइलियों को जीतने में अँग्रेजों ने प्रत्यक्ष में तो रूस के विरुद्ध दृढ़ सीमा बनाने का उद्देश्य रखा, परन्तु परोक्ष में साम्राज्य-विस्तार की ही भावना थी। सरकार यह चाहती थी कि अफ़ग़ानिस्तान भी, हिन्दुस्तान की कुछ अन्य रियासतों की तरह हमारे अधिकार में हो जाय, जिसे हम सहायता के तौर पर कुछ रुपया दें और बदले में उसकी विदेशी नीति पर हमारा अधिकार हो जाय। इस प्रकार की आधी गुलामी पैदा करने के लिये अँग्रेजों ने एक नहीं दो बार प्रयत्न किये। पाठक अफ़ग़ान युद्धों के विवरण में पढ़ चुके हैं कि अँग्रेजी फौजें काबुल तक पहुँच गई थीं, और दूसरी बार तो वहीं रहने का ही निश्चय कर लिया था। इस निश्चय का अर्थ

राजनैतिक दृष्टि से बड़ा भारी था। अँग्रेज़ फ़ौज अफ़ग़ानिस्तान में रहेगी, इसका मतलब यह खुद अफ़ग़ानिस्तान के घर में गुप्तचर लग जायेंगे जो डरा धमकाकर बात बात में अपना मनमानी करेंगे। जो हो, दूसरे युद्ध का परिणाम आप देख आये हैं। केवल एक डाक्टर उस भीषण सम्वाद की खबर लेकर बेदम जलालाबाद तक पहुँच सका था। इस प्रकार अङ्गरेज़ी सरकार की अफ़ग़ान में एक मातहत रियासत बनाने की नीति असफल हो गई।

रूस के भय को देखकर अफ़ग़ानिस्तान के प्रति ब्रिटेन सरकार ने जिस नीति को धारण किया, इतिहास में उसका बहुत महत्व है। उसका यहाँ खुलासा किये बिना हमारा यह परिच्छेद अपूर्ण रह जायगा। इससे पाठक ब्रिटिश शासकों की मनोवृत्ति भी समझ जायँगे।

जब रूस बढ़ता ही चला आ रहा था तो ब्रिटिश शासकों में दो मत हो गये। सीमा प्रान्त या अफ़ग़ानिस्तान के विषय में एक तो 'पंजाब स्कूल' (Punjab School) के विचारक थे, दूसरे 'सिन्ध-स्कूल' (Sind School) के विचारक। ये दो मतावलम्बी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे। अब हम क्रमशः एक एक का वर्णन करते हैं।

'पंजाब-स्कूल' की नीति—

पंजाब स्कूल का कर्त्ता लार्ड लारेंस था। 'ग़दर' के पूर्व उसने अपनी नीति को, जिसमें उसके सहायक लेफ्टीनेंट हरबर्ट एडवर्डस और हैरी लम्सडैन का बहुत बड़ा हाथ था, 'पंजाब स्कूल (पंजाब-मार्ग) नाम दिया था। यह नीति सर्व प्रथम उस समय उत्पन्न हुई थी जब इन लोगों का एक मिशन कन्धार को सन् १८५७ ई० में गया था। एडवर्डस दृढ़ विचार का था, कि यदि इङ्गलैंड को रूस से सामना करना है तो उसे चाहिये कि वह आगे न बढ़े। यानी शत्रु से आगे बढ़कर अफ़ग़ानिस्तान क्षेत्र में लड़ाई न ले। वरन् उसे चाहिये कि अपनी हद पर ही रहकर शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा करे। उसका कहना था कि अफ़ग़ानिस्तान जैसे देश में, चूँकि उसकी प्राकृतिक स्थिति ऐसी है, जाकर युद्ध करने में हमें भारी धन की हानि उठानी पड़ेगी। ऐसे समय इस खर्च को अपने ऊपर

लेना बहुत बड़ी भूल होगी और इसे शत्रु के पल्ले बाँध देना बहुत अच्छी युद्ध नीति होगी। एडवर्डस का मत यह था कि चूँकि अफ़ग़ानिस्तान बहुत अधिक ऊबड़खाबड़ देश है, इसलिये जो भी वहाँ पहुँचेगा उसे भारी खर्च भुगतना पड़ेगा ऐसी दशा में यदि रूस को भारत पर चढ़ कर आना ही है तो यह खर्च हम अपने सिर पर क्यों चढ़ायें? उसका यह भी तर्क था कि रूस भले ही किपचैक मरुस्थल में घुमक्कड़ों को और तुर्की बासियों को जीत ले परन्तु अफ़ग़ानिस्तानी उसके सामने सहज ही नहीं झुकेंगे। वह समझता था कि यदि हम अफ़ग़ानिस्तानियों के देश में नहीं घुसेंगे तो वे समझ जायेंगे कि हमें उनसे कोई शत्रुता या कपट व्यवहार नहीं है, ऐसा होने पर वे हमारे मित्र हो जावेंगे और मौक़ा पड़ने पर बड़ा काम देंगे। इसलिये सबसे सच्चा रास्ता तो यही होगा कि अफ़ग़ानों को रूस की तोपों में झोंक दिया जाय और हम खुद अपने मौके के स्थान बनाकर तैयारी करते रहें।

लम्सडेन भी एडवर्डस के ही मत का था। उसका कहना था कि हमें अफ़ग़ानिस्तान के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये इससे अफ़ग़ान राज्य स्वतन्त्र रह कर शक्तिशाली होगा और हमारा मित्र भी। हमें अपनी सीमा तक ही रहना उचित है। वह कहता था—पेशावर, कोहाट और सिन्ध हमारे अधिकार में है। सिन्धु में स्टीमरों और धरती पर रेलों के द्वारा अन्य हिन्दुस्तानी सूबों में हमारा आवागमन है। सारे देश में चारों ओर हमारी शक्तिशाली यूरोपीय छावनियाँ पड़ी हैं। और हमें हमारी मजबूत जल सेना की सहायता प्राप्त है। इस समय मैं उचित समझता हूँ कि हिन्दुस्तान के सभी रास्तों की तालियाँ अपनी जेबों में सुरक्षित रखे हुये दरवाजों के ताले लगाकर शत्रु की प्रगति को देखना चाहिये।

लार्ड लारेन्स को एडवर्डस और लम्सडन की सच्ची और बहुमूल्य सहायता मिली थी। फिर भी इस नीति को स्थापित करने का श्रेय हम उसी को देते हैं। भारत सरकार को अपने २१ अक्टूबर सन् १८२८ के पत्र में उसने इस नीति की व्याख्या इस प्रकार की है।

(१) मध्य एशिया में रूस की प्रगति को रोकने के लिये (क्वेटा और हेरात पर क़ब्ज़ा करते हुये) अफ़ग़ानिस्तान में आगे बढ़ने की नीति वांछनीय नहीं है। इससे अफ़ग़ान लोग हमारे शत्रु हो जायँगे और अफ़ग़ानिस्तान से युद्ध छिड़ जायगा। लेकिन उस पर आक्रमण करके जीत लेना और फिर उसे अधिकार में बनाये रखना बहुत कठिन काम है। इस देश की प्राकृतिक बनावट भी अजीबोग़रीब है। हर एक पहाड़ी एक प्राकृतिक क़िले की तरह है।

और फिर सब से बढ़कर बात यह कि इस देश में जीवन के साधन इतने थोड़े हैं कि अपनी ही प्रजा और सरदारों का पूरा नहीं पड़ पाता। ऐसे देश में यदि एक बड़ी सेना भेजी गई तो वह भूखों मर जायगी और अगर छोटी भेजी गई तो तहस-नहस कर दी जायगी।

(२) सबसे अच्छी नीति तो यह है कि अफ़ग़ानिस्तान को एक स्वतन्त्र, दृढ़ परन्तु रुकावटी (जो बाहरी शत्रु को रोक सके) रियासत रहने दिया जाय। और इसका सबसे अच्छा उपाय यह है कि अफ़ग़ानों को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। जो कोई भी जाति किसी भी प्रकार उनके कामों में हस्तक्षेप कर जाती है वह उनकी घृणा और अविश्वास की पात्र बन जाती है। इसलिये अफ़ग़ानिस्तान के प्रति तटस्थ रहने की नीति ही वांछनीय है।

(३) यदि कभी रूस और इङ्गलैंड को एशिया में किसी भयङ्कर युद्ध में आमने-सामने आना है, तो हमारी (इङ्गलैंड) की उचित स्थिति उन पहाड़ों के पीछे रहेगी जो उत्तर-पश्चिम में हमारी हिन्दुस्तानी साम्राज्य की सीमा बनाते हैं। आगे बढ़कर लड़ने में रूस को अपने ही साधनों पर स्वावलम्बित रहना पड़ेगा और ज्यों-ज्यों उसकी शक्ति का ह्रास होता जायगा साधन कम होते जायँगे त्यों-त्यों हमारी रोक दृढ़ होती जायगी। एशिया में अपने को सर्वथा शक्तिमान शक्ति स्थापित करने और हिरात को स्वतन्त्र करने के प्रयत्नों में हमारा जो धन और रुपया बरबाद जायगा, उसी धन को हम बुद्धिमत्ता पूर्वक हिन्दुस्तान में अपनी पकड़ अटूट बनाने में लगा सकते हैं।

(४) यह कहा जा सकता है कि यदि रूस क्रमशः हमारी सीमा की ओर बढ़ता है तो वह कबीलों को अपनी सेना में नौकर रख कर उन्हें हमारे खिलाफ खड़ा कर देगा। लेकिन जब ऐसा दिन आयेगा तो हम (अगर हम अपने साधनों का खर्च घटा सके) पहाड़ी जातियों की सहायता से रूस को निकाल बाहर करेंगे। अगर जरूरत पड़ी तो अङ्गरेजी रुपया भी वही काम करेगा जो रूसी।

(५) हिन्दुस्तान पर किसी यूरोपीय शत्रु द्वारा होने वाले आक्रमण के खिलाफ तैयारी करने का सबसे अच्छा ढंग यह है कि हम हिन्दुस्तान में ही अपनी शक्ति दृढ़ बनायें और शत्रु का मुक़ाबला करने की सबसे अच्छी जगह उत्तर-पश्चिम सीमान्त रहेगी। इस सीमा के बाद आगे बढ़ कर तो हम शत्रु का काम ही सहज कर देंगे। अगर रूस आक्रमण करने की बात सोचता है, और वह इस समस्या की भली बुरी बातें समझता है तो सबसे अधिक वह हमसे यह चाहेगा कि हम सिन्ध पर भी अपनी सुभीते की जगह छोड़ दें और आगे चल कर मध्य एशिया में उलझ जायें।

संक्षेप में यह 'पंजाब स्कूल' की नीति थी। अब आगे हम 'सिन्ध स्कूल' की नीति लिखते हैं।

'सिन्ध स्कूल' की नीति—

'सिन्ध स्कूल' (सिन्ध मार्ग) नामक नीति का कर्त्ता मेजर जौन जेकोब था। जेकोब 'आगे बढ़ो' (Forward) नीति के सबसे बड़े समर्थकों में से था। जब रूस ने सन् १८५६ ई० में हिरात पर घेरा डाल दिया तो उसने भारत सरकार पर इस बात पर जोर दिया कि क्वेटा पर अधिकार करके आगे बढ़ा जाय। अपनी नीति के समर्थन में उसने ये तर्क लिखे थे।

हमारे हिन्दुस्तान के साम्राज्याङ्ग के लिये उत्तर पश्चिम से केवल दो ही मार्ग हैं, एक तो खैबर के दर्रे से दूसरा बोलन के दर्रे से। लेकिन शत्रु के लिये खैबर के रास्ते होकर आना बहुत कठिन पड़ जायगा। कारण उधर के रास्ते में पड़ने वाले लोग लड़ाका हैं, देश भी

कठोर है तथा रास्ता भी इधर बोलन की अपेक्षा लम्बा है। और फिर पेशावर में हमारी बहुत मज़बूत फ़ौज भी पड़ी है, जिसके होने से उस ओर से तो हम एक प्रकार से सुरक्षित ही हैं। और क्वेटा में हमारी फ़ौज रहने से दुतरफ़ा फ़ायदा रहेगा (जेकोब चाहता था कि क्वेटा के रास्ते हिरात की ओर बढ़ा जाय), एक तो यह कि अगर कोई भी दुश्मन खैबर दर्रे के रास्ते आक्रमण करने की कोशिश करेगा तो हम उस पर बगल से और पीछे से हमला कर सकेंगे, दूसरे यह कि दुश्मन के लिये बोलन का दूसरा रास्ता ही बन्द हो जायगा। और इधर हम आराम के साथ में हिरात में पहुँच जायेंगे जब कि दुश्मन शायद काबुल तक ही आ सके। हमारी यह स्थिति सीमान्त पर होने वाले आक्रमण में क़िले की तरह हमारी रक्षा करेगी।

लेकिन लार्ड कैनिंग ने जो उस समय हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल थे, जेकोब महाशय की इस नीति को नामंजूर कर दिया। वे किसी भी प्रकार यह नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश फ़ौजें अफ़ग़ानिस्तान में होकर जायें और हिरात को वापस लें। उसे निश्चित विश्वास था कि अफ़ग़ानिस्तान में जाकर कोई फ़ौज पहले तो आक्रमण ही नहीं कर सकती, और आक्रमण करने पर जीत नहीं सकती। भले ही रूस अफ़-ग़ानिस्तान का भी दुश्मन हो, परन्तु फिर अगर हमने आक्रमण किया तो सिवाय बदनामी के हमारे हाथ कुछ नहीं पड़ेगा, ऊपर से यह और होगा कि इस समय अफ़ग़ानिस्तान से जो हमारा मैत्री सम्बन्ध है वह भी टूट जायगा। लार्ड कैनिंग ने दूसरा ही रास्ता अख़्तियार किया। उसने अमीर को धन (सहायता के तौर पर) देकर बम्बई से समुद्र के रास्ते बुशाइर को फ़ौजें भेजना निश्चित किया। यह नियमानुकूल भी था। ६ जनवरी सन् १८५७ की सन्धि के अनु-सार यह तै हो चुका था कि ब्रिटिश सरकार १ लाख रुपये महीने की सहायता देगी और उसके बदले में अमीर अपने यहाँ अपने देश की रक्षा के लिए एक निश्चित संख्या में फ़ौज रखेगा। शर्त यह थी कि इस फ़ौज की जाँच पड़ताल अङ्गरेजी अफ़सर कर सकेंगे। यह देखने के

इसलिये आया जो रुपया सहायता के तौर पर दिया जा रहा है उसका सदुपयोग हो रहा है या नहीं लार्ड कैनिंग ने इस सन्धि की आलोचना करते हुये जो कहा था उससे विदित होता है कि वह हस्तक्षेप न करने की नीति का समर्थक था। उसने कहा था—

"हम दिखाते यह हैं कि हम उनकी मदद करना चाहते हैं और पश्चिम के शत्रु से अफ़ग़ानिस्तान की रक्षा की। लेकिन करने को हम अफ़ग़ानिस्तान की पूर्वी सीमा से एक सिपाही भी भेजने का बहाना नहीं करना चाहते। अपनी दी हुई सहायता के बदले में हम नहीं चाहते कि हमें उनकी राजकीय परिषद् में बोलने का या उनके घरेलू मामलों में थोड़ा भी हस्तक्षेप करने का अधिकार मिले।"

सच बात तो यह है कि लार्ड कैनिंग यही नहीं मानता था कि अफ़ग़ानिस्तान के मजबूत और शक्तिशाली हो जाने से ब्रिटिश साम्राज्य को कोई हानि हो सकती है। इसके विपरीत उसका तो मत था—"हमें इससे सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये कि अफ़ग़ानिस्तान विभाजित है, और इस प्रकार आक्रमण करने में अयोग्य वरन् मैं तो चाहूँगा कि हमारी सीमा पर वह शक्तिशाली और ठोस रोक की तरह रहे।"

लेकिन अँग्रेज हिम्मत हारने वाले व्यक्ति नहीं हैं। जब प्रत्यक्ष रूप से वे अफ़ग़ानिस्तान को पंगु न बना सके तो दूसरे ही उपाय किये जाने लगे। वह दूसरे उपाय थे, अफ़ग़ानिस्तान के विविध अंगों को उससे तोड़ कर उसे लूला लंगड़ा बना देना जैसे सबसे पहले नम्बर बिलोचिस्तान का आया और सन् १८७८ ई० में उसे अफ़ग़ान राज्य से छीन कर अँग्रेजी साम्राज्य में जोड़ लिया गया। याद रहे बिलोचिस्तान का सूबा अफ़ग़ानिस्तान राज्य का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग था। यह सूबा अफ़ग़ानिस्तान राज्य को समुद्र तट से मिलाता था जब बिलोचिस्तान को अफ़ग़ानिस्तान से इस प्रकार तोड़ लिया गया तो वह समुद्र से बिल्कुल दूर हो गया अब उसके लिये कोई मार्ग न था। इसी नीति के अन्तर्गत कलात भी अफ़ग़ान अमीर से छीन लिया गया। कलात का जागीरदार अफ़ग़ानिस्तान का सामन्त था।

इस नीति ने अफ़ग़ानिस्तान को समुद्र तट से हटा दिया जिसका अर्थ था कि उसकी समृद्धि को ज़बर्दस्त धक्का लगा । अमीर अब्दुलरहमान के शब्द कितने ठीक बैठते हैं—'इस नीति ने देश की छाती पर संगीनें ही तान दीं । और पाठकों को मालूम है इस प्रकार कलात और बिलोचिस्तान लेने से पूर्व ही सिन्ध और सीमा प्रान्त, जो अफ़ग़ान राज्य के ही अंग थे ले लिये गये थे । और फिर कुर्रम, खैबर और आगे की घाटियों की कहानियाँ हैं और अन्त में है डूरण्डमिशन का नाटक । पाठक पिछले अध्यायों में यह जान चुके हैं । यद्यपि यह भाग अफ़ग़ानिस्तान से छीन लिये गये थे, लेकिन फिर भी, भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति और सभ्यता के विचार से वे अफ़ग़ानिस्तान से अटूट बन्धन में जुड़े हुये थे । इस प्रकार बल पूर्वक अंगछेदन कर देने से ही सीमा प्रान्त (विशेषकर कबाइली देश की) वह समस्या उठ खड़ी हुई जिसे हल करने में लाखों का हिन्दुस्तानी सोना और लाखों हिन्दुस्तानी जानें चली गईं ।

सीमा प्रान्त में ब्रिटिश नीति का उद्घाटन सर ओबर मेटकाफ ने आसफअली के एक व्याख्यान पर किया था । पाठकों को ज्ञात होगा सर ओबरी मेटकाफ तब विदेश मंत्री थे जो प्रान्त में रहते थे कबाइलों की दशा का वर्णन करते हुये उन्होंने कहा था —"ब्रिटिश शासित सीमा और डूरण्डसीमा के बीच कोई भी स्वतन्त्र प्रदेश नहीं है ।" इस पर जब श्री आसफअली जी ने कुछ आश्चर्य प्रकट किया तो महाशय मेटकाफ ने जोड़ दिया—"अन्तर्राष्ट्रीय विचार से ।" आगे चलकर विदेश मंत्री महाशय ने कबाइली देश में ब्रिटेन की मौजूदा और और पिछली नीति का खुलासा करते हुये कहा—"कुछ भागों में तो हमारा थोड़ा बहुत शासन है, और बाकी बचे हुओं में कबाइलों से होने वाली हमारी सन्धियों के अनुसार, हमने उन्हें स्वतन्त्र छोड़ रखा है, उनके सारे मामले उन्हीं के हाथ में हैं ।" इसी समय उन्होंने यह भी बताया कि कबाइली ब्रिटिश रक्षित हैं और उनके बीच सन् १९२३ से हमारी 'शान्तिपूर्वक प्रवेश, की नीति चली आ

रही है।" बात को आगे बढ़ाते हुये महाशय मेटकाफ ने कहा था—"मुझ से तक़ाज़ा किया जा रहा है कि मैं अब 'सीमा पर' (Close boarder) नीति पर आ जाऊँ जो थोड़ी बहुत सन् १६२३ तक चलती रही थी। मैं यह मानने को पूरी तरह तैयार हूँ कि सन् १६२३ तक बहुत अधिक परिवर्त्तन और तोड़ फोड़ होती रही थी हॉलाकि कुल मिलाकर हम इसी नीति पर झुके हुये थे कि कबाइलियों को सर्वथा उन्हीं तक छोड़ दिया जाय और हम किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। सन् १६२३ के बाद से जहाँ तक हो सका है, हम शान्ति पूर्वक प्रवेश की नीति को पालने पर ही दृढ़ रहे हैं।" विदेशमंत्री ने स्वीकार किया था कि 'सीमा पर' नीति चलने से हम अपने कार्य में सफल नहीं हो सके थे। उन्होंने यह भी कहा—"भारत सरकार यह दावा नहीं करती कि वह सर्वथा ठीक मार्ग पर थी। लेकिन यह दावा हम जरूर करते हैं कि यही एक सबसे अच्छी नीति थी जिसे हम निश्चय कर सके, और जिसे कोई भी आदमी इस समस्या से सुलझाने के लिये सुझा सका। अब हमसे कहा जाता है कि हम कबाइली देश को बिल्कुल इसी के लोगों पर छोड़ दें।" और फिर आगे 'बढ़ो' नीति की चर्चा करते हुये इन महाशय ने कहा—"दूसरी नीति यह होगी कि हम सीधे अन्तर्राष्ट्रीय सीमा (डूरैण्ड सीमा) तक पहुँच जायँ, जातियाँ विजय करें, उन्हें निशस्त्र करदें और उन पर शासन करें। लेकिन इस समय मैं कह सकता हूँ, भारत सरकार न तो इस नीति के पक्ष में है और न उसे चलाने का ही विचार रखती है।"

हम कह आये हैं सरकार का उद्देश्य एक ही था। साम्राज्य विस्तार और इसके लिये कबाइलों पर कठोर से कठोर शासन करना। इस उद्देश्य पूर्त्ति के लिये जिस नीति का प्रयोग किया गया उसे हम चाहे जिस नाम से पुकार सकते हैं—"सीमा पर" "मारा और भाग गये, "हर्रा लगे न फिटकरी रँग चोखो ही आवे" "शान्ति पूर्वक प्रवेश" आदि आदि। उसके उद्देश्य पूर्त्ति के लिये जितने भी प्रकार के ढंग हो सकते थे सरकार ने किये। इसके लिये राजनैतिक विभाग में

अफ़सरों का एक विशेष दल बनाया गया, जिसके नीचे बहुत से सरकारी एजेन्ट काम करते थे। तहसीलदार थे। और फिर इन अफ़सरों के पीछे खस्सादार, स्काऊट, लेवियाँ और फौज थीं। इस दूसरे महायुद्ध के पहले पूरे प्रान्त में बहुत बड़ी सेना जमा कर रखी जाती थी। रावलपिंडी से लंडी कोतल तक, अफ़ग़ान सीमा पर स्थित उत्तर में गिलगिट से बिलोचिस्तान में क्वेटा तक छावनियाँ ही पड़ी हुई थी। इन अफ़सरों को लाखों रुपया इसलिये दिया जाता था कि वे रिश्वत देकर या किसी और तरह कबाइलियों को शान्त रख सकें।

और फिर अफ़सरों के कानों तक खबर लाने के लिये गुप्तचर होते थे। ये गुप्तचर कबाइलियों में ही से होते थे। जो रुपये के लोभ में अपने ही घर का भेद आकर बता जाते थे। इधर के हिन्दुस्तान में जो स्थान जमींदारों का है वही स्थान कबाइली देश में मालिकों का है। ये मालिक कबाइलियों को दास बनाने की बेड़ियों का काम करते थे। और इसके लिये उन्हें नकद तो मिलता ही था साथ में उपाधियाँ और खिताब भी मिलते थे। सच तो यह है कि हमारे हाथों से छीन छीन कर करोड़ों का धन कबाइली और इन मलिकों की सेवा में भेंट दिया जा चुका है।

और ये छोटे छोटे हिन्दुस्तानी अफ़सर जैसा कि पाठक खुद ही सोच चुके होंगे, बहुत अधिक अनैतिक और लोभी थे। इनका एक ही काम रहता था जैसे भी हो रुपया वसूल करना। इसके लिये इन्होंने हिसाब में तो गड़बड़ी के साथ ही रिश्वत, बेगार नजराने, डालियाँ आदि जितनी भी प्रकार की रुपया चूसने की तरकीबें हो सकती थीं, काम में लाईं। हिसाब का देखने वाला कोई न था। लेकिन यह दोष अधिकांश में ब्रिटिश अफ़सरों पर नहीं लगाया जा सकता। वे किसी अंशों में ईमानदार कहे जा सकते थे। और फिर जो यह वृद्धि होती थी, उसकी तुला यह थी, कि इस अफ़सर ने ब्रिटिश राज्य की सीमा आगे बढ़ाने में कितना काम किया है।

अपने 'न्याय' का कौशल दिखाने के लिये प्रायः ये लोग झगड़े पैदा किया करते थे।

और फिर कबीलों की आपसी लड़ाइयों से भी ब्रिटिश सरकार को खूब मजा मिला है। जब जब ये लोग आपस में लड़े तब तब सरकार ने उन्हें बिना बात बीच में कुछ कर दबाने की कोशिश की। अपर मोहमंद इतर मोहमंदों को बुरा भला कहते और तब लड़ाई होती जिसमें लाभ ब्रिटेन सरकार का होता था।

कबाइलियों को जीतने का एक प्रमुख और सहज उपाय उनके देश में सड़कें बनाना था। सड़कें किसी भी ऐसे देश में बहुत महत्व रखती हैं। इसका अर्थ होता है अपने घर में चोर का घुसना। असभ्य कबाइली लोगों को सभ्य बनाने का यह एक उपाय था। इस शुभ कार्य से प्रेरित होकर एक सड़क मोहमंदों के देश में होकर निकाली गई। वजीरिस्तान में इसी प्रकार और भी सड़कें बनाई गईं और बनाने का प्रयत्न किया गया। लेकिन पाठक ये न समझें कि कबाइलियों ने इस अपमान को सहज ही पी लिया। उन्होंने बहुत बड़ा विरोध किया था। एक एक इंच सड़क बनाने में एक एक रुपया लगा है कहें तो बहुत बड़ी अत्युक्ति न होगी। किसी भी बाहरी व्यक्ति को इस प्रकार घुसने का मार्ग देना पठान बहुत बुरा समझता है। खास कर अफरीदियों ने तो किसी भी शर्त पर मार्ग देना स्वीकार नहीं किया।

कबाइली देश में पहुँचने में दूसरा हथियार सेना रही है। सेना ने, विशेष कर हिन्दुस्तानी सेना से कबाइलियों को तोड़ने में भारी काम किया है। कहा जाता है कि सन् १६३७ के पूर्व ७० वर्षों में कबीला प्रदेश पर २६ बड़े-बड़े आक्रमण हुये थे। इनमें भी अकेले महसूदों और वजीरियों के खिलाफ़ वजीरिस्तान में १७ आक्रमण किये गये थे। इस शताब्दी के आरम्भ की तीस सालों में ४०,००० सैनिकों की फौज जो अच्छे-अच्छे हथियारों से लैस थी, जिसके साथ टैंक, फौजी मोटरें, हवाई जहाज और जितने भी प्रकार के हथियार हो सकते थे, थे। सेना से लड़ते समय सरकार ने एक नीति को खूब ध्यान में रखा है।

सब उपजातियों के खिलाफ़ एक साथ युद्ध न छेड़कर एक-एक के खिलाफ़ एक बार में धावा बोला गया है। लेकिन सन् १८९७ में यह नीति न चल सकी। इसी समय 'डूरेण्ड मिशन' का काम हुआ था, जिसको लेकर सारे सीमाप्रान्त में एक साथ विद्रोह की आग भड़क उठी। वजीरी मोहम्मद, अफरीदी और महसूद सभी अपनी-अपनी रायफलें लेकर चढ़ दौड़े थे। चकद्रा को घेर लिया गया था और पेशावर पर चढ़ाई हो रही थी। इस तूफ़ान को दबाने में सरकार की भारी क्षति हुई थी।

परन्तु इसका परिणाम कुछ भी नहीं। आज भी तो कबाइली ब्रिटिश सरकार के सामने वैसे ही कठिन प्रश्नवाचक चिह्न से खड़े हैं। जार्ज मैकमन ने इस असफलता का उल्लेख करते हुये लिखा है—"विचारकों ने कुछ स्कूलों का कथन है, और उन्होंने फिर फिर कर कहा है, कि यह समस्या ७० साल से भी पहले से हमारे सम्मुख है, इस पर भारी सम्पत्ति खर्च की गई है, लेकिन समस्या फिर भी हमारे सम्मुख है, यह असफलता हमारी चतुराई और योग्यता पर बहुत बड़े कलङ्क की तरह है।" सच बात तो यह है कि हमारे शासक बहुत ही अदूरदर्शी हैं। वे अब भी जानते हैं कि उनके हथियार छीन सकना बिलकुल असम्भव है। जब बड़े-बड़े प्रयत्न असफल हो चुके हैं तो सरकार ने अपनी नीति और उद्देश्य में भी थोड़ा परिवर्त्तन कर लिया है। अब सरकार कबाइलियों पर शान्तिपूर्वक अधिकार स्थापित करना चाहती है।

सरकारी प्रचारक और एजेण्ट सारी दुनियाँ में ढोल बजाकर सुनाते आ रहे हैं कि कबाइली लोग बहुत भयंकर जीव हैं। वे हर वक्त ही इसके लिये तैयार रहते हैं कि कब मौका हाथ लगे और कब वह उपजाऊ प्रान्त पर आक्रमण करें। ब्रिटिश सुरक्षा विभाग के मंत्री ने कहा था—"इस समय जो सीमा प्रान्त में रहता है, वह हर एक नौजवान होने वाला योद्धा है। उनकी सम्मिलित युद्ध शक्ति करीब ५ लाख है, और उनके पास आधुनिक ढंग की २,५०,००० बन्दूकें हैं।

वहाँ का प्रत्येक बन्दूकधारी संसार के श्रेष्ठ निशानेबाजों में से है। सच बात तो यह है कि हाँलाकि पिछले सन् १६३६ से ब्रिटेन युद्ध में लगा रहा था, लेकिन फिर भी कुछ ऐसी जादू की लकड़ी घुमाई गई कि कबाइली एक दम शान्त हो गये। यदि कोई शासक होता तो सम्भव है इस प्रकार के उपद्रव न होते। इसका कारण स्पष्ट है। उपद्रव कराने वाले स्वयं ब्रिटिश अफसर हैं। जब ब्रिटेन की शक्ति युद्ध में लग रही थी तो उन्होंने भड़काने का काम रुकवा दिया। युद्ध के दिनों में सड़कें बनाना, और उसी प्रकार के दूसरे काम इसलिये रोक दिये गये ताकि अँग्रेज महा युद्ध आसानी से लड़ सकें। कबाइली लोग अपनी ओर से कोई आक्रमण पहले सहसा नहीं करते। हाँ जब 'शान्तिपूर्वक प्रवेश' की चतुर नीति के अनुसार सड़कें बनाने की बात की जाती है तो वे भड़क उठते हैं।

सरकारी नीति के एक और अंग हैं हवाई जहाज। भारत सरकार ने वायुयान के आविष्कार को अपने हित में बड़ा परोपकारी समझा और कबाइली लोगों को दबाने के लिये हवाई जहाजों से बम वर्षा होने लगी। वह काम, यान से बम्ब गिराना शाही सरकार की अनुमति से हुआ था। इन जहाजों का प्रयोग बम्ब वर्षा कर नाश करने की योजना बनाई गई थीं। क्या इन्हीं हवाई जहाजों से निर्माणकार्य नहीं हो सकता था? यदि बम्ब गिराने की पूर्व सूचना के लिये पर्चे गिरा कर हितकारी प्रचार के पर्चे गिराये जाते तो सम्भव था यह समस्या जल्दी हल हो जाती। कहा यह गया है कि बम्ब गिराने के पूर्व हम सूचना दे देते हैं ताकि गाँव वाले गाँव छोड़ कर भाग जायँ। लेकिन इस सूचना का अर्थ ही क्या होता जब गाँव जला दिये जाते लोग बे घरबार कर दिये जाते। बात यह थी कि कबाइली लोग गुरिल्ला युद्ध में प्रवीण थे और उन्हें जीतने के लिये और कोई उपाय न था, ये हवाई जहाज ही काम कर सकते थे। ये पर्चे गिराने का परिणाम ही क्या होगा जब उन्हें पढ़ने वाला ही कोई नहीं है और फिर जिन्हें हटाना हो सकता है उन्हें तो लड़ाकू कबाइली पहले ही हटा लेते हैं। ऐसी दशा में रह वेही लोग जाते हैं जो अयोग्य और पंगु हैं जैसे बुड्ढे, स्त्रियाँ और बच्चे। ऐसी

दशा में पर्चों के बाद जब बम्ब वर्षा होती है तो यह बुड्ढे बालक और स्त्रियाँ ही मारी जाती हैं। और इनके अलावा भी एक चीज रह जाती है। यह हैं मस्जिदें। पठान के किसी भी गाँव में प्रायः ऐसा न पायँगे जहाँ एक या दो मस्जिदें न हों। इस बम्ब वर्षा की नीति ने सारे हिन्दुस्तान को एक कोने से दूसरे कोने तक कँपा दिया है। वह एक ऐसा प्रश्न है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। केन्द्रीय असेम्बली में इस पर अनेक बार बहस हुई और इसका तिरस्कार किया गया। सन् १९३५ के अगस्त में डा० खान साहब ने मोहमंद में होने वाली गोलाबारी के सम्बन्ध में एक तिरस्कार का प्रस्ताव रखा था। स्मरण रहे १९ अगस्त १९३५ में मोहमंद के गाँवों पर गोलाबारी शुरू हो गई थी। पर्चे गिराने के सम्बन्ध में डा० खान साहब ने कहा था—"और जो सूचना देने की बात रही सो पहला नोटिस मैंने स्वयं २२ अगस्त को (जब कि गोलाबारी १९ अगस्त को शुरू हो गई थी) पेशावर प्रेस में छपते देखा था और फिर आप लोगों ने सरकार को अपनी बात चीत में यह कहते सुना होगा कि वे पहले लोगों को घरों से निकल आने की चेतावनी दे देते हैं, परन्तु मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि पहली चेतावनी जो उन्हें मिलती है वह हवाई जहाज से गिरने वाला पहला बम्ब देता है। उनके पास यान विध्वंशक तोपें नहीं हैं, इसलिये आप उन पर बिना किसी डर या खतरे के बम्ब गिरा सकते हैं।"

सरकार के काम की रक्षा करते हुये तत्कालीन रक्षा मंत्री महाशय जी० आर० एफ० टौटेनहम ने डा० खान साहब को उत्तर दिया था—"अभी तक कबाइली लोग हमारी पहुँच से बाहर थे। लेकिन अब यह बात नहीं है क्योंकि अब सरकार के पास वायु सेना के वीर योद्धा हैं। सरकार ने (गोलाबारी के पूर्व) हमेशा २४ घंटे पहले का नोटिस दे दिया है। 'मानवता की रक्षा के लिये' कह कर हम इस गोलाबारी को निर्दोष कह सकते हैं, बहुत कम दुर्घटनाएँ हुई थीं।" यह तो सहज ही भुला दिया गया था कि जा सकने योग्य सब आदमी गाँव छोड़ कर चले गये थे, मैदान में लड़ रहे थे। इसलिये हवाई जहाज की गोलाबारी तो

केवल कुछ बुड्ढों, बच्चों, स्त्रियों और पशुओं के लिये ही थी और जो थोड़ी दुर्घटनाएँ हुईं वे इन्हीं पंगु लोगों के ऊपर। सरकार का न्याय विचित्र है। इस प्रकार निर्बल स्त्रियों और बच्चों पर गोलाबारी करते सरकार को शर्म नहीं आई। जब जर्मनी ने लन्दन पर गोलाबारी की थी तो उसे 'हूण', 'जंगली' 'बाल-घातक' आदि आदि गालियाँ दी गईं थीं। तब क्या उसी न्याय से यह गालियाँ ब्रिटिश सरकार पर नहीं पड़ती। लेकिन नहीं, सरकार के यहाँ न्याय की एक नहीं दो किताबें हैं। एक वह जिसमें शासक वर्ग के लिये न्याय व्यवस्था लिखी है, दूसरी वह जिसमें शासित ग़ुलाम देश के वासियों के लिये न्याय व्यवस्था लिखी रखी है।

जब प्रथम महायुद्ध हो चुका था, तो 'लीग आफ नेशन्स' बैठी। उस समय एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया था कि भविष्य में सभ्य संसार हवाई गोलावारी बन्द कर दे। लोगों का विचार था कि ब्रिटेन इस पर बड़ी जल्दी सहमत होगा, और इसे पास कराने का प्रयत्न करेगा। कारण उस महायुद्ध में सब से अधिक हानि जर्मनी के वायुयानों के द्वारा उसी को सहनी पड़ी थी। परन्तु महा आश्चर्य! ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने कहा था कि इस प्रस्ताव से ब्रिटेन को बरी रखा जाय ताकि वह कबाइली देश पर गोलावारी कर सके। यह भी ब्रिटेन की नीयत।

बाद को स्वर्गीय भूलाभाई देसाई ने भी इसका विरोध किया था कि इस प्रकार की गोलावारी हो। लेकिन वह न हुआ। सरकार की साम्राज्य विस्तार की जो भूख थी वह सहज ही तृप्त होने वाली न थी। इसे पूरा करने के लिये जितने भी प्रकार की भली बुरी नीति हो सकती थी उसने अख्तियार की।

पठानों के कुछ नेता

पिछले पृष्ठों में हमने पाठकों के सम्मुख पठानों के जीवन को विविध पहलुओं से रखा है। पठान जैसे जो कुछ हैं वह हम लिख चुके हैं। उनका सामाजिक, वैयक्तिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन किस प्रकार का है, इसके बताने की अब यहाँ आवश्यकता नहीं दीखती। इस परिच्छेद में हम पठानों के प्रमुख नेताओं का परिचय देंगे। किसी भी जाति या राष्ट्र की विशेषताओं को समझने के लिये, तथा यह जानने के लिये कि अमुक राष्ट्र ने अमुक कार्य क्यों किया, यह आवश्यक है कि उसके नेताओं को देखें। भारतवर्ष क्यों धर्म प्रधान देश है, इसका उत्तर हमें ऋषियों से मिलता है। जब समग्र संसार भयंकर युद्धों में, घातक राजनैतिक धारणाओं में पड़कर विनाश की आग जला रहा है उस समय हिन्दुस्तान क्यों अहिंसावादी बन गया? इस प्रश्न का एक उत्तर पाठक कहेंगे गाँधी जी हैं। निस्सन्देह यह हमें मानना पड़ेगा कि यदि गांधीजी न हुये होते तो बहुत सम्भव है कि हिन्दुस्तान भी अन्य राष्ट्रों की भाँति हिंसात्मक उपायों में संलग्न होता। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि गांधीजी ही को इसका पूरा श्रेय मिलना चाहिये, स्वयं जनता भी अहिंसा के लिये उत्सुक थी, अहिंसा ग्रहण करने का उसमें माद्दा था। किसान खेत में अन्न बो सकता है, परन्तु धरती में भी अगर उत्पन्न करने की शक्ति न होगी तो लाख प्रयत्न करने पर भी कुछ पैदा न होगा। न कुछ में से कुछ नहीं निकल सकता। सच तो यह है कि नेता के दो काम हैं। एक काम के विचार से हम उसे किसान कह सकते हैं तथा दूसरे काम के विचार से नेता शरीर की नाड़ी के समान हैं। किसान की तरह वह बीज फेंकता है, धरती की सुप्त शक्तियों को जाग्रत या उत्तेजित करने के लिये खाद डालता है। किन्तु नाड़ी के समान नेता अपनी जाति या राष्ट्र की गति विधि को बताता है। यदि हमें जानना है कि आज क्यों कुछ पठान तो स्वतन्त्र पठानिस्तान की माँग कर रहे हैं, और कुछ लीग-शासक पाकि-

स्तान में जाने की हठ कर रहे हैं, तो हमें चाहिए कि दोनों पक्षों के नेताओं को देखें। एक ओर डा० खान साहिब, अब्दुलगफ्फार खाँ, आदि-आदि हैं, तो दूसरी ओर अब्दुल क़य्यूम साहब आदि हैं। पठानों में हमने जिन गुणों और प्रवृत्तियों का होना बताया है उनमें से कुछ अंश में तो प्राकृतिक कारणों में से हैं और कुछ जातीय कारणों से। आज से ३० वर्ष पहले पठान साम्प्रदायिक नहीं थे, और आज हैं, इसका कारण उनके कुछ नेता हैं। तात्पर्य यह कि यदि हमें पठानों की राजनैतिक, सामाजिक आदि धारणाओं का पता लगाना है तो यह आवश्यक हो जाता है कि उनके नेताओं से जान पहिचान करलें। उदाहरण के लिए खुदाई खिदमतगारों का आन्दोलन पठानों की राजनैतिक जाग्रति का प्रमुख लक्षण है। अब अगर हमें यह जानना है कि सीमा प्रान्त जैसे देश में, और पठानों जैसी लड़ाका जाति में खुदाई खिदमतगार बन्दूकधारी न होकर अहिंसा के भक्त कैसे हो गये तो आवश्यक है कि इसके मुखिया पथ-प्रदर्शकों तथा खान अब्दुलगफ्फार खाँ, डा० खान साहब के जीवन वृत्तों को जान लें। इसी विचार से प्रेरित होकर हम इस परिच्छेद में पाठकों के सम्मुख कुछ प्रमुख व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवनचरित लिखते हैं। जीवन चरित लिखने में कोरी घटनाओं और जन्म मरण की तिथियों को लिखना ही हमारा उद्देश्य नहीं है। हम प्रयत्न करेंगे कि उन व्यक्तियों के विचारों के विकास को भी लिख सकें। राजनैतिक विचार से सीमाप्रान्त में अभी अरसे तक कोई खास दलबन्दी नहीं थी, परन्तु बाद को लीग के प्रवेश ने दो दल कर दिये। हम दोनों के नेताओं का परिचय लिखेंगे।

मौलवी सय्यद अहमद 'बरेलवी'

मौलवी सय्यद अहमद बरेलवी पठान जागरण के प्रथम नेता थे। प्रथम कहने पर पाठक स्लेट पेंसिल लेकर न बैठ जायँ यह गिनने के लिये कि उनसे पहले और कितने वीर पुरुष हो चुके हैं। यह सत्य है कि पठानों में अपनी स्थिति के प्रति असन्तोष बहुत पहले ही से था, परन्तु यह असन्तोष मौन था। सिक्खों के 'अत्याचार' (जैसा कि

कुछ लोग भूल से कहते हैं) वे लोग चुपचाप सह रहे थे। इस चुप्पी का कारण था सिक्खों की बढ़ती हुई शक्ति । हरी सिंह नलवा का आतंक जगतप्रसिद्ध है। इस मौन असन्तोष को पहली बार भाषा सय्यद अहमद बरेलवी साहब ने दी । इसी आधार पर हम कहते हैं कि सय्यद अहमद पहले नेता हैं। परम्परागत नियम के अनुसार ही (यह परम्परा आज भी चली आ रही है) मौलवी साहब के व्यक्तित्व को भी अनेक प्रकार से नीचा करने के प्रयत्न किये गये हैं। जिस प्रकार खुदाई खिदमदगारों का सम्बन्ध बोलशेविक रूस से जोड़ा जाता है उसी प्रकार सय्यद अहमद साहब को भी वहाबियों के एक दल से सम्बन्धित बताया जाता है । वे ऐसे व्यक्ति हैं जिनको जनता के सामने जान बूझकर कुछ का कुछ दिखाया गया है। 'हिन्दुस्तानी मुसलमान' पुस्तक के प्रसिद्ध लेखक महाशय डबलू० डबलू० हन्टर हैं । आपने अपनी इस पुस्तक में मौलवी साहब को डाकू और लुटेरा तक कहने में संकोच नहीं किया है। उन्हें वहाबियों का एजेण्ट प्रसिद्ध करने का जाल उन्होंने बिछाया था । यह जाल इतना बड़ा था कि श्री आसफअली जैसे व्यक्ति भी धोखा खा गये और अपनी रिपोर्ट में उन्हें वहाबी मान लिया । उनके सम्बन्ध में ऐसे ही और भी भ्रमपूर्ण बातें फैलाई गई हैं। यहाँ तक कि संसार की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक 'एन—साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' (ब्रिटेनिका विश्वकोष) तक ने अपनी ग्यारहवीं जिल्द पृष्ठ ८४९ में लिख मारा कि सय्यद अहमद टर्की गये और वहाँ की राजधानी कुस्तुनतुनिया में ६ साल तक रहे । सत्य यह है कि हिन्दुस्तान के बाहर मक्के में, (टर्की में उन्होंने क़दम भी नहीं रक्खा) वह केवल २ साल ११ महीने के लिये रहे थे। ऐसी ही अनेकों भ्रमपूर्ण बातों से मौलवी साहब का व्यक्तित्व धुँधला हो रहा है और सत्य का पता लगाना कठिन है। तथ्य क्या है? इस संक्षिप्त जीवन परिचय में हम यही प्रयत्न करेंगे कि उनके व्यक्तित्व के चारों ओर छाये इस बादल को हटादें ।

सय्यद अहमद बरेलवी, जैसा कि नाम से ही विदित होता है

बरेली में उत्पन्न हुये थे। निस्सन्देह जैसा कि आप शायद सोचते हों, वे सीमा प्रान्तीय पठान नहीं थे। पठानोंसे उनका सम्बन्ध सबसे पहले तो समधर्मी होने का था और उसके बाद एकदेशीय होने का। बचपनमें बरेलवी साहब बड़े हृष्ट पुष्ट थे। उनका शरीर गठीला था और सैनिक जीवन के लिये जैसे शरीर की आवश्यकता होती है, वैसा ही उनका भी था। प्रारम्भिक शिक्षा बरेली में ही हुई। बरेलवी साहब स्वभाव से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। किन्तु जीवन में स्थिरता न थी। अपनी युवा अवस्था में ही वे अपने कुछ साथियों के साथ लखनऊ की ओर चल दिये। यह प्रस्थान जीविका के लिये था। बरेलवी साहब के माँ बाप के सम्बन्ध में हमें ज्ञात नहीं है। परन्तु इससे और उनके भावी जीवन को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बचपन में माँ बाप का दुलार उन्हें शायद थोड़े ही दिन मिला था। लखनऊ में क्या किया यह तो नहीं मालुम परन्तु इतना निश्चित है कि वे वहाँ भी अधिक दिन नहीं रुके और वहाँ से देहली चले गये। देहली उस समय विद्या का केन्द्र था। विद्या के महकते वातावरण को देखकर उनकी भी इच्छा हो आई कि पढ़ना लिखना प्रारम्भ करना चाहिये। अब प्रश्न था 'पीर' का। यह इधर उधर खोज ही रहे थे कि शाह अब्दुल अजीज की निगाह इन पर पड़ गई। शाह अब्दुल अजीज इनकी धार्मिक प्रवृत्ति देखकर आकर्षित हुये थे। उन्होंने इस मेधावी युवक के लिये निश्चय किया कि उसकी शिक्षा का प्रबन्ध विशेष रूप से करना चाहिये। शाह अब्दुल अजीज वली उल्लाई सम्प्रदाय के दूसरे इमाम थे और बड़े प्रतिभाशाली एवं तेजस्वी व्यक्ति थे। उन्होंने निश्चय किया कि इस बालक को शाह वलीउल्ला के आन्दोलन का सैनिक बनाया जाय। सय्यद अहमद को उन्होंने शाह वलीउल्ला के राजनैतिक सन्देश और उस सन्देश का मुस्लिम दृष्टिकोण से धार्मिक महत्व भली भाँति समझाया। सय्यद अहमद की प्रतिभा प्रस्फुटित हो रही थी। उन्होंने बड़ी शीघ्रता से इस सन्देशको समझ लिया और उसे ग्रहण भी कर लिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे देश और धर्म उद्धार ही को अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य रक्खेंगे।

इस प्रकार जीवन के उषाकाल में ही सय्यद अहमद ने अपने हृदय में संघर्ष का वह अंकुर जमा लिया जो आगे जाकर ख़ूब लहराया और फला फूला। शाहवली उल्लाई मदरसे में दाखिल होकर और शिक्षा पाकर किन भावनाओं को उन्होंने अपने हृदय में जमाया होगा यह हम तभी जान सकेंगे जब शाहवली उल्लाई आन्दोलन के मूल सिद्धान्त को समझ लें। इसके संस्थापक शाहवली उल्ला ने इस आन्दोलन की नींव मुग़ल साम्राज्य की हिलती दीवारें तोड़ कर रखी थी। वे मुग़ल शासन को टूटते देख रहे थे, साथ ही इस समय राजतंत्र व्यवस्था में अनेकों दोष आ गये थे। अकबर के समय की हिन्दू मुसलिम एकता नष्ट हो चुकी थी। राजतंत्रवाद में सड़न आ गई थी। शाहवली उल्ला ने यह परिस्थिति देखकर इसके खिलाफ विद्रोह करने का निश्चय किया। स्मरण रखना चाहिये कि उनके आन्दोलन की समस्त भावनायें मुस्लिम दर्शन से प्रेरित थीं। इसका तात्पर्य कोई यह न समझे कि वे साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके थे। प्रमाण दिये जा सकते हैं कि वे साम्प्रदायिक या वर्गवादी न थे। उनके चार मुख्य सिद्धान्त थे। (१) ख़ुदापरस्ती (ईश्वर भक्ति)। (२) इन्साफ़ (न्याय)। (३) ज़ब्तेनफ़्स (संयम) (४) तर्बियतेनफ़्स (आन्तरिक और बाह्य शुद्धता।) राजनैतिक भूमि पर उनका आदर्श समाजवादी प्रजातंत्रीय सरकार का था। वे धार्मिक स्वतंत्रता के पोषक थे। हमारे सय्यद साहब को भी शाह अब्दुल अज़ीज़ की अध्यक्षता में इसी प्रकार की उदार शिक्षा मिली थी। जब वे जीवन के कार्य क्षेत्र में आये तो इन्हीं आदर्शों को उन्होंने अपने सम्मुख रखा।

सय्यद साहब के भावी जीवन की घटनायें और उनके विचार लिखने के पूर्व हम आवश्यक समझते हैं कि श्री आसफ़अलीजी का इस सम्बन्ध में मत उद्धृत कर दें। मौलवी साहब की जीवन घटनाओं पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है—"लेकिन हम स्वर्गीय सय्यद अहमद (वहाबी) और उनके दृढ़ निश्चयी हिन्दुस्तानी साथियों के गुट, जो सीमाप्रान्त के अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाये जाने के पूर्व वहाँ बस गये थे, की हलचलों को (राजनैतिक आन्दोलन का) प्रारम्भ

मान सकते हैं। वे पिछली सदी के लगभग सातवें दशक तक ब्रिटिश सत्ता से लगातार लड़ते रहे। जैसे-जैसे कोई शासन की रिपोर्ट के पन्नों को पढ़ता है वह स्वीकार करता है कि सय्यद अहमद साहब और उनके अनुयायियों की हलचलों में भारत की मुक्ति पाने की अभिलाषा सुप्त रहती थी। फ़र्क इतना ही था कि हिन्दुस्तान में जहाँ देश भक्तों के ऐसे दल थे जो कि धीमे से भी अपने भावों को प्रकट नहीं कर सकते थे, वहाँ इन 'ग़ैर क़ानूनी भगोड़ों' ने हिंसात्मक ढंग से लड़ना और तंग करना शुरू कर दिया था।" इस लम्बे उद्धरण के देने में हमारा उद्देश्य यही रहा है कि पाठक यह समझ जायँ कि सय्यद साहब ने जो लड़ाई लड़ीं वे प्रत्यक्ष रूप में साधारण आदमी को साम्प्रदायिक दीख पड़ेंगी लेकिन वास्तव में ऐसी न थीं। भारत की स्वाधीनता, किसी भी प्रकार से, फिर चाहे वह अपने भाइयों का ही क्यों न हो, अत्याचार से देश को बचाना ही उनका अन्तिम ध्येय था।

हम कह चुके हैं बालक सय्यद अहमद आरम्भ से ही बड़ा हृष्ट पुष्ट और शक्ति सम्पन्न था। सैनिक जीवन की ओर उसका रुझान भी था। जब पढ़ाई ख़त्म हो चुकी तो सय्यद अहमद बरेलवी ने स्कूल छोड़ दिया और तत्कालीन नरेश जसवन्त राव होल्कर की सेना के एक सेनापति अमीर ख़ाँ पिण्डारी की घुड़सवार पल्टन में सम्मिलित हो गये। यद्यपि उन्होंने नौकरी करना स्वीकार कर लिया था, परन्तु वे अपना आदर्श और स्कूल की प्रतिज्ञा नहीं भूले थे। उन्हें मालूम था कि अङ्गरेज़ी साम्राज्य हमारा दुश्मन है। होल्कर की सेना में वे यही सोचकर आये थे कि यहाँ रहकर वे अपने आदर्श की पूर्ति भी करते रहेंगे। लेकिन तभी उन्होंने देखा कि उनका सेनापति अमीर ख़ाँ अङ्गरेज़ों से मिल गया है। बस उसी क्षण उन्होंने नौकरी को छोड़ दिया और दिल्ली वापिस आ गये।

दिल्ली में आकर सय्यद अहमद फिर से अपने गुरु शाह अब्दुल अज़ीज़ की सेवा में आ गये। इस बार उन्होंने अपने को पूरी तरह गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया। इस समय शाह अब्दुल अज़ीज़

एक बड़ी सेना बनाने की तैयारियाँ कर रहे थे। इस तैयारी का खास कारण था। जब शासकों के अत्याचारों से वे त्रस्त हो गये तो उन्होंने हिन्दुस्तान को 'दारुल हरब' घोषित कर दिया। 'दारुल हरब' का अर्थ होता है, एक ऐसा देश, जहाँ किसी भी मुसलमान का शान्ति पूर्वक रहना धर्म के विरुद्ध है। अर्थात् जिस स्थान को दारुल हरब क़रार दिया जा चुका है, उसके प्रत्येक मुस्लिम निवासी का यह धार्मिक कर्त्तव्य है कि या तो वह उस स्थान से निकल जाय (हिजरत कर जाय) या युद्ध करके वहाँ के शासन को या उसके रवैये को बदल दे। इस फ़तवे से बड़ी हलचल मच गई। शाह साहब भी केवल ऐलान करके ही चुप नहीं बैठ रहे। उन्होंने जन-क्रान्ति करने के लिये पूरी-पूरी तैयारियाँ शुरू कर दीं। इस समय उन्होंने अपनी संस्था या सम्प्रदाय को दो भागों में बाँट दिया। एक वर्ग का काम था लोगों में क्रान्ति और धर्म का प्रचार करे। इसका काम उन्होंने अपने धेवते शाह मुहम्मद इसहाक को सौंपा। मौलाना मुहम्मद याकूब उनके सहायक नियुक्त हुये थे। दूसरा विभाग था सेना का। इसका काम था सेना इकट्ठी करना। सय्यद अहमद बरेलवी को शाह अब्दुल अजीज ने इसी का अध्यक्ष नियुक्त किया। सय्यद अहमद बरेलवी के सहायक थे शाह अब्दुल अजीज के भतीजे शाह इस्माइल और मौलाना अब्दुल हयी। इस प्रकार इस सेना के अध्यक्ष बन कर सय्यद अहमद बरेलवी के जीवन का भविष्य निश्चित था। यह उनके जीवन का चौराहा था जहाँ पर उनके असमंजस को उनके गुरुदेव ने दूर किया तथा बाँह पकड़ कर एक मार्ग पर भी लगा दिया। इसके बाद सय्यद साहब सीधी एक ही दिशा में चले गये।

अब काम का समय आया था। मौलवी साहब ने अपने दोनों सहयोगियों—शाह इस्माइल और मौलाना अब्दुल हयी को साथ लिया और सारे देश का दौरा करना शुरू कर दिया। इस दौरे का उद्देश्य था अधिक से अधिक संख्या में सिपाही इकट्ठे करना। मौलवी साहब स्थान स्थान पर जाकर जनता के सामने स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा की अपील

करते। वे लोगों को भावी धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने के लिए उत्साहित करते थे। कुशल सेनापति होने के साथ ही साथ सय्यद साहब अच्छे योग्य वक्ता भी थे। उनके व्याख्यानों का प्रभाव बहुत गहरा पड़ता था और उसकी मार्मिकता से प्रभावित होकर हज़ारों की संख्या में श्रोता लोग आते थे। ये लोग जिस क्षण व्याख्यान सुनते, उस समय अपने दिल पर क़ाबू रखना कठिन हो जाता। वे सहर्ष 'बैत' करते थे यानी आपसे दीक्षा लेते थे। यह आन्दोलन निरन्तर बढ़ता जा रहा था। अङ्गरेज और मुगल सम्राट् के चापलूस भक्त यह सब देखते और अपना सिर पीट कर रह जाते। इससे अधिक बेचारे कर भी क्या सकते थे। उनमें इतना साहस न था कि खुले आम इस [illegible] का सामना कर सकें। इधर तो सय्यद साहब स्थान-स्थान पर घूम कर सेना एकत्रित कर रहे थे, उधर दूसरी ओर शाह अब्दुल अज़ीज़ अपनी वृद्धावस्था और अनेक भीषण रोगों के होते हुए भी प्रति सप्ताह, शुक्रवार को दिल्ली में आग बरसाने वाले व्याख्यान झाड़ रहे थे।

इसी समय एक ऐसी घटना होगई जिससे आन्दोलन की दिशा परिवर्तन के साथ ही सय्यद बरेलवी के जीवन की दिशा भी बदल दी। हम कह चुके हैं कि यह सङ्गठन मुस्लिम दर्शन से प्रेरित था। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि यह मुस्लिम वर्ग की ओर विशेष रूप से पक्षपाती था। घटना यह हुई कि जिस समय सय्यद अहमद साहब क्रान्ति के सन्देश सुनाते-सुनाते रामपुर पहुँचे तो वहाँ अकस्मात् ही उन्हें कुछ अफ़ग़ान मिल गये। इन अफ़ग़ानों ने सय्यद साहब से शिकायत की कि पंजाब तथा अन्य सिक्ख अधिकृत भागों में सिक्ख राज्य मुसलमानों पर अत्याचार कर रहा है। पहले तो अत्याचार की ही बात बुरी थी, ऊपर से यह कि उनके सजातीयों पर। बस फिर क्या था, बिजली-सी छू गई। मुस्लिम धार्मिक कट्टरता जाग पड़ी। प्रतिशोध लेने के लिये सय्यद साहब और उनके साथी अकुला उठे। यहीं पर उन्होंने निश्चित किया कि अङ्गरेजों से लड़ने के पूर्व सिक्खों से लड़ लिया जाय। शाह वलीउल्लाई आन्दोलन के भाग्याकाश में यह धूम-

केतु उगा था, जिसे कोई न देख सका। जब आन्दोलनकारियों का रुख भी पक्का हो गया तो अङ्गरेजों ने भी अपना रंग बदल लिया। पहले जहाँ सय्यद साहब के पीछे खुफिया पुलिस घूमती थी, उन्हें शान्तिपूर्वक न बैठने देती थी, वहाँ अब जहाँ कहीं वे जाते उनका स्वागत होता।

अभी यह चल ही रहा था कि सय्यद अहमद बरेलवी साहब हज करने के लिए मक्का शरीफ चले गये। मक्का में वे २ वर्ष ११ महीने रहे थे। इसी बीच सन् १८२४ में उनके गुरु शाह अब्दुल अजीज का स्वर्गवास हो गया।

हज से लौटने पर सय्यद साहब ने देखा उनके पूर्व गुरु का देहान्त हो चुका था और उनके स्थान पर शाह मुहम्मद इसहाक जाँनशीन हो गये थे। सय्यद साहब ने बाक़ायदा शाह मुहम्मद इसहाक की बैत की यानी उन्हें अपना धर्मगुरु स्वीकार कर लिया। वह जो योजना विचार कर ही छोड़ गये थे, उसे पूरा करने का अब समय आ गया था। पंजाब के सिक्खों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उन्होंने तैयारियाँ शुरू कर दीं। आक्रमण करने के लिए एक योजना निश्चित हुई। यह इस प्रकार थी। पहले सय्यद अहमद बरेलवी साहब हिन्दुस्तानी मुसलमानों की सेना इकट्ठी करें और फिर वे करांची के रास्ते काबुल पहुँच जायें। काबुल पहुँचने के बाद खैबर के दर्रे से वे हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर दें। यह आक्रमण राजा रणजीतसिंह पर होगा। इसमें या तो उन्हें हराकर उनका राज्य ही छीन लिया जायगा या फिर उनसे वचन ले लिया जायगा कि वह मुसलमानों पर अत्याचार न करें। इसके बाद सम्पूर्ण भारत को अङ्गरेजों के पंजे से मुक्त करा दें।

हज से वापस आने के बाद निश्चित योजना के अनुसार सय्यद साहब ने भारत का भ्रमण करना आरम्भ कर दिया। अपने सहयोगियों को साथ लेकर जब उन्होंने भारत भ्रमण किया तो उन्हें दो हजार अच्छे सैनिक मिल गए। ये सैनिक अपने को मुजाहिदीन कहते थे। इस सेना को लेकर पंजाब से बाहर-बाहर होते हुए सय्यद अहमद साहब बोलन के रास्ते से काबुल जा पहुँचे। काबुल से आकर उन्होंने

आज़ाद कबीला प्रदेश के नौशेरा नामक स्थान में अपना डेरा डाला। केवल डेरा ही नहीं डाला बल्कि एक अस्थाई सरकार भी स्थापित कर ली। यहाँ भी कबीलों पर सय्यद अहमद साहब के व्यक्तित्व का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। कबाइली उनके साथ लड़ने को तैयार थे।

सय्यद अहमद बरेलवी का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था। १० जनवरी १८२७ ई० को हुण्ड नामक स्थान पर उन्होंने एक विराट सभा बुलाई। इस सभा में कहते हैं बरेलवी साहब ने इतना मार्मिक और उत्तेजक भाषण दिया कि सब पठानों ने उनके सामने अपने को झुकाना मन्जूर कर लिया। यह एक आश्चर्य की बात थी कि किसी 'विदेशी' को उन्होंने इस प्रकार अपना शासक स्वीकार कर लिया। यह सरकार अभी तक देहली के मदर्से और वलीउल्लाई सम्प्रदाय के तीसरे नेता शाह मुहम्मद से संरक्षण पा रही थी। इन दोनों संस्थाओं से इस अस्थायी सरकार को धन और सैनिकों की सहायता मिल रही थी। अङ्गरेज़ खुश थे। ख़ुश होने का कारण भी था क्योंकि वे सदा वही तो नहीं हैं जो वे दीखते हैं या वही तो नहीं करते हैं जो कहते हैं। राजा रणजीत-सिंह एक सन्धि के अनुसार उनका मित्र था और नियमानुसार मित्र का शत्रु अपना भी शत्रु होना चाहिए। परन्तु यह नियम अङ्गरेज़ों के यहाँ नहीं लागू होता। वे यह देख देखकर प्रसन्न थे कि इतना बड़ा आन्दोलन उनकी आँख के काँटे राजा रणजीतसिंह से टकराने जा रहा है। आन्दोलनकारियों को उन्होंने खुले आम सहायता देना शुरू कर दिया। उनकी फ़ौजों के ठेकेदार खुले आम मुजाहिदीनों को रुपया पहुँचाते थे। सुनते हैं दिल्ली के एक व्यापारी के पास मुजाहिदीनों की एक बड़ी रक़म जमा थी। अब वह रक़म देने से मना कर रहा था। उस समय दिल्ली के अङ्गरेज़ रेज़ीडेण्ट ने बलपूर्वक अपने 'न्याय' का प्रदर्शन करते हुए वह रुपया मुजाहिदीनों को दिलवा दिया। इसके पूर्व भी कानपुर में एक अङ्गरेज़ स्त्री ने सय्यद अहमद से विधिवत् दीक्षा ली और कई हज़ार रुपए उसने उनके स्वागत में खर्च कर दिए थे।

आन्दोलन अभी तक उभार की ओर था। धीरे धीरे भाटा शुरू हुआ तो जोश ठंडा पड़ने लगा और अरमान टूटने लगे। सब से पहली दुःखदायी दुर्घटना यह हुई कि सय्यद अहमद बरेलवी के प्रिय सहयोगी मौलाना अब्दुल हयी की मृत्यु हो गई। मौलाना हयी सय्यद साहब के दाहिने हाथ थे। उनके टूट जाने से उन्हें बहुत बड़ा धक्का लगा। अभी इसकी चोट वह झेल भी न पाये थे कि कुछ ऐसी दिक्कतें उत्पन्न होगईं जिसके कारण देहली के सङ्गठन से उनका सम्बन्ध टूट गया। इससे तो वे पंगु ही बन गये। इसी समय वह भयङ्कर दुर्घटना घटी जिसके परिणाम स्वरूप वह सरकार भी टूट गई और उसके साथ साथ ही सय्यद अहमद बरेलवी साहब भी स्वर्गवासी हो गए।

घटना का विवरण हम पिछले पृष्ठों में एक स्थान पर दे आये हैं। यहाँ संक्षेप में ही कहते हैं। मुजाहिदीनों ने यहाँ आकर पठानों की लड़कियों से शादी व्यवहार शुरू कर दिया। कभी-कभी तो जबर्दस्ती भी की जाती। पठानों के लिए यह अपमान असह्य था। और तब यह चरम सीमा पर पहुँचा जब खेशगी के पठान खान की लड़की से बल पूर्वक विवाह के कारण तो पठान उबल पड़े। खेशगी के खान ने खटक के खान से सहायता माँगी कि वह इस अपमान का बदला लेने में उसकी सहायता करे। खटक के सर्दार ने बात मान ली और एक दिन मौक़ा पाकर कुछ पठानों ने सय्यद साहब के हज़ारों साथियों को तल-वार के घाट उतार दिया। अपमान का प्रतिशोध था।

बाद को भी सय्यद अहमद सिक्खों से लड़ते रहे। परन्तु व्यर्थ। ६ मई सन् १८३१ को उन्हें सिक्ख सर्दार हरीसिंह नलवा के हाथों अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। सरहद के बालाकोट नामक स्थान पर हरीसिंह से युद्ध हुआ था। वहीं पर सय्यद अहमद साहब की मृत्यु हो गई। सिक्खों ने सय्यद अहमद बरेलवी साहब के शव का दाह संस्कार मुस्लिम रीति से बड़े सम्मान के साथ कर दिया।

जैसा कि महान् व्यक्तियों के साथ होता है, सय्यद अहमद बरेलवी के साथ भी हुआ। उनके अनुयायियों के दो दल थ। एक तो वह था

जिसने यह समझ लिया कि सय्यद साहब की मृत्यु हो गई। यह दल सुविधानुसार घर लौट आया। एक दूसरा दल यह था जिसमें आज भी भ्रम मौजूद है कि उनके नेता अमर हैं, वे मरे नहीं हैं, वरन् अन्तर्ध्यान हो गये हैं। ये लोग आज भी यागिस्तान नामक प्रान्त में उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सय्यद अहमद जैसा कि हन्टर साहब ने, सरकारी रिपोर्ट में और आसफअली साहब की रिपोर्ट ने लिखा है बहाबी थे। परन्तु हम लोगों का निश्चित मत है, और हमारे पास उसके पुष्ट प्रमाण हैं, कि यह दोष झूठा है। सय्यद अहमद बरेलवी का और बहाबी आन्दोलन का कोई सम्बन्ध नहीं है। पाठकों को यह जान लेना जरूरी होगा कि बहाबी क्या हैं और कौन हैं। पहले हम इसका उत्तर देते हैं।

अरब के नज्द प्रान्त में बहुत दिन हुए एक फ़कीर हो गये हैं जिनका नाम अब्दुल 'बहाब' करके प्रसिद्ध है। यह फ़कीर साहब तत्कालीन रूढ़ियों के बड़े उग्र आलोचक थे। परन्तु उनकी उग्रता सीमा के पार पहुँच गई थी। अपनी इसी झक में इन्होंने मदीना शरीफ में हजरत मुहम्मद के मक़बरे पर भी थोड़ा बहुत हाथ फेर दिया था। इससे मक़बरे को कुछ हानि भी पहुँची। यह धृष्टता बहुत बड़ी थी। भारत में कुछ लोगों को छोड़कर और स्वयं उनके सम्प्रदाय के लोगों को छोड़कर शेष मुस्लिम संसार में इन बहाबियों (बहाब के अनुयायियों) के प्रति भारी घृणा भी इतनी अधिक बढ़ी कि जहाँ पर ये लोग नमाज पढ़ जाते थे, फिर उस जगह को धोना पड़ता था। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि बहाबी नाम कितना घृणित है। यह देखकर भी क्या कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि सय्यद अहमद बरेलवी भी किसी भी अंश में बहाबी थे? सर्वथा नहीं। सच,बात तो यह है कि सय्यद साहब की बढ़ती शक्ति को देखकर ही इसको जबर्दस्ती सय्यद साहब के सिर पर थोपा गया था। अगर किसी को इतने से भी सन्तोष न हो तो हम क्या कहें। हन्टर साहब ने तो यहाँ तक लिखा है कि

सय्यद अहमद बरेलवी डाकू, चोर, लुटेरे थे। अच्छा हो यदि अविश्वासी लोग इन दोषों को भी सत्य मान लें।

तात्पर्य यह कि सय्यद अहमद बरेलवी साहब सीमाप्रान्त के राष्ट्रीय जागरण में पहले पथ प्रदर्शक थे। इस विचार से उनका दर्जा बहुत ऊँचा है। यद्यपि उन्हें झूठ ही भड़का दिया गया था कि सिक्ख अत्याचार करते हैं, तो भी उनका आक्रमण करना यही सिद्ध करता है कि वली उल्लाई सम्प्रदाय का सेनापति किसी भी प्रकार के अत्याचार को घृणित समझता है। आज बरेलवी साहब नहीं हैं परन्तु उनके काम हैं।

तुरंगज़ाई का हाजी

एक सरकारी सन्देश में जो ७ मार्च सन् १९३१ को प्रकाशित की गई थी कुछ आदमियों का नाम आता है जिन्हें 'अंगारा' कह कर विभूषित किया गया है। तुरंगजाई के हाजी का नाम इनमें प्रमुख रूप से आता है। पिछले पृष्ठों में पाठक इस व्यक्ति का नाम अनेक स्थानों पर देख चुके हैं। भविष्य में जब कभी सीमा प्रान्त के कबाइली प्रदेशों का विशद इतिहास लिखा जायगा तो हाजी साहब का नाम मोटे लाल अक्षरों में लिखा जायगा। जैसी कि कहने की प्रथा है सोने के अक्षरों में नहीं। हम नहीं समझते कि लोग किस तर्क पर यह कहने का साहस करते हैं कि सिकन्दर महान्, नेपोलियन बोनापार्ट और महाराणा प्रताप का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाय। सच बात तो यह है कि इन महान वीरों ने कुछ भी तो ऐसा नहीं किया जिससे सोने के अक्षरों में उनका नाम लिखा जा सके। सोना वैभव का प्रतीक है। सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय का नाम अवश्य स्वर्ण तारों से लिखना चाहिये, परन्तु इन अमर विजयी सेनानियों का नाम तो लाल अक्षरों में लिखना ही उचित है। लाल रंग उत्साह, शूरता और वीरता का प्रतीक है। उपरोक्त तीन वीरों को हम इन्हीं की कोटि में रखना पसन्द करेंगे। तुरंगजाई के हाजी को सिकन्दर, नेपोलियन बोनापार्ट और महाराणा प्रताप की कोटि में रखना 'धृष्टता ही होगी। कारण उनकी आग की लौ

आसमान छूती है, जब कि तुरंगजई के हाजी को सिन्धु के इस पार इने गिने दस पाँच ही लोग जानते हैं। निस्सन्देह वह इनके सामने महान् विश्व-ख्याति का आदमी नहीं है परन्तु उसका काम निस्सन्देह बहुत महान् है। तुरंगजई का हाजी उस जाति में उत्पन्न हुआ था, जो निरंतर ब्रिटिश सरकार के अत्याचार सह रही थी, जो अनेक प्रकार से संसार के सामने बदनाम की जा रही थी। ऐसी दशा में उनका नेता भला कौन सी भलाई लूट सकता है। हाजी साहब को भी अपनी जाति के अपयश का भागी होना पड़ा है। भिन्न-भिन्न लेखकों सम्पादकों और यात्रियों ने इस व्यक्ति पर मनमाने ढंग से आलोचनायें और टिप्पणियाँ की हैं। कोई उसे लुटेरा, कोई धर्मान्ध हठी, कोई बहकाने वाला मुल्ला, कोई उच्छृंखल विद्रोही और कोई स्वार्थ सेवी कहते हैं। हमारे सामने इतने विशेषण हैं, और इतने 'विद्वानों' के मत हैं, उस समय हमें नहीं मालूम हम उस स्वर्गीय आत्मा के प्रति न्याय कर सकेंगे या नहीं। आज हाजी साहब इस धरती पर नहीं हैं, कदाचित उनकी अस्थियाँ भी राख हो चुकी हैं। इस समय अगर वह होता तो सम्भव है ईपी के फकीर की भाँति ही अपने विरुद्ध होने वाले इस प्रचार का कुछ उत्तर दे सकता। लेकिन अब तो दो ही साधन हैं। एक तो अनेक पुस्तकों में उसके सम्बन्ध में मिलने वाला विवरण और दूसरा उसके साथियों के बचन। हम पाठकों के सम्मुख उसके जीवन की प्रमुख घटनाएं, उसके विचार और कार्य रखते हैं, निर्णय पाठक करलें।

तुरंगजई गाँव उत्तमनजई गाँव के पास ही करीब १ मील की दूरी पर स्थित है। उत्तमनजई पाठकों को मालूम होगा खान अब्दुल गफ्फारखाँ की जन्मभूमि है। उनके पास का इलाका अपनी कठोरताके लिये प्रसिद्ध है और वहाँके निवासी अपनी वीरतामें किसीसे मात नहीं खाते। यहीं तुरंगजई गाँव में अब्दुल वहीद नाम के एक बालक का जन्म हुआ। बालक बड़ा होनहार था। और जो कहावत है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' उसी के अनुसार बचपन में ही लोग उसकी चतुराई, निर्भयता सब से बढ़कर अत्याचार को सहन न कर सकने की तत्परता देखकर मुग्ध

हुआ करते थे। शरीर से वह खूब पुष्ट था। शरीर से पुष्ट होने पर भी जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, वह बुद्धि से क्षीण न था। उसकी सूक्ष्म गहनता देख देखकर लोग आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं रहते थे। बचपन ही से उसमें धार्मिकता की ओर भी झुकाव था। इसलिये उसकी पहली शिक्षा धर्म पुस्तकों से ही प्रारम्भ हुई। धार्मिक शिक्षा समाप्त कर कुछ समय पश्चात् यह अब्दुल वहीद महाशय हज करने के लिये मक्का शरीफ चले गये। अब्दुल वहीद का जीवन बहुत पवित्र और फकीराना था। वह अपना अधिकांश समय ईश्वरोपासना में लगाया करता था।

"लरिकाई को प्रेम कहौ अलि कैसे छुटै।" महाकवि सूरदास की इस उक्ति में बहुत बड़ा सत्य छिपा है। बचपन में जो संस्कार बन जाते हैं वे क्या एक बारगी सहज ही थोड़े छूट जाते हैं? इन अब्दुलवहीद के साथ भी यही नियम लागू होता था। अपने चारों ओर के जिस वातावरण में अब्दुल वहीद पला था वह एक दम अग्निमय और विद्रोहात्मक था। वजीरी अँग्रेजों के जानी दुश्मन होते हैं। तब भला ऐसे वातावरण में पलने वाले बालक के भविष्य के विषय में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है कि वह भयंकर विद्रोही होगा। यह भविष्यवाणी सच ही सिद्ध हुई। पाठक समझ गये होंगे कि यह महाशय अब्दुलवहीद ही हमारे चरित नायक तुरंगजई के हाजी थे। कार्य क्षेत्र में जिस प्रकार मिर्जा अली खाँ ईपीके फकीर रह गए, मोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी महात्मा गाँधी या गाँधी जी ही रह गए, ठीक उसी प्रकार हाजी अब्दुल वहीद साहब भी आगे चलकर तुरंगजई के हाजी रह गए। तुरंगजई उनका जन्म स्थान था।

हम कह आए हैं कि तुरंगजई गाँव उत्तमनजई के पास था जहाँ अब्दुल गफ्फारखाँ रहते थे। स्वभावतः ही इन दो नेताओं में जान पहचान हो गई थी। कुछ लोगों का विचार है कि तुरंगजई के हाजी के साथ खान अब्दुल गफ्फारखाँ की बहिन की शादी हुई थी। परन्तु हम यह आगे बतायेंगे कि यह कथन सर्वथा असत्य है। खान अब्दुल गफ्फारखाँ का हाजी साहिब से इस प्रकार का कोई सम्बन्ध न था। हाँ यह माना जाता

है कि सीमान्त गाँधी से उनकी अच्छी जान पहचान थी। म्राइट महोदय तो यहाँ तक लिखते हैं कि खान साहब के अहिंसावादी प्रभाव में पड़कर हाजी साहब ने अपना पुराना हिंसात्मक ढंग छोड़ दिया था। वे लिखते हैं:—"खान अब्दुल गफ्फारखाँ की बहिन का विवाह तुरंगजई के हाजी के साथ हुआ था, जो बहुत दिनों तक ब्रिटिश नौकरशाही के लिए आतंक बना रहा। खान साहब ने अपने दामाद के ऊपर बड़ा उपयोगी प्रभाव डाला है (था) और उसे काँग्रेस नीति में ले आए हैं (थे)।" खान अब्दुल गफ्फारखाँ के अतिरिक्त उनका सबसे बड़ा सहायक और सहयोगी इपी का फकीर भी था। यह मजेदार तथ्य है। तुरंगजई का हाजी ईपी के फकीर का 'पीर' (गुरु) था। जिस समय मिर्जा अली खाँ अपनी बन्नू की धार्मिक शिक्षा समाप्त करके पीर की तलाश में निकले थे तो उन्हें हाजी साहब जैसा उपयुक्त आदमी न मिला और इसलिये तुरंत उन्हें अपना 'पीर' मान लिया। हाजी साहब भी अपने इस 'मुरीद' को पाकर धन्य हो गये। क्योंकि उसके व्यक्तित्वके प्रभाव ने उनके भावी कार्यक्रम में बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई। हाजी साहब के अन्य सहयोगियों में अलीजगर के फकीर का नाम, और स्वयं उनके पुत्र बादशाह गुल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हाजी साहब का सम्बन्ध इन लोगों के अतिरिक्त हिन्दुस्तान के दूसरे बड़े-बड़े नेताओं से भी था। यह पाठक जान सकेंगे।

तुरंगजई के हाजी ने कब अपनी धर्म साधना छोड़ कर युद्ध क्षेत्र में प्रवेश किया, इसका निश्चित पता नहीं चलता। इतना निश्चय है कि इपी के फकीर की भाँति उसे संघर्ष नहीं करना पड़ा था। उसका ध्येय पहले से निश्चित था, अँग्रेजों का विरोध। उनका साम्राज्य अपने देश में से उखाड़ फेंकना। सरकारी रिपोर्ट में सब से पहले उसका नाम सन् १९१४ के साल में आता है। रिपोर्ट में लिखा है:—

"२० जून को (१९१४) तुरंगजई के हाजी साहब ने, जो पेशावर जिले के एक बुजुर्ग और आदरणीय मुल्ला थे एकाएक अपने परिवार के लोगों को हटा कर सीमा पार बनर में पहुँचा दिया। उसी समय अपर

स्वात में लश्कर आ आकर जमा होने लगे, और मालकंद अस्थिर पल्टन (Malkand Movable Column) को चकद्रा के लिये रवाना कर दिया गया। बनरवालों को उभाड़ने में हाजी साहब की हलचलें शुरू हो गईं। और १७ आगस्त (१६१४) को अम्बेला दर्रे में होकर उसकी फौजों ने ब्रिटिश राज्य पर आक्रमण किया, लेकिन बाद को हमारी (सरकार की) फौजों ने बड़ी ज़बरदस्त लड़ाई के बाद उसे पीछे लौटा दिया। इस प्रकार इस रिपोर्ट के आधार पर हम अनुमान कर सकते हैं कि उसकी हलचलें सन् १६१० के आसपास आरम्भ हो गई थीं। प्रथम महायुद्ध के समय वह अँग्रेज़ों को भगाने के लिये बहुत प्रयत्नशील था इसके हमें कुछ प्रमाण मिलते हैं, जिनका उल्लेख हमें करना है। परन्तु उनकी चर्चा करने के पूर्व हमें कुछ आवश्यक तथ्य प्रकट कर देना होगा।

हाजी साहब एक लुटेरे न होकर क्रान्तिकारी थे इसके भी प्रमाण हमें मिलते हैं। सन् १६१४–१८ के आस-पास जो षड्यन्त्र अँग्रेज़ों के राज्य को हिन्दुस्तान में से खतम कर मुसलमानी हुकूमत जमाने का चल रहा था, हाजी साहब का उसमें भी हाथ था। यह षड्यंत्र सरकारी रिपोर्ट में 'रेशमी पत्रों का षड्यन्त्र' नाम से प्रसिद्ध है। हाजी साहब का देवबंद के इस्लामी मदरसे 'दारुल-उलूम' से गहरा सम्बन्ध था। सन् १६१४–१८ के गत महायुद्ध में इस मदरसे के प्रधान अध्यापक और मौलाना हुसैन अहमद मदनी के गुरु मौलाना महमूद-उल-हसन ने काबुल की ओर से हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने की जो योजना बनाई थी, उसमें भी हाजी अब्दुलवहीद का प्रमुख हाथ था। देवबन्द के उस मदरसे की भाँति ही तुरंगज़ई के हाजी साहब ने भी सरहद पर कुछ स्कूल स्थापित कर लिये थे जहाँ से क्रांतकारी नौजवान तैयार हो हो कर निकलते थे। इस योजना का विवरण 'रेशमी पत्रों का षड्यंत्र' पुस्तक में इस प्रकार लिखा है:— "मौलाना महमूद-उल हसन (वली उल्लाई सम्प्रदाय के छठवें इमाम) की तो योजना ही यह थी कि काबुल से लेकर कन्या कुमारी तक एक विस्तृत संगठन किया जाय, जो एक ही समय में विद्रोह खड़ा कर सके। इसीलिए काबुल के पश्चात सरहद के आज़ाद

कबीलों को संगठित करने की योजना बनाई गई थी । इन कबीलों के पास हथियार भी थे और वे लड़ाकू भी थे, इसके अतिरिक्त इनमें शेख महमूद-उल हसन का प्रभाव भी था । इस संगठन के लिये सन् १९११ में "हाजी तुरंगजई" ने मदर्सा देवबन्द की भाँति ही स्कूल कायम करने आरम्भ कर दिये ।' इस प्रकार हाजी साहब ने आरम्भ ही क्रान्ति के साथ किया था । यह योजना सफल होती दीख रही थी कि एक दुर्घटना घटी । उक्त पुस्तक के शब्दों में—"किन्तु अलीगढ़ कालेज के विद्यार्थी अज़ीज़ अहमद थे, जो मदर्सा देवबन्द से इन समस्त हलचलों की रिपोर्ट सरकार के पास भेज रहा था. इन मदर्सों का उद्देश्य भी सरकार जान गई और उसने सन् १९१५ में जब कि मौलाना महमूद उल हसन की गिरफ्तारी की चर्चा ज़ोरों पर थी, इन स्कूलों को तोड़ दिया । सरकार ने हाजी को गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया । किन्तु वह भाग कर पहाड़ियों में चला गया । इस प्रकार क्रान्ति के मार्ग में तुरंगजई हाजी का संगठित प्रयत्न असफल रह गया ।

पाठक देख चुके हैं कि यह घटनाएँ कालक्रम के अनुसार चल रही हैं । १९१५ में जब सरहद के स्कूल तोड़ दिये गये और हाजी साहब भाग गये तो इससे पाठक यह न समझें कि उन्होंने मैदान छोड़ दिया । वे अब भी ब्रिटिश विरोधी संगठन करने में संलग्न थे । उसी समय सन् १९१९ में अफगानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला खाँ ने भारत पर आक्रमण कर दिया । स्मरण रहे यह आक्रमण सर्वथा ब्रिटिश विरोधी था । सर माइकेल ओडायर ने 'मार्निङ्ग पोस्ट' में एक लेख लिखा था जिसके अनुसार उन्होंने यह सिद्ध किया था कि इस आक्रमण के कराने में काबुल स्थित भारतीयों का बहुत हाथ था । जो भी हो तुरंगजई के हाजी साहब के लिये तो यह स्वर्ण अवसर था । उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अफगानिस्तान को भारी सहायता पहुँचाई । यहाँ तक कहा जाता है कि हाजी साहब का संगठन इतना दृढ़ था कि उन्होंने आज़ाद

इलाके के चमरकन्द नामक स्थान में अपनी एक स्वतन्त्र राजधानी ही बना ली थी। उनकी ओर से बाक़ायदा एक राजदूत भी काबुल में रहता था। इसकी संगठन की दृढ़ता का अनुमान पाठक नीचे लिखे विवरण से कर सकते हैं। 'सन् १९२०—२१ में एक भारतीय क्रान्तिकारी से मौलाना बशीर नामक एक व्यक्ति से भेंट हुई थी जो लाहौर के मच्छेअइयाँ मुहल्ले के रहने वाले थे, और चमरकन्द के राजदूत की हैसियत से काबुल सरकार के पास केवल अस्त्र शस्त्र लेने आये थे। उन्होंने उक्त क्रान्तिकारी से कहा था—"हमारे पास केवल एक मशीनगन है, हम चाहते हैं कि काबुल सरकार द्वारा हमें कुछ तोपों आदि की सहायता मिल जाय।" यह प्रत्यक्ष है कि बहुत से कारणों वश उनको यह सहायता नहीं मिल सकी।' लेकिन इससे भी हाजी हिम्मत हारने वाला व्यक्ति न था। वह निरन्तर लड़ता ही रहा।

इस समय तक तुरंगजई के हाजी का प्रभाव बहुत व्यापक हो चला था। विशेषकर मोहमन्दों के बीच तो लगभग सभी हलचलों का श्रेय या उत्तरदायित्व उसी पर है। इस समय तक उसके सहयोगी और समर्थक भी बहुत बन गये थे। अफ़गान के तरफ वाले मुल्ला लोग भी उसकी पूरी-पूरी सहायता कर रहे थे। उसके समर्थकों और सहयोगियों में एक सैयद अकबर का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। तीरा में तो लोग उसे देव ही समझते थे। उसकी निगाह दूर-दूर तक जा पहुँचती थी। जिस समय खैबर रेलवे बन रही थी, उस समय उसने सोचा ब्रिटिश सरकार से बदला लेने का यही बहुत अच्छा मौक़ा है। उसने कोशिशें कीं कि रेलवे लाइन को तोड़ फोड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर दें। परन्तु वह सफल नहीं हो सका।

बार बार की असफलताओं से हाजी साहब को कुछ निराशा सी होने लगी थी। वे यह देख रहे थे कि इस प्रकार छुपपुट आक्रमण करके हम सरकार का कुछ भी नहीं बिगाड़ पा रहे। इसके विपरीत यह होता है कि हमारी प्रत्येक असफलता के दन्ड स्वरूप सरकार हमारी स्वतंत्रता को और हड़प लेती है। इसी समय सन् १९२७ में मोहमंद

फिर उठ खड़े हुए। इस विद्रोह का नेतृत्व अबकी बार अलीनगर का फकीर कर रहा था। कुछ समय से मोहमंदों में उसकी ख्याति बढ़ती जा रही थी। वह सोचने लगा था कि 'लाओ जिहाद का फरमान देदूँ'। लेकिन हाजी सहाब ऐसे आक्रमणों को अब व्यर्थ समझते थे और इसीलिये उन्होंने इसमें अपना सहयोग नहीं दिया। फकीर का प्रयत्न व्यर्थ गया। सन् १९३४ के सितम्बर माह में एक बार फिर अलीनगर के फ़क़ीर ने कुछ आन्दोलन आरम्भ किया। दुर्भाग्य से इस बार उसके और हाजी साहब के बीच झगड़ा भी हो गया। इस लिये हाजी साहब ने अबकी बिल्कुल ही अपना हाथ खींच लिया। परिणाम यही हुआ कि ब्रिटिश सरकार की शान्ति पूर्वक प्रवेश नीति ही चल गई और सड़क और भी आगे जा पहुँची।

इस परिवर्तन का और चाहे जो कारण हो एक प्रमुख कारण यह भी था कि हाजी साहब अब खान अब्दुल गफ्फार खाँ के प्रभाव में आ गये थे, और उन्होने इस प्रकार के छूट पुट आक्रमणों में कोई तथ्य नहीं पाया था। यद्यपि उन्होंने स्वयं अहिंसात्मक सत्याग्रह में भाग नहीं लिया परन्तु फिर भी वे इससे सहानभूति रखने लगे थे। यहाँ आकर उन्होंने एक नई ही दिशा पकड़ी। उन्होंने 'ज्वाला' (The Flame) नाम से पश्तो में एक समाचार पत्र निकालना आरम्भ किया। सीमा प्रान्त के इतिहास में यह सर्वथा अभूतपूर्व घटना थी। वह पहला अखबार था जो राष्ट्रीय विचारों को लेकर चला। अपने सम्पादक की तरह ही यह भी देश भक्ति के भावों से भरपूर था। देश भक्ति इसमें थी ब्रिटिश विरोध के पीछे। इस समाचार पत्र ने पठान जागरण में बहुत महत्व पूर्ण काम किया है।

यह है तुरंगजई के हाजी का जीवन परिचय। अपने जीवन के आरम्भ से मृत्यु पर्य्यन्त वह स्वाधीनता के लिये अथक युद्ध करता रहा। उसका प्रथम और अंतिम भी ध्येय यही था कि विदेशी, उसके देश में न आने पायें। उसका दृष्टिकोण संकुचित नहीं था। ईपी का फकीर हिन्दुस्तान की स्वाधीनता को सहानुभूति की दृष्टि से देखता ही है

उसने किया कुछ भी विशेष नहीं है। इसके खिलाफ तुरंगजई के हाजी ने भारतीय स्वाधीनता के युद्ध में सक्रिय भाग लिया। यहाँ तक कि इसमें अपनी जान भी उसे खोनी पड़ी। विद्वान होते हुये भी वह वीर था। साम्प्रदायिकता उसमें नहीं थी हमारा यही निश्चित मत है। उसके जीवन में से कोई एक भी घटना ऐसी नहीं निकाल सकता जब उसने साम्प्रदायिकता का विष उगला हो। सिपाही के साथ ही वह बहुत बड़ा नेता और विद्वान् भी था। तभी इपी के फकीर जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति ने उसका शिष्यत्व ग्रहण किया था, और उसे ग्रहण करके वह धन्य हो गया। वह सच्चरित्र व शुद्ध भावों वाला था, यह तो इसी से विदित हो जाता है कि वह पीर हो सका। मुसलमानों में पीर का दर्जा बहुत ऊँचा है। हिन्दी के ऋषि शब्द में जो व्यंजना वही व्यंजना उर्दू के पीर में है। आज हाजी हमारे बीच में नहीं है। हम उसे भूल गये हैं। न जाने कितने महान् क्रांतिकारियों को हम भूल जाते हैं, भूले हुये हैं ? क्या कोई विद्वान तुरंगजई के हाजी का विशद जीवन चरित लिखने का सत्कार्य करेगा ?

ईपी का फकीर

गत १५-१६ वर्षों से भारत के उत्तर पश्चिम-सीमान्त प्रदेश में शान्ति स्थापन समस्या और ईपी का फकीर' दोनों ही बहुत बड़े हो गये हैं। अभी कुछ महीने हुये एक दिन हिन्दी, अँग्रेजी आदि हिन्दुस्तानी भाषाओं के पत्रों ने मोटे मोटे अक्षरों में 'ईपी का फकीर छापा था और उसके सम्बन्ध में आश्चर्य वर्द्धक नोट लिखे थे। इन नोटों में सभी कुछ था। झूठ, सच, आधा झूठ आधा सच और सफेद झूठ तथा कल्पना भी। जो हो इससे पाठकों की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। प्रकृति का यह नियम है कि अभ्यास से नई चीज पाई जा सकती है पुरानी भुलाई जा सकती है। हम अभ्यास कर रहे थे कि फकीर ईपी को भूल जायें, क्योंकि उसके बाद बहुत दिनों उसका नाम दिखाई नहीं दिया। लेकिन कहाँ ? आज फिर लिखा देखा— 'ईपी का फकीर स्वतंत्र पठानिस्तान का समर्थन करता है।' सच बात

तो यह है कि कबीलों में ईपी का फक़ीर बड़ दादा है। कोई भी घटना कोई भी सनसनी ऐसी नहीं उठती जिसमें किसी न किसी प्रकार इन दादा साहब का नाम न लिया जाता हो। और यह नहीं कि दादाजी अमान्य हो। सरकार भी उनकी महत्ता को मानती है। तभी यह कहा जाता है कि एक भी सुधार या सँभाल की ब्रिटिश योजना ऐसी नहीं होती जो इनको पूछे बिना ही कबाइलियों में चला दी जाय। चला दो मानेगा कौन ? जब तक उस पर मुहर न लगी हो—"एहक़सत अब्दुअल-मुल बक़िल मिर्ज़ा अली खाँ।" पिछली बार १९४६ के झगड़े में बम्बबाजी रोकने के लिये जब पं० जवाहरलाल नेहरू सीमा प्रान्त में पहुँचे थे तो कहते हैं उनका स्वागत अच्छा नहीं हुआ। यहाँ तक कि कुछ स्थानों पर तो उनकी जान तक पर बन आई। जमरूद जाते हुये उनके हवाई जहाज़ पर एक गोला फेंका गया था। वह फ़क़ीर के लेफ्टीनेंट मुल्ला शेरअली का ही था। स्वभावतः इस दुर्घटना ने जनता का ध्यान फ़क़ीर की ओर आकर्षित कर लिया। उत्सुक होकर लोग पूछने लगे कि इस यात्रा के विषय में फ़क़ीर का क्या मत है। लोग अपनी अपनी कहते हैं। सरकार ने और लीग वालों ने सुना कर ढोल पीटे कि फ़क़ीर लीग और पाकिस्तान का दोस्त है, और इस लिये नेहरू जी की इस यात्रा का विरोधी है। दूसरी ओर थे राष्ट्रीय दल वाले। वे किससे कम हैं? उन्होंने और भी जोर से चिल्लाकर कहा—'नहीं ईपी का फ़क़ीर हमारा साथी है। और लीग को अँग्रेजों की कठपुतली समझता है तथा जिन्ना साहब से ख़िलाफ़ है।' "अभी 'लीगी' और ख़ुदाई ख़िदमतगारों के प्रतिनिधि-मण्डल आज़ाद कबीलों में अपना प्रचार करने गये थे, तब वापसी में दोनों ने ही यह घोषणा की कि ईपी के फ़क़ीर ने हमारा स्वागत और हमारे विरोधियों का बहिष्कार किया। ठीक है फ़क़ीर साहब ने जो किया सो फ़क़ीर साहब जानें या वे प्रतिनिधि-मण्डल, परन्तु इतना निश्चय है कि उन्होंने किया उचित ही होगा। पिछले पृष्ठों में भी पाठक कई स्थानों पर ईपी के फ़क़ीर का काम सुन आये हैं। कई एक स्थानों में

उसकी कुछ कार्रवाइयों से उसकी कुछ महत्ता भी विदित हो गई है, ऐसी दशा में हमारे लिए आवश्यक है कि अपने पाठकों को इस रहस्य-मय व्यक्ति के विषय में कुछ बता दें। 'रहस्यमय' विशेषण का प्रयोग हमने जान बूझकर किया है। इसका अर्थ पाठक आगे चलकर जान सकेंगे। एक बात पूर्व सूचना के ढंग की अवश्य कह दें। सम्पूर्ण सीमाप्रान्त वासियों की भाँति ईपी के इस फ़क़ीर ने भी सरकारी प्रचार के हाथों बड़ी बदनामी सही है। उसे अनेक प्रकार से कलंकित किया गया है। साम्प्रदायिक कह कर राष्ट्रीय विचार वालों को उसके विरुद्ध भड़काया गया है, और सरकारी एजेण्ट कहलवा कर कबीलों को। निर्णय पाठक करें।

रहस्यपूर्ण ईपी के फ़क़ीर के समान अङ्गरेजों का कट्टर दुश्मन संसार में दिया लेकर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। लोगों का स्वभाव होता है दूसरों पर गुण थोपना। फ़क़ीर साहब पर भी अति रंजित 'मानव प्रेमी' होने का गुण ये लोग लादते हैं। सच तो यह है कि वह किसी भी जाति का जो स्वतन्त्रता में बाधक होती है जानी दुश्मन बन जाता है। कबीलों में उसकी आवाज़ की जो पूजा होती है, उसे लोग आँखों पर जो उठाये फिरते हैं उसका एक कारण यह भी है। यों वह स्वयं बड़ा धार्मिक पुरुष है। यही एक कारण है कि उसे 'मुजाहिदे आज़म' के विशेषण से विभूषित किया गया है। पिछले पृष्ठों में हम देख आये हैं कि वज़ीरिस्तान अङ्गरेजों के शत्रुओं का गढ़ रहा है और जब से वहाँ इन फ़क़ीर साहब ने नारा बुलन्द किया है तब से तो एक दम जलता हुआ अङ्गारा ही समझिये। रहस्यमय फ़क़ीर साहब को जान बूझकर बनना पड़ा है। कोई भी क्षण ऐसा नहीं जाता जब अङ्गरेजों के गुप्तचर उनकी तलाश में न रहते हों। सच बात तो यह है कि फ़क़ीर साहब तक सर्व साधारण की पहुँच ही असम्भव है, फिर भी एक मज़ेदार बात हो गई। अख़बार वालों को जो 'उड़ाने वाले' विशेषण मिला है सो झूठ नहीं। सुना है एक अमरीकन पत्र ने ईपी के फ़क़ीर का एक चित्र प्रकाशित किया था और विवरण भी

लिखा था। लेकिन सच बात यह है कि यह चित्र एकदम कल्पित था। कारण फ़क़ीर का चित्र लेना भारी गुनाह है। शरीयत की आज्ञा के विरुद्ध होने के कारण वह अपनी राजी से, और अपनी रहते हुये किसी को चित्र नहीं लेने देगा। तब यह चित्र आ कहाँ से गया। शायद उक्त पत्र के सम्पादक के मस्तिष्क से या किसी पूँजीपति के लोभ में से। रहस्यमय होने का प्रमुख कारण है आत्मरक्षा। आत्मरक्षा के लिए वह ब्रिटिश पहुँच से दूर रहता है और इस बात से डरता रहता है कि कहीं उस वर्ग का कोई आदमी उसके घर के आसपास चक्कर न लगाने लगे, जिन्हें अपने मालिकों के कान में कुछ कानाफूसी करने का अधिकार मिला होता है। पाठक समझ गये होंगे हमारा मतलब मुखबिरों और गुप्तचरों से है। रुपये के लोभ से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

फ़क़ीर का जन्म वजीरिस्तान स्थित टोची एजेन्सी के ईपी नामक नामक गाँव में पिछली उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हुआ था। ईपी गाँव बन्नू से काफी ऊपर है और उत्तमनजइयों का निवास स्थान है। पिछले विवरण में पाठक देख आये हैं कि उत्तमनजई लोग अङ्गरेजों के पुराने बैरी हैं। यह कहने से पाठक समझ गये होंगे कि ईपी के फ़क़ीर की जातीय परम्परा कैसी थी। उसके चारों ओर का वातावरण स्थापित सरकार के प्रति एकदम विद्रोहात्मक हो रहा था। उत्तमनजई और अहमदजई वजीरियों की दो प्रमुख शाखायें हैं यह पाठक उपजातियों के पिछले विवरण से पढ़ चुके होंगे। यहाँ इतना कहना शेष रह जाता है कि जिस जाति में मिर्जा अली खाँ (ईपी के फ़क़ीर का मूल नाम) ने जन्म लिया है वह अपने साथ वाली यानी अहमदजई से कहीं बढ़कर उग्र है। इस प्रकार अङ्गरेजों की दुश्मनी मिर्जा अलीखाँ को माँ के दूध के साथ ही मिली थी। इस सम्बन्ध की एक मजेदार किम्वदन्ती लिख देना ठीक होगा। फ़क़ीर के सम्बन्ध में अनेक कल्पनाएँ प्रसिद्ध हैं जिन्हें हम अन्यत्र देंगे। यहाँ एक उसके जन्म से सम्बन्ध रखने वाली लिखते हैं। कहा जाता है कि जिस दिन फ़क़ीर ने जन्म लिया था उसी दिन टोची पर अँग्रेजों का अधिकार हुआ था। इसी दुर्घटना की प्रति-

दिया उस बालक के मस्तिष्क पर यह असर हुआ कि उन्होंने चालीस दिन बाद ही अपनी माँ का दूध पीना छोड़ दिया। यह है तो निरी गप ही। परन्तु इससे उस सरदार की मनोवृत्ति का पता पाठकों को जरूर चल जाता है। मिर्जाअलीखाँ की प्रारम्भिक शिक्षा तो एक कट्टर धार्मिक की अध्यक्षता में हुई थी। आज भी कुछ लोग बड़े आश्चर्य और श्रद्धा के साथ मिर्जाअली नामक लड़के को याद करते हैं जिसे उन्होंने कन्धे पर कुरान का बस्ता लटकाये लिये जाते देखा था। सचमुच है तो आश्चर्य की बात। वह दुबला पतला सीधा सा लड़का कैसे यों ज्वालामुखी बन गया।

आगे लिखने के पूर्व आवश्यक है कि पाठक अपनी एक कल्पना सुधार लें। आप सोचते होंगे कि अन्य पठानों की तरह से ईपी का फ़कीर बहुत मजबूत फौजी आदमी होगा। वह बन्दूक चलाने में बड़ा पक्का निशाने बाज होगा आदि आदि। लेकिन सच बात कुछ और ही है। फकीर बहुत धार्मिक आदमी है यह पाठकों को जानना होगा। शरीर से भी वह सिपाही नहीं है, हाँ दिल का शेर जरूर है।

कहावत है जैसे गुरु वैसे चेला। और गुरु गुड़ ही रहे चेला शक्कर हो गये। इन दोनों कहावतों को हम ईपी के फकीर और उनके गुरुदेव हाजी अब्दुल वहीद में अच्छी तरह देख सकते हैं। ये अब्दुलवहीद और कोई नहीं हमारे पुराने परिचित तुरंगजई के हाजी साहब ही हैं। बात यह हुई कि जब मिर्जा अली खाँ ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करली तो एक ऐसे आदमी की खोज में निकल पड़े जो उन्हें 'इल्म तसव्वुफ़' (आत्म ज्ञान) की शिक्षा दे सके। मिर्जा अली बचपन ही से धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। और फिर मुसलमानों में भी यह प्रथा है कि चरित्र शुद्धि के लिये वे खोजकर ईश्वर भक्त व्यक्ति से शिक्षा लेते हैं। ऐसे व्यक्ति को पीर कहा जाता है और दीक्षा लेने वाले शिष्य महोदय को 'मुरीद'। तो यहाँ पीर तो बने सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी हाजी अब्दुलवहीद यानी तुरंगजई के हाजी और मुरीद हुये मिर्जाअली खाँ या ईपी के फ़कीर। आज गुरु और चेला दोनों ही के मूल नाम मूल में गुम

गये हैं और रह गये हैं तुरंगजई के हाजी के विषय में विस्तृत विवरण जो पाठक उनके चरित में पा चुके हैं। यहाँ संक्षेप में इतना संकेत कर देना ठीक होगा कि उनका देवबन्द के इस्लामी मदरसे 'दारुल उलूम से' से जो क्रान्तिकारियों का अड्डा और कारखाना था, गहरा सम्बन्ध था। 'रेशमी पत्रों का षड्यंत्र' (Silken Letters Conspiracy) नाम से जो आन्दोलन उठा था उसमें इन पीर साहब का हाथ था। मिर्जाअलीखाँ भावी ईपी के फ़कीर ने इन्हीं क्रान्तिकारी गुरुदेव के चरणों में बैठकर 'तकियते नफ्स' (आन्तरिक बाह्य शुद्धता) की साधना की थी। कहा जाता है उन्हें अपनी इस साधना में काफी कामयाबी हासिल हुई थी। बाद को वह हज करने के लिये मक्का चले गये और अपने गुरु की तरह हाजी कहलाने लगे। लेकिन यह हाजी विशेषण आगे जाकर गिर गया।

जब मिर्जा अलीखाँ हज से लौट कर आये तो यूरोप में प्रथम महा युद्ध भरभरा रहा था। उसी समय देवबन्द का षड्यन्त्र जोर शोर से चल पड़ा। अब्दुलवहीद इसमें सक्रिय भाग ले रहे थे। लेकिन जब अलीगढ़ कॉलेज के उस बदनाम लड़के अनीस अहमद की मक्कारी और मुखबरी के कारण यह षड्यन्त्र खुल गया तो हाजी साहब ने खुलकर अंग्रेजों का विरोध करना शुरू कर दिया। मिर्जा अली खाँ भी यद्यपि धार्मिक साधना में रहते थे, इस विद्रोह में अपने गुरू के साथी हो गये।

हाजी साहब के लिये अपने इस मुरीद का सहयोग बहुत मूल्यवान् सिद्ध हुआ। मिर्जाअली की तपश्चर्या और फ़कीरी ने दूर दूर तक उनकी प्रसिद्धि फैला दी थी। आस-पास के लोग बहुत प्रभावित थे। उसकी आवाज़ की इज्जत हो रही थी। मिर्जाअली खाँ के इस प्रभाव से हाजी साहब ने अपने संगठन को मजबूत और बड़ा बनाया। हम कह चुके हैं कि मुरीद साहब का रुझान फ़कीरी की ओर था। उनकी साधना बढ़ती गई। वह दिन रात गुफाओं में पड़े-पड़े ईश्वर चिन्तन और आराधना करने लगे। लम्बे-लम्बे उपवास करके, इस कठोर तपस्या के परिणाम स्वरूप उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया। उनकी इस तपस्या

की खबर जब दूर-दूर के गाँवों में पहुँची तो लोग उनके दर्शनों के लिये आने लगे, और इस प्रकार प्रान्त भर में 'ईपी के फ़कीर' की धूम मच गई।

उधर पीर साहब जब अँग्रेजों से विरोध कर हार गये तो उन्होंने और उनके साथियों ने अफ़ग़ानिस्तान के अमीर हबीबुल्ला पर जोर डालना शुरू किया कि वह अँग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे। लेकिन हबीबुल्लाखाँ ने युद्ध की घोषणा नहीं की। परिणाम में फरवरी सन् १९.१९ में अमीर हबीबुल्ला को मार डाला गया और अमानुल्लाखाँ उनके पुत्र जो अँग्रेजों के विरोधी थे गद्दी नशीन हुये। बादशाह अमानुल्लाखाँ ने अफ़ग़ानिस्तान के राज्य शासन की बागडोर सम्हालते ही अँग्रेजों के खिलाफ़ लड़ाई छेड़ दी। यही नहीं ६ मई १९१९ को अफ़ग़ानिस्तान की सेना हिन्दुस्तान की हद में घुस आई। ईपी का फ़क़ीर इस समय भी अपनी साधना में निमग्न था। वह युद्धक्षेत्र में अभी नहीं उतरा था लेकिन उसकी हार्दिक सहानुभूति तुरंगजई के हाजी उसके गुरु के साथ थी। इस समय उसका सहानुभूति का प्रभाव भी काम कर रहा था।

दूर एकान्त की गुफा में बैठा हुआ फ़क़ीर अपनी साधना में निमग्न था। लेकिन उसकी दृष्टि दूर तक के दृश्य देख रही थी। प्रायः वह हिन्दुस्तान के आन्दोलन की खबरें सुना लेता था और शायद एक विचित्र मुस्कराहट से मुँह मोड़ लेता था। धीरे धीरे दमन के समाचार और भी जल्दी आने लगे। फ़क़ीर ने सुन लिया कि उसके देश में भी अँग्रेजों का दमनचक्र चल रहा है। भरी हुई बारूद में दियासलाई दिखाने के लिये अँग्रेज, अपने देश, और दमन तीन शब्द ही काफी थे। अभी जो मानसिक संघर्ष चल रहा था, वह समाप्त हो गया। संघर्ष था दो तरफ। उसे फ़क़ीरी बाना ही रखना है या राजनीति में कूदना है। अपने भाइयों का दुःख बहुत बड़ा था। सहनशक्ति के परे। वह विद्रोही हो गया।

जिस समय हिन्दुस्तान में सन् १९३० की हलचलें चल रही थीं, तब फ़क़ीर एक दम सतर्क हो गया। अपने गुरु से राष्ट्रप्रेम की शिक्षा उसे मिल चुकी थी। अपने गुरु की तरह ही वह भी भारत की स्वाधीनता के लिये होने वाले आन्दोलनों को बड़े ध्यान से देख रहा था। हाँ वह भी सक्रिय भाग नहीं ले रहा था। अभी तक वह अहिंसा के इस विचित्र युद्ध को कौतूहल से देख रहा था। यह भी क्या खूब लड़ाई है जिसमें चुपचाप मुँह दाबे, पिटे जाओ, बोलो मत। जिसमें मार ही मार है पीट का नाम भी नहीं है। इस समय बड़ी सहानुभूति के साथ खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ को भी देख रहा था। खान साहब से उसका परिचय हो गया था क्योंकि वह उसके गुरु तुरंगजई के हाजी के गाँव के पास ही रहते थे।

एक दिन अकस्मात फ़क़ीर का एक साथी दौड़ा दौड़ा आया और हाँफते हुये सूचना दी—"गोली चल गई।" गोली चल जाना सीमा प्रान्त में कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन इस प्रकार कहने का क्या तात्पर्य हो सकता था, यह फ़क़ीर की समझ में साफ साफ नहीं आ रहा था। पूछने पर मालूम हुआ २३ अप्रैल १९३० को पेशावर में भयंकर हत्याकांड हो गया। हजारों खाली हाथ पठान नृशंसता पूर्वक गोलियों से भून डाले गये। उनकी खोज खबर लेने वाला कोई नहीं था। अब असह्य था। फ़क़ीर का खून उबल पड़ा। ईपी का फ़क़ीर न तो ईपी का गांधी है और न महात्मा बुद्ध, वह सीधा सादा पठान है जिसका जब खून उबलता है तो उस पर ठंडा पानी नहीं छोड़ता, उसे उबलने देता है। गुफा को छोड़कर, एकान्त साधना को भूल कर वह खुले मैदान में निकल आया। अङ्गरेजों के विरुद्ध 'जिहाद' (धर्म-युद्ध) की घोषणा कर दी। इस समय तक फ़क़ीर काफी प्रसिद्ध हो चुका था। अनेक उपजातियाँ उसकी भक्ति में आ गई थीं। लोग उसकी आवाज़ की क़ीमत समझ रहे थे। जिहाद के एलान का प्रभाव बहुत दूर-दूर तक हुआ। वज़ीरिस्तान के इतिहास में यह पहली घटना थी, जब मोहमन्द, वज़ीरी और अफरीदियों ने

अपने आपसी मतभेदों और द्वेष भावों को त्यागकर अङ्गरेजों के खिलाफ संगठित लड़ाई छेड़ दी। महसूद लोग, स्मरण रहे, वज़ीरियों के पुराने वैरी थे, उनका द्वेष पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा था। लेकिन इस लड़ाई में जो अपने भाई पठानों के साथ सहानुभूति की लड़ाई थी, वे भी ईपी के फ़क़ीर के साथ आकर इकट्ठे हो गये। बहुत दिनों तक भीषण युद्ध चलता रहा। सरकार ने बार-बार प्रयत्न किये कि समझौता हो जाय परन्तु विद्रोहियों ने हर बार खान अब्दुलगफ्फार खाँ और महात्मा गान्धीजी को छोड़ देने की शर्तें लगा दीं। एक शर्त यह थी कि सीमाप्रान्त का विशेष आर्डिनेन्स रद्द कर दिया जाय। ये माँगें सरकार को मान्य न थीं। युद्ध चलता ही रहा। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने विद्रोहियों को उस हथियार से दबा दिया जिसका बायकाट करने के लिए 'लीग ऑव नेशन्स' ने एक प्रस्ताव उठाया था। यानी हवाई जहाज़ से गोलाबारी।

इस विद्रोह में फ़क़ीर पहली बार प्रत्यक्ष रूप से सम्मुख आया। लोगों ने आश्चर्य से देखा। एक मझोले क़द का कुछ दुबला सा आदमी पीले गुलाब सा रंग, पतली सी दाढ़ी, एक दम गुमसुम। सिपाही या योद्धा तो वह कहीं से भी नहीं दीखता। अन्य वज़ीरी पठानों के समान न तो उसके पास छुरी है और न राइफ़िल। इस सबके खिलाफ धार्मिक पवित्रता की एक श्वेत शान्त आभा उसके चारों ओर फैली हुई है। देखने ही से पता चल जाता है कि यह आदमी अपना अधिकांश समय ईश्वरोपासना में बिताता है। अनुमान से उसकी उम्र ४० और ६० के बीच में है। इस भव्य मूर्ति को और उसके विस्तृत प्रभाव को देखकर सरकारी और ग़ैर सरकारी दोनों क्षेत्रों में सनसनी सी बिजली दौड़ गई। अँग्रेज़ों अफ़सरों की दम लबों तक आ गई। उनके प्राण सूखने लगे। उन्हें निश्चित सा हो गया कि अगर यह आदमी बिगड़ेगा तो जीवन दुश्वार हो जायगा। किसी तरह सन्' ३० का आन्दोलन दबा दिया गया। परन्तु फिर भी छुट-पुट आक्रमण तो होते रहे। यहाँ एक बात इन आक्रमणों के सम्बन्ध

में कह देनी ज़रूरी होगी । यह आक्रमण निश्चित रूप से उन वारदातों से सर्वथा भिन्न थे जो वजीरिस्तान में हुआ करती थीं। भिन्नता उद्देश्य में थी । इन आक्रमणों का उद्देश्य था राजनैतिक। दूरस्वाधीनता के लिये लड़ने वाले अपने भाइयों से सहानुभूति प्रदर्शन। दूसरे आक्रमण जो आये दिन होते रहते थे वे कई प्रकार के थे, यथा साम्प्रदायिक, लूट खसोट के और बदला लेने के । संक्षेप में ईपी के फ़क़ीर की लड़ाई का उद्देश्य था राजनैतिक स्वाधीनता और अन्य वारदातों का ध्येय था कि किसी खास कबीले का भत्ता बढ़ाने या ब्रिटिश सरकार की 'आगे बढ़ो नीति' (Forward policy) को रोकने का ।

अब ईपी के फ़क़ीर का प्रभाव दिन रात चौगुना होता जा रहा था । यह ब्रिटिश सरकार की आँखों में काँटे सा चुभ रहा था । वे चिन्ता में थे कि इस साधु सेनानी को किस प्रकार उखाड़ फेंका जाय । अगर उस पर हमला किया जाय (किया भी गया था) तो निश्चित था उसके मरने से पहले हजारों पठानों के सिर कट जायेंगे और तब भी इस बात की क्या गारंटी थी कि वह हाथ में आही आयगा । सभी उपाय बेकार जा रहे थे । सहसा एक विचार सूझा । आँखें चमक उठीं । अफसरों ने मूछों में ताव देते हुये कहा—"बच्चू अब कहाँ जाओगे ? रुपये में वह ताकत है कि .... । तुम तो हो किस खेत की मूली । आदि आदि । इस दूर की सूझ का प्रभाव सैकड़ों मलिकों पर पहले ही अजमाया जा चुका था । सिद्ध बशीकरण मंत्र था । मलिकों की तरह ईपी के फ़क़ीर को भी खरीदने का निश्चय किया गया । आपको भी शायद मालुम हो हमारी सरकार बहादुर सोने का एक बहुत बड़ा ढेर इस इलाके के मुखियाओं के चरणों में चढ़ाती है । इधर फ़क़ीर को सोने के टुकड़े और चाँदी के ठीकरे दिखाये गये । पर धोखा हुआ । सरकार को नहीं मालुम था कि वह बूढ़ा सा फ़क़ीर इतने बड़े धन को यों ही ठोकर मार देगा ।

जब इस चाल ने काम नहीं किया तो फकीर को गिरफ्तार करने

के लिये खुले आम फौजें भेजी गई। कई एक बार मुठभेड़ हुई परन्तु फ़कीर हाथ नहीं आया। हाँ एक बात जरूर हुई कि आत्म रक्षा के लिये फ़कीर को अपना स्थान छोड़ देना पड़ा। अब वह एक जगह से दूसरी जगह तक मारा-मारा फिरने लगा। मगर उसके साथी अब भी उसके साथ थे। अँग्रेज़ी फौजें उसका पीछा करती रहीं।

कुछ लेखक महोदय ईपी के फ़कीर को राष्ट्रीय की कोटि से गिराकर एक लुटेरे की कोटि में रखने का प्रयत्न करते हैं। हमारे जे० एस० व्राइट महोदय भी उन्हीं में से एक हैं। जिस समय राम कौर उर्फ़ इस्लाम बीबी का झगड़ा चल रहा था, उस मजिस्ट्रेट पर दबाव डालने के लिये मुसलमानों ने कुछ प्रदर्शन किये थे। जब ये प्रदर्शन असफल रहे तो इन मुसलमानों ने बाहरी सहायता की पुकार की। व्राइट महोदय लिखते हैं कि उस समय ईपी के फ़कीर ने एक सेना लेकर ब्रिटिश फौजों पर आक्रमण कर दिया। इससे जहाँ यह कहने का प्रयत्न किया जा रहा है कि फ़कीर लुटेरा था वहाँ यह भी समझाने की कोशिश हो रही है कि वह कट्टर साम्प्रदायिक था। इसी समय शहीदगंज की मस्जिद का झगड़ा हो गया था। इन सब घटनाओं को लेकर सरकार ने चाहा कि झगड़ा शान्त हो जाय। व्राइट महोदय अपनी पुस्तक में फ़कीर पर साम्प्र-दायिकता का दोष पक्का करने के लिये तीन शर्तें देते हैं जो कहा जाता है कि ईपी के फ़कीर ने सरकार के सामने समझौते की शर्तों के रूप में रखी थी। ये शर्तें थीं। फ़कीर कहता था कि मैं समझौता करने को तैयार हूँ अगर सरकार:—

(१) प्रतिज्ञा करे कि वह क़ानूनी कार्रवाहियों से हमारे धार्मिक झगड़ों में हस्तक्षेप न करेगी।

(२) भगाई हुई हिन्दू लड़की को, जो इस्लाम धर्म में परिवर्तित कर ली गई थी, उचित रीति से कर्त्तव्य समझ कर हमें लौटा देगी।

(३) शहीदगंज की मस्जिद फिर बनवा दी जायगी और सम्मान पूर्वक हमें लौटा दी जायगी।

इन तीन शर्तों को पढ़कर कोई भी आदमी फ़कीर को साम्प्रदायिक

मनोवृत्ति वाला कहे बिना न मानेगा। निस्सन्देह इसमें कुछ शंका भी नहीं हो सकती। परन्तु शंका इस बात की है कि क्या ये शर्तें सचमुच ही फक़ीर की हैं। व्राइट महोदय की पुस्तक में इन शर्तों पर उल्टे पुलटे अर्ध-विराम (Inverted Commas) नहीं हैं। इससे विदित होता है कि वे शर्तें किसी दूसरे की पुस्तक से उद्धृत नहीं की गई बल्कि ख़ुद व्राइट महोदय की भाषा में है। इस समय यह सम्भव नहीं कि इन्हें एक दम झूठा कह दिया जा सके। हम केवल आपके सम्मुख श्री आसफ़अलीजी का वक्तव्य रख कर निर्णय आप पर ही छोड़ते हैं। आसफ़अलीजी लिखते हैं—"यह सभी लोग विश्वास करते हैं कि हाजी साहब ने अपने लेफ्टीनेंटों को आदेश दे रखा है कि वे ब्रिटिश शक्तियों को तो ख़ुशी के साथ वे जहाँ कहीं मिलें तंग कर सकते हैं, फिर चाहे वे नियमित फौज (Regular Army) के हों, सीमान्त पुलिस (Frontier Constabulary or Police) के हों, मिलिशिया के हों और ख़स्सादार ही क्यों न हों। लेकिन स्थाई ज़िलों की प्रजा को वे चाहे किसी भी धर्म के क्यों न हों, वे कोई दिक्कत न पहुँचायें।"*

हमने पाठकों के सम्मुख दो भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत रख दिये हैं। हाँ एक बात और जोड़ दें। ठीक इसी प्रकार का प्रचार कि फक़ीर उड़ाई हुई लड़की को लौटाने के विरोध में है सरकार की ओर से था। इसका सीधा उद्देश्य यह था कि उस पवित्र फक़ीर को हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय क्षेत्रों में बदनाम किया जाय। इसके साथ ही कबीलों में यह

* "Haji Sahib, however, is universally believed to have given general instructions to his lieutements that, while they are free to harass the British forces whenever they may find them, whether they happen to be the Regular Army, the Frontier constabulary or the Police or the Militia or even the Khassadars, they are not to cause any injury to the civil population within the settled Districts to which ever community they may belong."

—From Report on N.W.F.P. & Bannu Raids 1938.

भी प्रचार किया गया था कि फ़क़ीर सरकारी एजेण्ट है, उसे इसके लिए सरकार से रुपया भी मिलता है। कहा यह जाता था कि सरकार से मिलकर वह उसकी 'आगे बढ़ो' नीति में गुप्त रूप से सहायक हो रहा है। लेकिन इस प्रकार का मनमाना परिणाम नहीं हो सका। फ़क़ीर की लोकप्रियता कम नहीं हो सकी। इसका प्रमाण है लीग और राष्ट्रीय दोनों दलों को उसकी कृपा भीख माँगना।

सन् १९३६–३७ के आसपास ईपी के फ़क़ीर का यश-सूर्य मध्याह्न में था। सरकार के सारे प्रयत्न असफल हो चुके थे। अन्त में हारकर उन्होंने ईपी गाँव पर गोलाबारी की। और फ़क़ीर का पैतृक मकान जलाकर भस्मसात् कर दिया। इससे फ़क़ीर और उसके साथियों को बहुत बड़ा मानसिक आघात लगा। फ़क़ीर समझ रहा था अब वहाँ अधिक रहने में कुशल नहीं है। इसलिये अपना घर छोड़कर वह खैसोरा की घाटी में चला गया। कहा जाता है इस समय फ़क़ीर के साथ केवल ८० चुनींदा सिपाही थे। परन्तु इन ८० आदमियों ने ही ब्रिटिश फ़ौजों को उनके हेड क्वार्टर तक मारकर भगा दिया।

जब फ़क़ीर युद्ध क्षेत्र में उतरा तो लोगों ने दाँतों तले उँगली दबा कर देखा कि उनका दुबला पतला फ़क़ीर केवल फ़क़ीर ही न था वरन् बहुत योग्य सेनानी भी था। सन् १९३६–३७ के युद्धों से यह भली भाँति प्रमाणित हो गया था कि वह उपासना करने वाला केवल एक सन्त ही नहीं, वरन् एक अनुपम संगठनकर्त्ता भी था। ब्रिटिश सरकार की बड़ी से बड़ी फ़ौजों को भी हरा देता था। वह गुरिल्ला युद्ध-कला में बहुत प्रवीण था। इस फ़क़ीर सेनापति ने अपने क्षेत्र को चार भागों में चार लेफ्टीनेन्टों के सुपुर्द कर दिया है। अहमदज़ई वज़ीरियों के चार कबीले थे—हाथी खेल, स्पैरका, उमरज़ई, बीज़न खेल, सैद खेल आदि-आदि। अहमदज़ई लोगों का यह क्षेत्र लेफ्टीनेन्ट खलीफ़ा मेहरदिल की देख रेख में था। यह क्षेत्र बन्नू के ऊपर था और शुम्मदी नाम से प्रसिद्ध है। मेहरदिल सन् १९३५–३६ तक एक सरकारी जन-सेना (मिलिशिया) का अफ़सर था, परन्तु बाद को फ़क़ीर के पास

चला आया था। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि मेहरदिल का क्षेत्र पंजाब के कालबाग और मियाँवली तक फैला है। जो हो इतना निश्चय है कि मेहरदिल बहुत शूरवीर योद्धा था। भिट्टानी का क्षेत्र जहां भिट्टानी लोगों का वास है दीन फकीर को दिया गया था। इसी प्रकार दक्षिण वजीरिस्तान मुल्ला शेरअली को तथा मीरअली और थाल के बीच का हिस्सा जनरल गग्गो के अधीन किया। इन लेफ्टीनेन्टों को आदेश दिया गया था कि वे ब्रिटिश सरकार के विरोध में जैसे भी चाहें, युद्ध करते रहें। जनरल गग्गो के विषय में प्रसिद्ध है कि वह बहुत ही क्रूर और निर्दय युद्ध करता है।

इस समय तक फकीर के पास बड़ी अच्छी सेना थी। बहुत से अनुभवी सिपाही जो गुरिल्ला युद्ध में चतुर थे, उसके झंडे के नीचे आकर इकट्ठे हो गये थे। इन लोगों के पास आधुनिक अस्त्र-शस्त्र भी पर्याप्त संख्या में थे। इन युद्धों में फकीर की सेना ने देशी बम्बों का भी प्रयोग किया गया था। यह बताया जाता है कि जो कारतूस ये लोग चलाते थे वे शीशे के न होकर सीमेन्ट या एक प्रकार की काली मिट्टी के बने थे। ये मार में तो उतने ही कड़े और मजबूत थे जितने शीशे के कारतूस लेकिन वजन में वे उनसे हल्के थे। यह तो रहा सेना का संगठन। फकीर के गुप्तचरों का संगठन भी आश्चर्य जनक था। ब्रिटिश छावनी में होने वाली छोटी से छोटी कानाफूसी भी फकीर के कानों तक पहुँच जाती थी। श्री आसफअलीजी के शब्दों में तो बन्नू का प्रत्येक व्यक्ति यह समझता था कि फकीर साहब के कान और आँख दूर नहीं थे।

सन् १९३४–३५ के पूर्व तक फकीर की युद्ध नीति आत्म रक्षात्मक (Defensive) थी। बहुत दिनों तक वह ब्रिटिश फौजों की धर पकड़ और मारकाट सहता रहा। इस आत्म रक्षात्मक नीति के कारण ही उसका एक स्थान पर चुप बैठ सकना कठिन हो गया था। वह इधर-उधर भागा भागा फिरता रहता था। कभी खैसरा, कभी शाम, कभी महसूदों, कभी दत्ता खेलों और कभी मद्दा खेलों के यहाँ वह छिपता

छिपता था। लेकिन सरकारी फौजें निरंतर उसका पीछा कर रही थीं। लेकिन जब सहना असह्य हो गया तो उसने आक्रमणात्मक नीति धारण की और अपने उपरोक्त चार लेफ्टीनेंट बनाये। फकीर के लेफ्टीनेंटों ने निश्चय कर लिया था कि सरकारी सड़कें नहीं बनने देंगे। जो सड़कें बन गई थीं उन पर कुछ ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि आना जाना मुश्किल था। सुनते हैं वजीरिस्तान की कुछ सड़कों पर बम्ब भी रखे हुये मिले हैं जो निस्सन्देह ब्रिटिश प्रवेश को रोकने के लिये थे। रेल की लाइनें उखाड़ कर फेंक दी गईं और सड़कों में ऐसे बड़े बड़े गड्ढे बना दिये कि आना जाना असम्भव हो गया। आजकल गर्मी के दिनों में जो सड़कें हैं वे तो एक दम अरक्षित और खतरे से भरी हैं।

अपने बारे में होने वाले सरकार के गन्दे प्रचार को फकीर देख रहा था। वह यह भी अनुभव कर रहा था कि अगर सरकार का यह झूठा प्रचार सीमा प्रान्त में सफल न भी हो सका तो कम से कम दूर हिन्दुस्तान के लोग जरूर उसको गलत समझ लेंगे। इस प्रचार को रोकने के लिए उसने अपना प्रचार कार्य भी आरम्भ कर दिया। समय समय पर उसकी ओर से विभिन्न इलाकों में नोटिस बाँटे जाते और कुछ प्रचारक लोग भी उसकी ओर काम कर रहे थे। इन सबके अतिरिक्त सन् १९३७ में उसने पं० जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र भी लिखा। इस पत्र ने सभी दलों में हलचल मचा दी। लगभग सभी पत्रों ने उसको प्रकाशित किया था। जिस 'फ़क़ीरुल अब्द-अल-मुतवक्किल अल्लाह मिर्जा अली खाँ* छाप की मुहर की चर्चा हमने शुरू में की थी वह मुहर इस पत्र पर भी लगी थी। पाठक समझ गये होंगे यह मुहर हमारे इपी के फकीर की है। अब भी कभी कभी वह अपने आदेश पत्रों में इस मुहर का प्रयोग करता है। वह इस बात को बहुत महत्त्व देता है कि भारत की जनता कहीं उसके प्रति अपनी सहानुभूति को घृणा के रूप में परिवर्तित न करदे। उन्हीं दिनों अर्थात् सन् १९३७—३८ के आस-

* ईश्वर का नाचीज़ बन्दा तथा ईश्वर पर भरोसा करने वाला मिर्जा अली खाँ।

पास बन्नू के डिप्टी कमिश्नर मेजर लाटन ने यह प्रचार किया कि जब शम्सखेल वालों ने दो हिन्दू लड़कों को उड़ा लिया, तब उन्होंने एक मौलवी द्वारा, जिसका नाम 'शुर्बी' था, शम्सखेल वालों से कहलवाया कि पं० जवाहरलाल नेहरू फ़क़ीर ईपी के शुभचिन्तक हैं, पर उन लड़कों को भगाने से उन पर तथा शेष भारतीय जनता पर बुरा प्रभाव पड़ने की आशङ्का है। इस पर वे दोनों लड़के फ़क़ीर ईपी के दबाव डालने पर तुरन्त छोड़ दिये गये।

अशिक्षित जनता चमत्कारप्रिय होती है। जब तक उनके देवी-देवता में कोई चमत्कार न हो तब तक वे उनकी महत्ता स्वीकार नहीं करते। चमत्कार के बल पर ही भूत-प्रेतों का स्थान कहीं कहीं देवताओं से भी बढ़ गया है। अपनी इस चमत्कार की प्यास को बुझाने के लिए वह प्रायः अपने महान् पुरुषों और देव मन्दिरों आदि में कुछ आश्चर्य जनक गुणों का आरोप कर लेती है। ईपी के फ़क़ीर के साथ भी यह खेल ख़ूब खेला गया है। प्रान्त भर में उसके सम्बन्ध में विचित्र किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उसके जन्म के समय की किंवदन्ती को पाठक पढ़ चुके हैं। यहाँ हम कुछ अन्य किंवदन्तियाँ लिखते हैं जो फ़क़ीर की अद्भुत शक्ति की परिचायक हैं। यह बात समस्त कबीलों में फैली हुई है कि फ़क़ीर के पास कुछ दैवी शक्तियाँ हैं जो इस प्रकार के हथियारों से उसकी रक्षा करती हैं। गोली, गोले, तलवार और तीर कोई भी अस्त्र-शस्त्र उसके 'वज्र' शरीर को नहीं बेध सकते। अनेक बार उसे गिरफ़्तार करने की कोशिशें सरकार ने की हैं, परन्तु वे सभी असफल गईं। एक दूसरी बात उसके सम्बन्ध में यह भी प्रसिद्ध है कि उसके पास कुछ ऐसी ऋद्धि-सिद्धि है जिसके बल पर वह त्रिकाल की घटनाएँ जान लेता है। कहा जाता है कि अनेक बार ऐसा हुआ है कि इत्र की शीशियों में उसके पास सरकारी 'पूतनाएँ' जहर ले जाती हैं, परन्तु हर बार वह जान जाता है। जब-जब यह जासूस लोग जहर ले गये उसने मुस्करा कर कह दिया कि वे अपने काम में सफल नहीं हो सकते। लेकिन जानकर भी वह उन्हें मारता या मरवाता नहीं। इसके विपरीत सुरक्षित रूप

से लौट जाने देता है ताकि अपनी असफलता की कहानी वे जाकर अपने मालिकों को सुना सकें। इन सबसे बढ़कर मजेदार और आश्चर्यजनक बात यह है कि वह निश्चित रूप से एक ही समय में अनेक स्थानों पर देखा गया है। इस घटना को मजेदार हमने जान-बूझकर कहा है। फ़क़ीर के ऐसे अद्भुत तमाशे देख देखकर अशिक्षित और अर्ध अशिक्षित लोग तो उसे जादूगर ही समझने लगे हैं। लेकिन सच बात कुछ और ही है। सुनते हैं हर हिटलर ने भी कुछ ऐसा ही किया था। फ़क़ीर ने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक कुछ ऐसे लोगों को चुन रखा है जो शकल-सूरत में, क़द इत्यादि में उससे मिलते जुलते हैं। ये सब लोग अपने को 'ईपी का फ़क़ीर' कहते हैं। यही जादू है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने अपना स्वार्थ साधने के लिए भी यह भेष बना लिया है और अपने को इसी नाम से सुना सुना कर घूमते फिरते हैं। अतः १९३७-३८ में एक नहीं वरन् कई ईपी के फ़क़ीर उत्पन्न हो गये थे। फ़क़ीर की असाधारण शक्तियों में एक यह भी कही जाती है कि वह सूखी चट्टान में से पानी निकाल सकता है। इन किंवदन्तियों में सत्य का अंश आज कोई भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति न मानेगा। परन्तु इनसे इतना ज़रूर समझा जा सकता है कि जनता फ़क़ीर को किस दृष्टि से देखती है।

फ़क़ीर का रसद लेने का तरीक़ा भी ख़ूब है। जिस समय लड़ाई हो रही होती है बहुधा उसके लेफ्टीनेण्ट यह करते हैं कि खुद पीछे हटते हुये अँग्रेज़ी फ़ौजों को बहुत आगे बढ़ा ले जाते हैं। इस प्रकार ब्रिटिश शिविर में और युद्ध क्षेत्र में काफ़ी लम्बा फ़ासला पड़ जाता है। जब कैम्प से खाने का सामान फ़ौजों के पास भेजा जाता है तो फ़क़ीर के साथी बड़े आनन्द के साथ उन रसद रक्षकों को मारकर भगा देते हैं और सामान लूट लेते हैं। फ़क़ीर के मित्र बहुत से देश कहे जाते हैं। कुछ लोगों का मत है, और इसमें बहुत कुछ सत्य है कि उसे अफ़ग़ानिस्तान से भी सहायता मिलती है। इस समय इसमें तो सन्देह नहीं कि उसने सन् १९२९ में बच्चा सक्का के विरुद्ध नादिर ख़ाँ को बहुत महत्त्वपूर्ण सहायता दी थी। उसकी कठिनाइयों में कहा जाता है कि बर्फ़ से

ढके हुए पहाड़ों की परवाह न करके वह उन दिनों सीधा काबुल पहुँचा था और बचा सक्का को—जिसे वह अँग्रेजों का एजेण्ट समझता था, पराजित करने में उसने अपनी सारी ताक़त और सेना झोंक दी थी। (अफगान सीमा के पास ही रहने वाले वजीरियों को अब भी अफगान सरकार से उस सहायता के उपलक्ष में भत्ता मिलता है)। कुछ लोगों का अनुमान है कि ईपी के फ़क़ीर के पास कभी-कभी जर्मनी और इटली के अस्त्र-शस्त्र भी आते थे। सच बात तो यह है कि कोई भी शक्ति जो ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ हो ईपी के फ़क़ीर की और वज़ीरिस्तान की पूरी पूरी ताकत से लाभ उठा सकती है। वज़ीरिस्तान का जब छोटा सा भी आक्रमण होता है तो बहुत बड़ी ब्रिटिश सेना वहाँ जाकर उलझ जाती है। इन्हीं सब कारणों से ईपी के फकीर का सम्बन्ध कुछ विदेशी सरकारों से भी है। हिटलर के कागज़ातों में भी ईपी के फकीर का महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है।

सन् '३४ से जो सीमा प्रान्त की राजनीति में जो ज्वार आरम्भ हुआ था वह सन् '३८ में आकर समाप्त हो गया। प्रान्त में काँग्रेसी सरकार स्थापित हो चुकी थी। फ़क़ीर ने भी अपना पुराना साधना का मार्ग पकड़ा। युद्ध का समस्त भार अपने लेफ्टीनेण्टों पर डालकर वह निर्जन में तपस्या करने के लिए चला गया। 'यह एक आश्चर्य की बात है कि यद्यपि वज़ीरिस्तान में होने वाले विद्रोहों का वह प्रमुखतम नेता था। (और आज भी है) पर उसमें सैनिकत्व उतना भी नहीं है जितना एक साधारण वज़ीरी में होता है। अपनी गुफा में पड़े-पड़े उपासना करते रहना ही उसे सबसे अधिक प्रिय है। परन्तु एक बार जिस सागर में डुबकी लगाई थी उससे वह सर्वथा छूट नहीं पाया है। अब भी कभी कभी उसकी घोषणाएँ सुन पड़ती हैं। सन् '४६ में उसने प्रकट होकर संसार के सम्मुख अपनी बात कही थी, अब की बार फिर सुनते हैं (यदि हिन्दुस्तान टाइम्स की ख़बर केवल चाल नहीं है) उसने स्वतंत्र पठानिस्तान का समर्थन किया है। जमय्यत के प्रेसीडेण्ट मौलाना सैयद गुलाब शाह एक शिष्ट मण्डल लेकर उसके पास गए थे। लौटकर उन्होंने

कहा है—"ईपी के फकीर के साथ मैं दो बार मिला था उनसे हमारी भारतीय राजनीति पर बात-चीत हुई थी, और खासकर पठानों की आज़ाद पठानिस्तान की माँग पर। पठानों की जायज़ राजनैतिक माँग का तहेदिल से समर्थन करते हुये उसने यह विचार प्रकट किया कि ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्राज्य के हित के लिए हिन्दुस्तान के टुकड़े किये हैं। इसी के परिणाम स्वरूप सीमा प्रान्त में होने वाले जनमत के नाम पर झूठे झगड़े पैदा कर दिये हैं। ब्रिटिश लोग हमारे सबसे बुरे शत्रु हैं और मैं इसलाम धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर इनके ख़िलाफ़ हिन्दुओं से मिल सकता हूँ। इसी समाचार में आगे लिखा है कि फ़क़ीर ने लोगों को आदेश दिया है कि वे वोट न डालें।

वज़ीरिस्तान में इस समय भी उसका भारी प्रभाव है। यही कारण है कि लीग और सीमा प्रान्त के काँग्रेसी संगठन उसे अपने अपने पक्ष का साबित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अभी हाल ही में इसी हेतु उससे अनेक व्यक्ति मिले हैं, जिनमें लीग के प्रतिनिधि मनकी के पीर भी थे। और हिन्दू-सिक्ख-संरक्षक समिति के प्रतिनिधि तथा ख़ुदाई ख़िदमतगारों का एक दल भी था। उसके गुरु तुरंगज़ई के हाजी की मृत्यु हो चुकी है।

कौन जानता है कि ईपी के फ़क़ीर का भविष्य क्या होगा? पर इतना निश्चित है कि वह कभी अँग्रेज़ों का समर्थक नहीं बन सकता। यह एक मनोरंजक तथ्य है कि इसी इलाके की सुप्रसिद्ध रियासत स्वात के वर्त्तमान शासक का बाबा अख़ुन्द साहिब अँग्रेज़ों का शत्रु था और वह तब तक ब्रिटिश इलाकों पर आक्रमण करता रहा, जब तक उसे स्वात का राजा न मान लिया गया। पर ईपी के फ़क़ीर की आकांक्षा राज्य करने की नहीं है और अँग्रेज़ों का विरोध वह केवल इसलिये करता है कि वह उसे अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझता है और अपने गुरु से मिली विरासत—अँग्रेज़ों का विरोध—को वह आजीवन सुरक्षित रखना पसन्द करता है। शायद भारत के पूर्ण स्वतन्त्र होने पर ईपी का फ़क़ीर सीमा प्रदेश के कबीलों में सबसे बड़ा शान्तिस्थापक हो।

खान अब्दुल ग़फ्फार खाँ

"कलम काँप उठती है। कितने अत्याचार, कितनी यातनाएँ तुमने स्वदेश और जाति के लिए इस शरीर पर झेली हैं। तुमने सोची थी, सेना में भर्ती होने की, समग्र संसार जानता है तुमने सरकार की ग़ुलामी नहीं की, सेना में भर्ती नहीं हुए। जहाँ मनुष्य का मूल्य कौड़ियों पर गिना जाता हो, जहाँ मनुष्य मनुष्य का सम्बन्ध स्वामी और दास का हो वहाँ तुम्हारे लिए स्थान नहीं है। भारतमाता आशीर्वाद देती है—'भरती माता तुम्हारे बोझ सहे।"

खान अब्दुल गफ्फार खाँ का जन्मस्थान उत्तमनजई गाँव है। उत्तमानजई सुदूर सीमा प्रान्त में पेशावर से २२ मील की दूरी पर स्थित है। उसके चारों ओर हस्तनागर का हरियाला मैदान लहरा रहा है। इस हरियाली धरती का प्रभाव बालक गफ्फार खाँ के हृदय और मस्तिष्क दोनों पर बहुत स्पन्दनशील पड़ा। बालक यद्यपि अनेकों विरोधी परिस्थितियों में रहता था, जिनका ज़िक्र हम अभी करेंगे, किन्तु इस प्राकृतिक सौन्दर्य का पहला प्रभाव यह पड़ा कि उसकी सुप्त मानवी शक्तियाँ जाग गईं। अपनी जाति की कठोरताओं के बीच भी वह मानव की कोमलताओं को ग्रहण कर सका, इसका एक मात्र कारण इस प्रकृति की पाठशाला की शिक्षा थी। विरोधी परिस्थितियों का आरम्भ अब्दुल गफ्फार खाँ के घर से ही होता है। पिताजी बहराम अपने गाँव के ज़मींदार थे। वे मोहमंदज़ई पठान थे। बहराम अपने गाँव के अच्छे रईस और दबंग व्यक्ति थे। परम्परा यह थी कि कोई नौकरी या व्यापार न करके इस घर के लोग सीधे फ़ौज में भर्ती हो जाते थे। और उनके लिए स्थान भी सहज ही मिलता था, क्योंकि एक तो वे स्वयं ही बलवान हृष्ट-पुष्ट और सिपाहियाना होते थे, दूसरे गफ्फार खाँ के दादा साहब सन् १८५७ की भारतीय जनक्रान्ति में सरकार की ओर से क्रान्तिकारियों के विरुद्ध लड़ चुके थे। सरकार की सेवा घर की पैतृक परम्परा थी। परन्तु इस घातक गुफा से कैसे अब्दुल गफ्फार खाँ और उनके अग्रज डा० खान साहब निकल आये इसे पाठक आगे के विवरण से

जान सकेंगे। डा० खान साहब अब्दुल ग़फ्फार खाँ के जेठे भाई हैं।

बहराम गाँव के खान थे। घर में खाने पीने को खूब था। जीवन सुखमय और निर्द्वन्द था। यही कारण था कि अपने शैशव में ही खान साहब ने अपने शरीर को खूब मज़बूत बना लिया। मानो वे जानते थे कि आगे चलकर उन्हें पुलिस के डण्डे, जूते और थप्पड़ इसी शरीर पर झेलने हैं। जीवन निर्द्वन्द अवश्य था परन्तु शान्तिमय न था। पठानों के यहाँ वह होता भी नहीं। सैनिक शिक्षा के लिये कभी उन्हें घर छोड़ कर बाहर जाने की आवश्यकता नहीं होती। अब्दुल ग़फ्फार को भी नहीं थी। हाँ, निर्द्वन्दता खूब थी। चिड़ियाँ मारने की छोटी-सी बन्दूक उठाई और चल दिये चिड़ियों और खरहों की तलाश में। पठान बच्चे खरहों के बड़े शौकीन होते हैं। यद्यपि खान साहब का हमने बन्दूक कौशल कभी देखा नहीं परन्तु इतना हम कह सकते हैं कि वे निशाना ज़रूर बढ़िया मारते होंगे।

और फिर पाठशाला। यद्यपि शिक्षा की गुरुगम्भीर महिमा अभी अधिकांश साधारण कोटि के किसान नहीं समझ पाये थे, परन्तु खान बहराम तो साधारण कोटि के थे नहीं। वे ज़मींदार थे। उनका बालक शिक्षा ज़रूर पायेगा। और वह भी सर्वश्रेष्ठ पाठशाला में। अब्दुल ग़फ्फार को इंगलैंड चर्च के मिशन स्कूल में भेजा गया। यहाँ, इस पेशावर के स्कूलमें मिल गये रेवरेण्ड महाशय विगरैम। विगरैम महाशय स्कूल में हेड मास्टर थे, बड़े उदारमना पादरी थे। हेड मास्टर साहब का विचार था कि बच्चों को कोरा किताबी कीड़ा नहीं बना देना चाहिये। सबसे बड़ी शिक्षा चरित्र सुधार है। इस विचार को व काम में भी लाते थे। विद्यार्थियों पर बड़ी निगाह रखते थे कि उनके चरित्र में कहीं दाग़ न पड़ जाये। आज जब अब्दुल ग़फ्फार खाँ साहब को इतना उदार, इतना सहिष्णु, इतना सच्चरित्र देखते हैं तो इच्छा होती है कि उन आदरणीय गुरुदेव के सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक हो जायें। जब एम० ए० एन०=मैन (Man =आदमी) से चल कर 'दी रोज़ इज़ रैड' (The rose is red =गुलाब लाल होता है) तक की यात्रा पूरी करली

गई तो विद्यार्थी अब्दुल गफ्फार स्वाभिमान से फूल फूल उठते थे। बचपन का वह स्वाभिमान किसमें नहीं होता। जिसमें नहीं होता उसे क्या कहें जड़वत् या जड़।

जिस दिन युवक अब्दुल गफ्फार की जन्मदात्री माँ भावी दीर्घकालीन वियोग को सोचकर रो रही थी, उस दिन भारत माँ असीम हर्ष से पुलकित हो मुस्करा रही थी। बेटा पढ़ने के लिये घर से दूर, बहुत दूर अलीगढ़ यूनीवर्सिटी (विश्व विद्यालय) जा रहा था। रोने की बात ही थी। माँ से विदा ले लम्बी यात्रा तै करने अब्दुल गफ्फार खाँ अलीगढ़ आ गये। उस समय अलीगढ़ यूनीवर्सिटी आज जैसी न थी। कालेज से लड़के फासफोरस (एक हींग जैसे रंग रूप का पदार्थ जो हवा लगते ही जल उठता है) निकाल निकाल कर शहरों में आग नहीं लगाते फिरते थे। एक लेखक महोदय तो अलीगढ़ को मुसलिम राष्ट्र का केन्द्र मानकर लिखते हैं:—"अलीगढ़ यूनीवर्सिटी के इतिहास में यह गौरवपूर्ण सत्य है कि इस के विद्यार्थी हमेशा दृढ़ राष्ट्रीय विचारों के निकले हैं। ठीक अभी तक वे मुसलिम लीग के प्रतिक्रिया वादी प्रभाव को अपने तक आने से रोकते रहे हैं। जिन्ना साहब के जादू के डंडे ने उस सांस्कृतिक क्षेत्र में अपना खेल नहीं जमा पाया था।" लेकिन आज तो यह आशा दुराशामात्र रह गई है। परन्तु जिस समय की बात हम कर रहे हैं, यानी जिस समय अब्दुल गफ्फार खाँ पढ़ने लिये अलीगढ़ आये थे, यह अलीगढ़ राष्ट्रीयता का क्रीड़ा स्थल था। यहाँ से पल पोषकर नौजवान देश भक्त निकलते थे। अब्दुल गफ्फार खाँ भी पढ़ रहे थे तभी एक दिन मिल गये मौलाना अबुल कलाम आजाद। जिन्होंने मौलाना साहब को देखा है वे जानते हैं कि वे बंगाल के चतुर जादूगर हैं। एक बार जो उनसे मिलता है, वह उनका अपना हुये बिना नहीं रुक सकता। कुछ ऐसा ही मोहन मंत्र है उनके पास। यूनीवर्सिटी का यह युवक भी आकर्षित हो चुका था, और कोर्स की किताबें थोड़ी देर के लिये एक ओर रख मौलाना साहब की किसी राजनैतिक पुस्तक या 'अल हिलाल' की फाइलें पढ़ता रहता

था। अल हिलाल' का सम्पादक (मौलाना अबुल कलाम आज़ाद) स्वयं ही मूर्त्तिमान विश्वकोष हैं। भारतीय क्रान्ति के विकास में 'अल हिलाल' का बहुत बड़ा हाथ है। आरम्भ में इसकी रूढ़ि मारनी प्रतिज्ञायें देखकर प्रगति विरोधी मुसलिम वर्ग बहुत अधिक भड़का। यहाँ तक कि उस नवजवान की जान पर भी बन आई थी। "हिन्दुस्तान के अखबारी क्षेत्र में बहुत थोड़े पत्र ऐसे हैं जिन्होंने 'अलहिलाल के समान सद्प्रभाव लोगों पर डाला हैं।" (युसुफ मेहर अली)

जिस समय यूनीवर्सिटी की पढ़ाई खतम करके नवयुवक अब्दुल गफ्फार खाँ निकला उस समय शरीर में भारी ताक़त और हृदय में बहुत कुछ कर सकने का साहस था। पूरा सवा छः फीट ऊँचा डील डौल और ढाई मन से ज्यादा वजन था। आँखों में आत्मप्रकाश की ज्योति चमक रही थी। मस्तिष्क में विचारों का घन घोर संघर्ष था। समस्या थी—"क्या करूँ ? "यूनीवर्सिटी में जा हवा लग चुकी थी वह पुकार पुकार कर कह रही थी—तुम्हें जन्मभूमि पुकारती है, तुम अपने दुःखी भाइयों की ओर देखो विद्यार्थी और जवान। तूफ़ान और आँधी। जी करता था एक टक्कर लेलें। परन्तु टक्कर किससे ? इतने बड़े, इतने महान् साम्राज्य समुद्र से टकरा दे अपने को। परन्तु यह तो संघर्ष था।

अब्दुल गफ्फार खाँ खान घराने के थे। वीरों में उनका घर नामी हो चुका था। सब को आशा थी अब्दुल गफ्फार सेना में भरती होगा। ब्रिटिश सेनापति हाथ फैलाए खड़ा था। स्वयं अब्दुल गफ्फार भी यही सोच रहे थे। लेकिन तभी एक दिन कुछ दुर्घटना हो गई। घटना नई नहीं थी। नित्य प्रति ही होती रहती है। परन्तु यह नौजवान जब दुनिया के धंधों के द्वार पर ही घुस रहा था तभी देखा एक अँग्रेज अफसर एक हिन्दुस्तानी अफसर से, शायद रुआब, झाँटने के लिये बुरा भला कह रहा है। सरासर अपमान कर रहा है। यद्यपि हिन्दुस्तानी अफसर पद और उम्र दोनों में बड़ा था, लेकिन फिर भी। क्यों ? इसलिये चूँकि छोटा अफसर था स्वामी वर्ग का गोरा और

बड़ा अफसर था गुलाम वर्ग का काला । वही वर्ण-भेद । सिर से एड़ी तक खून खौलने की कोई बात न थी । इस युग में यही तो आवश्यक है । खैर जो कुछ हो जीवन की गति में "राइट टर्न (दक्षिण चक्र) होगया दिशा बदल गई । दृढ़ निश्चय कर लिया युद्ध का सिपाही नहीं शान्ति का पुजारी बनूँगा । देश की बलि वेदी पर जीवन भेंट कर दिया । प्राण देशोत्तर सम्पत्ति हो गये, अब उनको दूसरे काम में कैसे लगाया जा सकता था । तब से कितने वर्ष हो गये, तुम्हें फकीरी लिये हुये । धन-सम्पति, यश और मान सब कुछ छोड़ा, जेल के मेहमान बन गये । एक नहीं दो बार खान अब्दुल गफ्फार खाँ को अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के राष्ट्रपति का सम्मान उन्हें दिया गया परन्तु नम्रता पूर्वक लौटा दिया । जे० एस० व्हाइट महोदय इसे एक और ढंग से कहते हैं । —"यदि जिन्ना साहब ब्रूटस हो जायँ तो पं० जवाहरलाल नेहरू तो मार्क एन्टोनी होंगे और खान अब्दुल गफ्फार खाँ सम्राट् जुलियस सीजर । एन्टोनी ने दो बार जुलियस सीजर को राजमुकुट दिया, दोनों बार सीजर ने उसे लौटा दिया । ठीक यही बात सीमान्त गाँधी के बारे में भी कही जा सकती है ।*

अब अब्दुलगफ्फारखाँ समाज सेवा के क्षेत्र में उतर आये । आपसी खून खराबी, कबीले रीति व्यवहार अशिक्षा, आदि आदि सैकड़ों सामाजिक-कुरीतियों और बुराइयों की ओर खान साहब की निगाह

* 'जुलियस सीज़र' अंग्रेजी के महान् कवि एवं नाटककार शेक्सपियर का प्रसिद्ध नाटक है । ब्रूटस नाटक का उपनायक है । ब्रूटस के चरित्र की विशेषता यह है कि वह सच्चरित्र व्यक्ति होते हुये भी राज्य के लोभ से चरित्रहीन हो जाता है । लेखक ने जिन्ना साहब की उपमा इन्हीं ब्रूटस महोदय से की है । जब जुलियस सीज़र देश विजय करके लौटा था तो उसे एन्टोनी ने ताज दिया था । ताजपोशी के लिये जो महोत्सव हुआ था उसमें जुलियस सीज़र ने पहली दो बार उस राजमुकुट को अस्वीकृत कर दिया था । सीमान्त गाँधी की सीज़र से तुलना बहुत ठीक ही है ।

—लेखक

लग रही थी। दृढ़ निश्चय और उत्साह के साथ उन्होंने अपनी उस अपढ़ जाति में ज्ञान का प्रकाश लाने का काम शुरू कर दिया। देश भक्ति की लहरें उमड़ने लगीं। गाँवों में कार्य आरम्भ हो गया। और एक साथी भी मिला। तुरंगजई का हाजी। पाठक इस आग के शोले को जानते हैं। इनका परिचय हमें अन्यत्र देना है। गाँव गाँव में राजनीति की चर्चा होने लगी। ग़ुलामी और स्वतंत्रता की परिभाषायें बनाई जाने लगीं कि वह काला क़ानून रौलट एक्ट आ गया। अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ पठानों के एक वर्ग के नेता हो चुके थे। उनके नेतृत्व में ही इस एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हो गया। हज़ारों की संख्या में अभिमानी नौजवान, जिनके दिलों में कुछ कर मरने की चाह थी, आ आकर सीमान्त गाँधी के झंडे के नीचे खड़े हो गये। अब्दुल ग़फ्फ़ारख़ाँ स्वतंत्रता का बिगुल बजाते हुये घूम रहे थे कि पुलिस ने आ पकड़ा। चलो जेल। साथ में ६० वर्ष के बूढ़े बाप बैराम बेटे का युद्ध कौशल देखते हुये चले। बिना किसी प्रकार की क़ानूनी कार्रवाई के अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ साहब के जेल में ठूँस दिया गया। सोचा होगा जेल की मार खाकर सब 'देश भक्ती' भूल जायगा। परन्तु जब यह नहीं हुआ तो दूसरी नीति चलाई गई। क़ैदी के पास एक समझौता-मंडल भेजा गया जिसने यह समझाना चाहा कि ब्रिटिश सरकार बहादुर की खिला-फ़त करना छोड़ दो। परन्तु नहीं। नौकरशाही के ये बहकावे, जेलर के वे डंडे सब निष्फल गये तो खिजक कर बूढ़े बाप को भी जेल में लाकर पटक दिया। सौ वर्ष के बुड्ढे को। सच बात तो यह थी कि जिस दोष से बेटे को गिरफ्तार किया गया था, उसी दोष पर बाप को भी किया जा सकता था। क्योंकि बाप पर बेटे की देश भक्ति और राष्ट्रीयता का रंग ख़ूब चढ़ चुका था। ठीक वैसे ही जैसे स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू पर उनके सुपुत्र पं० जवाहरलाल नेहरू का।

ऐसे क़ैदियों के लिये जेल में जो क़ानून की किताब हैं उसी के अनु-सार पुरस्कार अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ साहब को भी मिला। इसीलिये उसकी चर्चा यहाँ करना व्यर्थ है। हाँ यह ज़रूर हुआ कि इस जेल

जीवन से उनकी तन्दुरुस्ती जरूर गिर गई। सीमान्त गाँधी की सब से बड़ी विशेषता है उनकी मुस्कान। गाँधी जी के साथ इस बात में भी मिलान ख़ूब बैठता है। जब जेल की यातनाओं से साथी क़ैदी दुखी हो उठते थे तो अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ अपनी हँसमुखता से उन्हें प्रसन्न बना दिया करते थे।

सीमा प्रान्त के हिजरत आन्दोलन में सीमान्त गाँधी भी सम्मिलित थे। वे भी अपना देश छोड़कर अफ़ग़ानिस्तान चले गये। अफ़ग़ानिस्तान में उनकी भेंट उस अभागे पर वीर हृदय अमीर अमानुल्ला ख़ाँ से हो गई। अमीर अमानुल्ला ख़ाँ ने ख़ान साहब को सलाह दी थी, कि वे स्वदेश लौट जायँ और वहीं रहकर समाज सेवा के मार्ग से देश सेवा करें। ख़ाँन साहब ने अमीर की बात को मान लिया। और वे पुनः समाज सेवा के काम में लग गये। अब की बार समाज सेवा में उन्होंने हिन्दू मुसलिम एकता का बीड़ा उठाया। जगह जगह पर वे हिन्दू धर्म और इस्लाम मजहब की सच्चाईयाँ और समानताएँ बताते फिरते थे। जे० एस० व्हाइट महोदय के इस कथन में बहुत कुछ सत्य है। वे लिखते हैं—"वे (सीमान्त गाँधी) किसी भी पंडित या मुल्ला से अधिक अच्छी तरह गीता और क़ुरान को समझते हैं। उनके लिये मस्जिद का ख़ुदा मंदिर का ईश्वर भी है। (उनके लिये) कृष्ण और ईसा मसीह जिगरी दोस्त हैं। यह सब धार्मिक मतभेद, राजनैतिक चलते पुर्ज़ों के हाथ के हथियार हैं। साम्प्रदायिक एकता के साथ ही साथ पठानों में राष्ट्रीयता की भावना भरना भी अब्दुल ग़फ़्फ़ारख़ाँ साहब का एक प्रमुख काम था। इसके लिये उन्हें तुरंगजई के हाजी के साथ मिलकर गाँव-गाँव में स्कूल खोलना शुरू कर दिया।

हिन्दुस्तान में जिस समय खिलाफ़त आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन चले, और उसके बाद आगे चल कर सन् १६३० में जब सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन आरम्भ हुआ तो ख़ाँ साहब का लगाया हुआ देश भक्ति का पौधा ख़ूब फला फूला। पिछले अध्यायों में पाठक देख आये हैं कि किस प्रकार देश की पुकार पर पठानों ने अपने सिर

फुका दिये ! म० गाँधी जी का सन्देश हवा के साथ गाँव-गाँव में फैल गया। गिरफ्तारियाँ होने लगी। जेलों में जगह नहीं रही थी। सरकार के कान खड़े हो गये। भीषण दमन चक्र चला। हजारों शहीद हो गये और इसी समय किसाख़्वानी का वह करुणाजनक दुख सम्वाद सुन पड़ा। लेकिन यह तो स्वतन्त्रता की लड़ाई थी। सैनिक थे सारे पठान और सेनानी अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ, डा० खान साहब और कुछ अन्य चुनीदा लोग।

जब गान्धी-इरविन समझौता हुआ तो अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ साहब को जेल से छोड़ दिया गया। अभी वह सँभल भी न पाये थे कि फिर गिर-फ्तार कर लिया गया। हालाँकि गोलमेज़-कान्फ़्रेन्स ख़तम हो चुकी थी और गान्धीजी हिन्दुस्तान लौट आये थे। जो-जो अपराध उन पर लगाये गये थे उनमें एक भी सिद्ध न हुआ। कहा यह गया कि हमें डर है कि सीमान्त गान्धी बरतानियाँ सरकार के ख़िलाफ़ एक फ़ौज तय्यार कर रहे हैं। इस गिरफ्तारी पर कबीले सरकार से लड़ने को तय्यार हो गये। लेकिन स्मरण रहे यह लड़ाई लोहे के हथियारों की नहीं बल्कि अहिंसा के हथियारों की थी। ख़ाँ साहब के भाई, भतीजे, लड़के इत्यादि सबके सब जेल में ठूँस दिये गये।

ख़ान अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ को सीमान्त गान्धी का जो नाम मिला है, उससे प्रायः सुनने वालों को धोखा हो जाया करता है। लोगों के इसी धोखे से फ़ायदा उठाकर एक कमिश्नर साहब ने अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ साहब पर छींटाकशी करते हुये कहा था—"ये (ख़ुदाई ख़िदमत-गार) ख़ुदा के ख़िदमतगार नहीं गान्धी के ख़िदमतगार हैं। यह सत्य है कि अब्दुल ग़फ्फ़ार ख़ाँ साहब भी एक बहुत बड़े अहिंसक हैं और राजनीति के क्षेत्र में उनकी अहिंसा भी गान्धीजी ही की तरह चलती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वे गान्धीजी के बँधुआ हैं। अहिंसा तक उनकी पहुँच बिलकुल अपनी ही है। सत्य की खोज में चलते-चलते वे अहिंसा की पगडंडी पर उतर आये हैं। प्रेम का सन्देश उन्हें सब से पहले क़ुरान से मिला है। यह बात कुछ लोगों को

आश्चर्यजनक दीख पड़ेगी, लेकिन है सत्य। एक लेखक महोदय तो यहाँ तक कह गये हैं कि अब्दुल गफ्फार खाँ साहब महात्मा गान्धीजी से बढ़कर कहीं ऊँचे आध्यात्मिक पुरुष हैं। वे लिखते हैं—"खाँ साहब स्वर्ग के द्वार तक पहुँच गये हैं, पण्डितजी (पं० जवाहरलाल नेहरू) मजबूती के साथ धरती पर पैर जमाये हुए हैं जब कि महात्माजी अभी निष्फल प्रयत्न हवा में ही उड़ रहे हैं। गफ्फार खाँ साहब शैली की तरह स्वर्ग से उतरे हैं जब कि महात्मा गाँधीजी कीट्स की तरह धरती से स्वर्ग की ओर जा रहे हैं। इसलिये मेरी समझ में नहीं आता कि कि क्यों गफ्फार खाँ साहब को सीमान्त गान्धी कहा जाये। इसके सिवाय और कोई कारण नहीं है कि महात्मा गान्धी इस क्षेत्र में पहले उतरे तथा आध्यात्मिक से अधिक वे महत्वाकांक्षी हैं और किसी न किसी तरह अपना नाम अधिक फैलाने में समर्थ हो सके हैं। अगर हम किसी आदमी को उसके आध्यात्मिक गुणों से परखें तो गफ्फार खाँ साहब को सीमान्त गान्धी कहने की अपेक्षा महात्मा गान्धीजी को 'हिन्दुस्तानी खान' कहना चाहिये।" लेखक के इस भावात्मक उद्गारों में सत्य की अपेक्षा कल्पना अधिक है। लेकिन हम लोगों को इस झगड़े में पड़ने की जरूरत नहीं। कौन बड़ा आध्यात्मिक है और कौन छोटा है यह जानना कम से कम इन लेखकों के लिये तो सम्भव नहीं है। लेकिन इस उद्धरण से इतना स्पष्ट जरूर हो जाता है कि खान साहब निस्सन्देह बहुत बड़े त्यागी, देशभक्त और सादा मिजाज आदमी हैं। सच तो यह है कि खान साहब महात्मा हों चाहे न हों लेकिन वे बहुत बड़े जनसेवक जरूर हैं। जनता के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण कर रक्खा है। उनके हृदय के कोष में जनता का अर्थ कोई विशेष सम्प्रदाय या वर्ग नहीं है। सारे हिन्दुस्तान के निवासी, अगर बढ़ाकर सारी दुनियाँ के निवासी न कहना चाहें, उनके लिये भाई हैं, और उनकी सेवा करना उनका प्रमुख धर्म है।

सीमान्त गान्धी के यहाँ सेवा का अर्थ कोरी लेक्चरबाजी नहीं है। आज कई वर्ष हो गये जब से वह काँग्रेस की 'वर्किङ्ग कमेटी' के सदस्य

हैं। उन्होंने रचनात्मक काम में अपना पूरा सहयोग दिया है। लड़ने-वाली पठान जाति को उन्होंने शान्तिमय बना दिया है। इसका प्रमाण है खुदाई खिदमतगार सङ्गठन। खुदाई खिदमतगार जिनका विवरण पाठक राष्ट्रीय जागरण के परिच्छेद में देख चुके हैं जनता के सच्चे जन सेवक हैं। यह संगठन खान साहब के अथक परिश्रम असीम साहस, अटूट विश्वास और कभी न बुझने वाली पावन आत्मिक ज्योति की मूर्ति है। इसको देखकर कोई भी जान सकता है कि खान साहब कितने बड़े संगठन कर्त्ता हैं। गाँव-गाँव में पैदल घूम कर खान साहब ने सभायें की, लोगोंको सत्य और अहिंसाके पथ पर अग्रसर किया। विद्वानों का मत है कि लेनिन की सफलता का एक कारण यह भी था कि जब कभी वे व्याख्यान देते थे तब बहुत ही सादा, सरल और आमफ़हम भाषा में बोलते थे। महात्मा गौतम ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया था। जब बड़े-बड़े दार्शनिक लोग लच्छेदार साहित्यिक भाषा में व्याख्यान देते थे, तब गौतम बुद्ध ने जनता की पाली भाषा अपनाई। खान साहब की सफलता का भी यही रहस्य है। वे जब भी बोलते तभी सरस पश्तू भाषा में बोलते। पठानों के सामने वे उनका गौरव पूर्ण इतिहास रखते, उन्हें इस्लाम का सच्चा मार्ग बताते। वे कहते—"तुम पठान हो, वीर हो, साहसी हो, किन्तु फिर भी ग़ुलाम हो।" बस ग़ुलाम शब्द पठान नहीं सुन सकता। यही उसका सब से बड़ा शत्रु है। उन्होंने एक नहीं अनेक बार पूरे प्रान्त का भ्रमण किया। हज़ारों की संख्या में लाल वर्दी पहने सैनिक आ आकर उनके झंडे के नीचे जमा होने लगे। इन नये सैनिकों की पहली प्रतिज्ञा अहिंसा थी।

खान साहब ने सामाजिक संगठन भी किया। बहुत से लोगों का प्रत्येक गाँव में एक एक कमेटी बनाई जाती थी, जिसे 'जिरगा' कहते हैं। जिरगाओं के बाद 'टप्पा' समितियाँ थीं। टप्पा एक भूमि खण्ड होता है जिसके बीच में अनेक गाँव आते हैं। इन टप्पा समितियों में इस प्रकार कई एक गाँव आते थे। इनके बाद तहसील और ज़िला कमेटियाँ थीं। इन सब के ऊपर प्रान्तीय जिरगा था। ये प्रान्तीय जिरगा एक

प्रकार की ग़ैर सरकारी पार्लियामेण्ट होती है। स्मरण रहे इस व्यवस्था का निर्माण प्रजातन्त्र के आधार पर किया गया था, इनके सदस्य चुने हुये होते थे। लेकिन चुनाव की यह पद्धति स्वयंसेवकों के संगठन में नहीं चलती थी। और चल भी नहीं सकती। सेना में थोड़ी तानाशाही तो चलती ही है। इसलिये इस पल्टन के सालार-ए-आज़म का चुनाव खान साहब स्वयं ही करते थे। और फिर वे कर्नाडर-इन-चीफ़ अपने दूसरे अफ़सरों को खुद ही नामज़द करते थे। हम कह आये हैं कि खुदाई खिदमतगारों की अनेक प्रतिज्ञाओं में एक यह भी है कि—'हम अपनी सेवाओं का कोई पुरस्कार नहीं लेंगे।' वे सच्चे अर्थों में स्वयं सेवक थे। इन अफ़सरों को संगठन की सफलताओं का बहुत कुछ श्रेय मिलना चाहिये। ख़ुदाई खिदमतगारों का अपना ख़ुद का झण्डा है, अपना बैंड है, जिसकी गगन घोर ध्वनि प्रायः उत्सवों के समय सुनाई पड़ती है। जिन्हें कभी सीमा प्रान्त में काँग्रेस के अधिवेशन देखने का सौभाग्य मिला है वे निस्सन्देह इन स्वयं सेवकों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

सरकार के द्वारा जो जो दोषारोपण ख़ुदाई खिदमतगारों पर होते रहे हैं उनका उत्तर हम दे चुके हैं। अब यहाँ उनकी चर्चा करना आवश्यक नहीं है। सीमान्त गाँधी ने यह अच्छी तरह जान लिया था कि पठानों की स्वतंत्रता देश की स्वतंत्रता के बाद ही आ सकती है। यह बहुत बड़ा सत्य है। आज जो देश का विभाजन मुसलिम लीग और उसके सारथी जिन्ना साहब ने करा दिया है, उसका कारण मूल में इसी सत्य की विकृति है। जिन्ना साहब ने देश से पहले अपने मुस्लिम समाज को और सच तो यह है कि परोक्ष में अपने ही को देश से अधिक महत्वपूर्ण और बड़ा समझा है। परन्तु खान अब्दुल गफ्फ़ार ख़ाँ साहब ने ऐसी भूल नहीं की। जब उन्होंने अपना संगठन कार्य आरम्भ किया तो सब से पहले उन्होंने मुस्लिम वर्ग के हिन्दुस्तानी नेताओं को पुकारा, उनसे अनुनय विनय की कि वे इस कार्य में मदद करें। परन्तु यह

अपमानजनक था। गाँव गाँव में पैदल घूमना, 'छोटे लोगों में पाया जाना' इन नेताओं को गवारा नहीं हो सकता, कम से कम जिन्ना साहब और उनके साथियों को तो हो नहीं सकता। इसलिये खान साहब की सब अनुनय विनय बेकार गई। अन्त में और कोई सहारा न पाकर उन्होंने सन् १९३१ ई० में अपनी संस्था का अखिल भारतीय कॉंग्रेस महासभा से गठबन्धन करा दिया। कितना दृढ़ था यह गठबन्धन। न तो वह टूटा है और न किसी को 'तलाक' देने की ही ज़रूरत पड़ी है।

अब्दुल गफ्फारखाँ असीम धैर्य रखते हैं। बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी वे जिस प्रकार हँसते रहते हैं वह हम साधारण लोगों के लिये तो आश्चर्यजनक ही घटना है। 'ईश भक्ति' और 'दुःख' मानों अटूट साथी हैं, जो ईश भक्त है मगर वह दुःखी न हुआ हो (जब पर भक्ति करी है दुःख ने ठाना हो, फिर चाहे स्वयं उसने उस दुःख को दुःख न माना हो) तो कम से कम हिन्दुस्तान में तो समझा जा सकता है कि उसकी साधना में अभी कुछ कमी है। खान साहब की साधना तो अपनी थी ही, उनके एक भतीजे की साधना-सिद्धि तो उनसे भी शीघ्र होने लगी। बात यह थी कि जिस समय खान साहब जेल में थे, तभी उनका एक भतीजा भी जेल में था। सरकारी अत्याचारों से दुःखी होकर अहिंसा के उस अमर सैनानी ने जेल में ही भूख हड़ताल शुरू करदी। लेकिन खान साहब छाती पर पत्थर रख कर यह सब देखते रहे। उन्होंने मुँह से उफ़ तक नहीं की। उन्होंने अपनी जबान से एक शब्द भी ऐसा न निकाला जिससे उस शानी शहीद की पवित्र साधना में बाधा पड़े। पूरे ७७ ७८ दिन तक यानी ११ सप्ताह १ दिन तक यह भूख हड़ताल चलती रही। विश्व-इतिहासमें इसकी शानी की साधना ढूँढे कम मिलेगी। जहाँ तक हमारा अनुमान है अमर शहीद यतीन्द्रनाथ की भी भूख हड़ताल इतने दिन नहीं चल पाई थी। 'आइरलैंड के प्रसिद्ध शहीद टेरैंस मैकस्विनी (Térrance Macswiny) भी इस अग्निपरीक्षा में इतने दिन तक नहीं चल पाये थे।' जब खान साहब ने निश्चित समझ लिया कि उनका प्यारा भतीजा अब अधिक जीवित नहीं रह सकेगा तो

उन्होंने एक पत्र सरकार को लिखा। इस पत्र से कोई यह न समझे कि खान साहब ने सरकार से किसी दया की प्रार्थना की थी। नहीं जब यह निश्चित हो गया कि उन्हें उसका शरीर ही मिल सकेगा उन्होंने सरकार को इतना ही लिखा कि उस शहीद के शरीर का प्रबन्ध किस प्रकार करना होगा।

अब पठान अपने मंजिले मक़सूद को समझ गया है और साथ ही यह भी जान गया है कि उसका रास्ता कौन सा है। प्रजातंत्र का पथ उसने चीन्ह लिया है और इस पर दृढ़ता के साथ चल रहा है। इसके साथ ही साथ उसने अपना सरदार भी पहचान लिया है। यह सरदार और कोई नहीं खान अब्दुल गफ्फ़ार खाँ हैं। हाँ एक बात उसकी समझ में ज़रूर नहीं आई है। वह यह कि ब्रिटिश शासक हमारे देश में किस हितेच्छा से अभी तक डेरा डाले पड़े हैं। और यह भी कि अब जो ये चल दिये हैं तो कौन सी शुभाकांक्षा से उन्हें जनमत के कौतुक से पाकिस्तान के साथ लटका दे रहे हैं। आज जो पठान जनतंत्र की महत्ता समझ कर उसकी ओर आकर्षित हो रहे हैं, और एक अच्छा खासा वर्ग आपसी झगड़े छोड़कर शान्त हो गया है, उसका पहला श्रेय खान साहब को ही मिलना चाहिये। एक लेखक महोदय की उपमा पुलिस के सिपाही में जा उलझी तो उन्होंने खान साहब को पुलिस का सिपाही ही कह दिया। सिन्धु के पार का सारा देश खान साहब की रखवाली में है। अँग्रेजों और खान साहिब के पारस्परिक सम्बन्ध में लोग कुछ का कुछ समझते हैं। महात्मा गाँधी की तरह ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खान साहब कट्टर दुश्मन हैं और अँग्रेजों के सच्चे दोस्त भी। पेशावर के जिस चर्च मिशन स्कूल में पढ़े थे, प्रेम की यह भावुकता उन्हें वहीं से मिली थी। डा० विगरैन स्वयं पादरी थे, शासक जाति के, परन्तु उनके और खान साहब के बीच जो प्रेम सूत्र पड़ा हुआ था वही आगे जाकर इतना बड़ा हो गया कि सम्पूर्ण मानव समाज ही उस प्रेम के घेरे में आ गया। डा० साहब ने जो कुछ सीखा है उसमें अँग्रेज जाति का बहुत

बड़ा हाथ है और इसी प्रकार खान अब्दुल गफ्फार खाँ के विचारों और और कार्यों में भी अँग्रेजी विचार और सद्भाव गुथे हुये हैं ।

कुछ विद्वानों में हाजी तुरंगजई और खान अब्दुल गफ्फार खाँ के सम्बन्ध में भी भ्रमात्मक बातें फैली हुई हैं । महाशय जे० एस० ब्राइट लिखते हैं—

"खान अब्दुल गफ्फार खाँ साहब की बहिन तुरंगजई के हाजी के साथ ब्याही गई थी, जो वर्षों तक सिन्धु के पार ब्रिटिश नौकरशाही के लिये आतंक बना रहा है । लेकिन खान साहब ने उसके ऊपर बड़ा उपयोगी प्रभाव डाला है और उसे कांग्रेस की नीति में ले आये हैं । × × × ×।"*

लेकिन यह कथन सत्य से परे है । खान साहब का तुरंगजई के हाजी के साथ ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं था ।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ को शान्तिमय उपायों में पूरा पूरा विश्वास था । वे निश्चय जानते थे कि यदि ब्रिटिश गुलामी से छूटना तो काँग्रेस के साथ मिलकर रहना जरूरी है । पाठकों को कौतूहल हो सकता है कि पठान खान अब्दुल गफ्फार खाँ साहब सीमान्त गाँधी कैसे हो गये । इसकी कहानी भी मजेदार है । कहते हैं महात्मा गाँधीजी से उनकी जान पहचान काँग्रेस के प्रसिद्ध कर्णाधार डा० अन्सारी के द्वारा हुई थी । काँग्रेस में जो काम और सेवाएँ महात्मा गाँधीजी की हैं खुदाई खिदमतगारों में सीमा प्रान्त की सीमाके बीच वही सेवाएँ खान साहब की हैं । इस समानता पर ही उन्हें सीमान्त गाँधी का भूषण मिल गया । पं० जवाहरलाल नेहरू ने जब पहले पहल खान साहब को काँग्रेस अधि-

* "The sister of Gaffar Khan was married with Haji of Turangzai who for years has been the terror of British bureaucracy across the Indus. Gaffar Khan has exercised a great useful influence over his brother-in-law and brought him with in the pale of Congress policy."

—*J. S. Bright M. A.*

पेशावर में देखा तो वे आश्चर्य चकित हुये बिना नहीं रह सके। उन्हें क्या सहसा किसी को भी विश्वास नहीं हो सकता कि ६½ फीट का यह फौजी जवान कभी अहिंसा का नम्र भक्त भी हो सकता है। तब उन्होंने खान साहब के विषय में लिखा है—"शरीर और दिमाग दोनों में सीधे साफ़ अपने प्रान्त की स्वतन्त्रता को भारतीय स्वतंत्रता ही में समझने वाले।" पठानों के चरित्र को पढ़ लेने के बाद पाठक सहसा सोच नहीं सकते कि पठान भी कभी बन्दूक रखकर अहिंसावादी हो सकते हैं। खान साहब की सफलता पर टिप्पणी करते हुये महाशय विलियम की बहिन ने लिखा है:—

"सच्चाई चाहे जो हो, परन्तु यह निश्चय है कि प्रान्त के एक ओर से दूसरे ओर तक साफ दीख पड़ने वाला प्रभाव डालने में खान अब्दुल गफ्फार खाँ खूब सफल हुये हैं। ब्रिटिश राज्य आरम्भ होने के बाद से यह पहली बड़ी सफलता है। लगभग पूरी तरह यह उनके ही प्रभाव से है कि हजारों नौजवान पठान, फिर चाहे वे अनपढ़ हों या पढ़े लिखे शिक्षित, हिन्दुस्तानी आन्दोलन के बवन्डर में आ आकर पड़ गये हैं, और लालकुर्ती वालों के झंडे के नीचे एकत्रित हो गये हैं।"

ऐसा है खान साहब का प्रेम पूर्ण प्रभाव। एक दिन जब म० गाँधी पेशावर पहुँचे तो हजारों की तादाद में गान्धी टोपीधारी विद्यार्थियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। इसका श्रेय भी खान साहब को ही मिलना होगा। सच तो यह है कि खान साहब के प्रभाव के कारण ही यह सम्भव हो सका है कि आज अफसरों और कबाइलियों के बीच वह पुरानी शत्रुता नहीं रही है। क्योंकि वे दोनों भाई अङ्गरेजों की सम्पूर्ण बुराइयों के साथ भी उससे घृणा नहीं कर सकते इसका उत्तर पाठक डा० खान साहिब के चरित्र से पायेंगे।

सन् १९३१ में कई जिरगाओं को मिलाकर एक बड़ी सभा हुई। यह सभा इतर मोहमन्दों की थी और इसमें हालीमजाई तथा तारकजाई जातियाँ आकर उपस्थित हुई थीं। अभी तक यह जातियाँ किसी प्रकार सभ्यता की हवा से अछूती थीं। उनके जीवन में पहली बार

खुदाई खिदमतगारों के संगठन की एक शाखा बनाई गयी थी। पहली बार इस जाति ने अपनी भावनाओं पर संगठन का अंकुश स्वीकार किया। इस उदाहरण से कम से कम इतना ज़रूर समझा जा सकता है कि खुदाई खिदमतगार बागी या विद्रोही नहीं है। निस्सन्देह वे विद्रोही हैं परन्तु जिस अर्थ में इस शब्द को समझने के हम आदी हैं उसमें नहीं। विद्रोही से हम कुछ-कुछ सशस्त्र क्रान्तिकारी अराजकवादी (Anarchist) को समझते हैं। खुदाई खिदमतगार अराजकवादी नहीं हैं। वे साम्राज्यशाही के विरुद्ध ज़रूर हैं, परन्तु उनके उसे हटाने के प्रयत्न अराजकवादियों जैसे खूनी और नाशक नहीं हैं। इसके खिलाफ़ खुदाई खिदमतगार तो उल्टे ब्रिटिश सरकार के मददगार ही हैं। सरकार की जो 'शान्ति पूर्वक प्रवेश' करने की नीति है उसमें वे बहुत बड़े सहायक हैं, यह इस उदाहरण से साफ़ जाहिर होता है। लाल पोशाक देखकर ब्रिटिश अफ़सर यों ही डरते हैं। क्या हुआ अगर पठानों के देश में काँग्रेसी नारे बुलन्द होने लगे? अभी थोड़े समय पहले की बात है जब खान साहब ने एक पत्रकार से बात करते हुये कहा था कि अगर ब्रिटिश साम्राज्य मुझे आवश्यक आर्थिक सहायता दे तो पाँच वर्ष के अन्दर ही अन्दर मैं इन लड़ाकू जातियों को उनके लिए अस्पताल खोल कर और स्कूल स्थापित करके, 'सभ्य' बना लूँगा। खान साहब के इस कथन में बहुत बड़ा सत्य छिपा है। इससे विदित होता है कि पठानों की सच्ची कठिनाई ब्रिटिश सरकार ने नहीं बल्कि खान साहब ने समझी है।

खुदाई खिदमतगार और उनके नेता डा० खान साहब और खान अब्दुल गफ्फार खाँ साहब आतङ्कवादी नहीं प्रजातन्त्रवादी हैं। उनकी लाल पोशाक देखकर अङ्गरेज़ी सरकार उसी प्रकार भड़कती है जिस प्रकार लाल चिथड़े को देखकर साँड़। लेकिन उस लाल पोशाक में भड़कने को कुछ भी नहीं है। वहाँ लाल रंग का क्या अर्थ है, इसे पाठक हमारे एक सहयोगी के शब्दों में देखिये—"खान अब्दुल गफ्फार खाँ हँसिये और हथोड़े वालों के रंग की पोशाक पहनते हैं। लेकिन

जैसा कहा जा चुका है ईंट का यह लाल रंग तो 'प्रतीक' मात्र है। माना कि सीमाप्रान्त में लाल रंग खून के लिए आता है, लेकिन वह आततायी (हत्यारे) का नहीं शहीदों का मतलब रखता है। आततायियों (हत्यारों) के हाथ दूसरों के खून से लाल हो सकते हैं, लेकिन उनकी कुर्तियाँ हमेशा लाल नहीं होतीं, जैसी कि शहीदों की होती हैं। 'शान्ति पूर्वक प्रवेश' के लिए अगर ब्रिटिश सरकार की भाषा में कहें, खान बन्धुओं को न तो हँसिये की जरूरत है और न हथौड़े की, न बम्ब की और न बन्दूक की गोली की।"* खान बन्धुओं का यह संगठन देखकर कुछ लोग और स्वयं सरकार भी डरती रहती है, परन्तु इस डर को निर्मूल करते हुये डा० खान साहब ने केन्द्रीय असेम्बली में मार्च १९३९ में कहा था कि सीमान्त की जातियाँ जन तन्त्र कायम करने के लिए संगठित हो रही हैं।

खान बन्धुओं में और स्वर्गीय तुरंगजई के हाजी के पुत्र बादशाह गुल में भी अच्छा परिचय सम्बन्ध है। बादशाह गुल अपर मोहमन्दों और मामाम जातियों का नेता है। नेता ही नहीं एक प्रकार से उनका सर्वेसर्वा कर्ता धर्ता ही वही है। खान साहब ने बादशाह गुल को अहिंसा की ओर आकर्षित करके देश और जाति का बड़ा भारी उपकार किया है।

जब सारे हिन्दुस्तान में सन् १९४२ अगस्त माह में 'मारो मारो'

---

* "Abdul Gaffar wears he emblem of the hammer and sickle. But as already told, the brick red colour is only a symbol. In the Frontier the red is colour for blood, no doubt; but it signifies the martyrs' rather than the tyrants.' The tyrants may have red hands—with other people's blood—but their shirts are not always red, as the martyres always have. In their peaceful penetration—to use the British phrase—the Khan brothers need neither a sickle nor a hammer, neither a bomb nor a bullet."

—*J.S. Bright M. A.*

शुरू हो गई तो सीमाप्रान्त भी क्रान्ति की उस ज्वाला में कूद पड़ा। खान अब्दुल गफ्फ़ार खाँ अपने कुछ सहयोगियों के साथ मरदान की ओर जा रहे थे कि पुलिस के एक जत्थे ने आकर उनके आगे छाती पर बन्दूक तान दी और डाटकर कहा कि पीछे लौट जाओ। पुलिस इस दल को मरदान ज़िले की सीमा में भी न घुसने देती थी और खान साहब ने पीछे लौटना न सीखा था। अड़ गये। उन्होंने यह भी उचित नहीं समझा कि अपने लोगों को हट जाने को कह दें। पुलिस अफसर दंग रह गया। उसे स्वप्न में भी ख्याल न था कि इस प्रकार निहत्थों का एक दल मरने पर उतारू हो जायगा। बन्दूकें तो रुक गईं। अब लाठियों का नम्बर आया। धोबी की मार प्रसिद्ध है, इस दल पर भी वैसी ही मार पड़ी। उसका नेता बुरी तरह घायल हुआ। और अन्त में गिरफ्तार कर लिया गया। प्रान्त भर में इस गिरफ्तारी का बड़ा सनसनीदार प्रभाव पड़ा। लहरों की संख्याओं में आ आकर खुदाई खिदमतगार धरने देने लगे और गिरफ्तार कर लिये गये।

'४२ का वह दमन चक्र शान्त हो गया। अन्य प्रान्तों की तरह सीमाप्रान्त में भी कांग्रेसी मन्त्रि मण्डल बन गया। खान साहब, हमारे चरितनायक आज स्वतन्त्र हैं। ३ जून १९४७ को हिज़मैजेस्टी सरकार की ओर से स्वाधीनता की जो घोषणा हुई है, और उसके अनुसार यह निर्णय करने के लिये कि सीमाप्रान्त हिन्दुस्तान में जायगा या पाकिस्तान में, ६ जुलाई १९४७ को जो जनमत लिया जा रहा है, खान साहब आजकल उसी में व्यस्त हैं। एक ओर कुछ गुन्डे डरा रहे हैं कि हज़ारा और डेरा इस्माइल खाँ में अगर कोई 'पठानिस्तान की माँग करने आयेगा तो उसको जान से मार डाला जायगा। सीमाप्रान्त में पठानिस्तान नहीं उन लोगों का कब्रिस्तान बनाया जायगा।" लेकिन अगर मौत का ही डर होता तो जान बूझ कर वह 'सिर हथेली पर रखे क्यों घूमते। खान साहब अब भी लोगों को इस जनमत का बहिष्कार करने के लिये कहते निडर होकर घूम रहे हैं। हमेशा की तरह उनकी आवाज़ है—पठान आज़ाद हैं। वे किसी भी विदेशी की (दूसरे प्रान्त

का आदमी भी विदेशी है) पराधीनता या ग़ुलामी नहीं मानेंगे। वे अपना स्वतन्त्र पठानिस्तान अलग बनायेंगे।

दुनियाँ में शत्रु मित्र सब के होते हैं। मित्र तो बनाये ही बनते हैं, परन्तु शत्रु स्वयं भी बन जाते हैं। दूसरे की बुराई करना जिनका स्वभाव है वे तो बुराई करेंगे ही। यही बात दूसरी प्रकार के लोगों के बारे में भी कही जा सकती है। महाशय एडवर्ड थौम्पसन ने एक पुस्तक लिखी है—"हिन्दुस्तान से एक चिट्ठी (A Letter from India) यह महाशय अपनी पुस्तक में सीमान्त गाँधी को बड़े प्रेम भाव के साथ अ० ग० क० कह कर लिखते हैं। एक दूसरे अँग्रेजी के लेखक महाशय हैं वे उपरोक्त लेखक के प्रेमभाव पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं:— "सन् १९३१ के अन्त में हालत बहुत ख़तरनाक हो रही थी। किसी भी क्षण हम लोग सीमा प्रान्त से बाहर निकाले जा सकते थे। जिनका स्मरण आते ही हृदय प्रेम से भर उठता है', वे अब्दुल गफ्फार खाँ सफल होते दीख रहे थे। महाशय हैरो जे० मीनबौल का महाशय थौम्पसन की भावुकता पर यह व्यंग्य कितना कटु है। वे आश्चर्य करते हुये लिखते हैं) और सचमुच उनके जैसे लोगों के लिये तो आश्चर्य की बात ही है)—"महाशय थौम्पसन का यह दुलारका नाम उस 'दुःखदायी आदमी के लिये क्या मतलब रख सकता है।" ठीक है मिस मैयो के इन भाई बन्दों को जब बुराइयाँ ही करनी हैं और गालियाँ ही देनी हैं तो संसार का कोई भी कोष उनके लिये अधूरा ही रहेगा। सीमान्त गाँधी पर और महाशय थौम्पसन पर इस प्रकार व्यंग्य करके इन महाशय ने यह नहीं कि थौम्पसन महाशय का ही अपमान किया हो, बल्कि उन्होंने हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र का अपमान किया है। पशुओं की तरह सारे जंगल को रौंदते हुये घूमकर जो छायादार उपकारी पेड़ों को गालियाँ दें तो उन्हें वे ही जाने क्या कहना चाहिये। गफ्फार खाँ सीमा प्रान्त के देवता हैं और हमारे राष्ट्र के गौरव। इतनी उच्छृंखल जाति पर इतना बड़ा प्रभाव बनाये रखना सीमान्त गाँधी के प्रेम पूर्ण चरित्र पर ही आश्रित है। मीनबौल जैसे पत्रकारों को चाहिये तो यह था कि

पुस्तक लिखने की अनधिकार चेष्टा न करते परन्तु जिन्हें रुपये के आगे मानापमान का कुछ भी ख्याल नहीं वे मान भी कैसे सकते। ग्रीनवौल महाशय के मित्रों ने बार बार कहा—"हिन्दुस्तान के बारे में तुम कोई किताब मत लिखो।" यह भर्त्सना उन्हें हिन्दुस्तान आते समय, हिन्दुस्तान की यात्रा करते समय और प्रायः लिखते समय भी सुननी पड़ी थी। कभी-कभी तो लोग इन पर कटाक्ष भी कर दिया करते थे। खूब हैं महाशय ग्रीनवॉल और उनकी पुस्तक 'हिन्दुस्तान पर तूफ़ान।'

अपने इस रेखा चित्र को हम अपने चिरपरिचित लेखक जे० एस० ब्राइट की पुस्तक 'फ्रन्टियर और इसके गाँधी' के एक और उद्धरण के साथ समाप्त करते हैं। जे० एस० ब्राइट महोदय कुछ भावुक तबीयत के आदमी हैं। भावुकता की लहर में लिखते हुये भी उनके कथन में बहुत कुछ सत्य है। आशा है पाठक इसी विचार से इस उद्धरण को पढ़ेंगे।

'खान अब्दुल गफ्फार ख़ाँ हिन्दुस्तान के महात्मा गाँधी से अधिक चीन के जनरलिस्मो चांग-काइ-शेक से मिलते हैं। चीन के जनरलिस्मों और सीमान्त गाँधी में कुछ अद्भुत समानता है। वे दोनों ही फौज के सेनापति होने के लिये बने हैं। दोनों ही अपनी इच्छाओं को बड़े प्रयत्न से दबाकर तपस्वी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके जीवन का मान दण्ड समाज में सब से नीचे है। सीमान्त गाँधी ने चाय पीना छोड़ दिया है और चांग-काइ-शेक अपने देशवासियों के खिलाफ़, कभी कभी ही पीते हैं। और फिर महात्मा गाँधी कभी भी बहुत बड़े फौजी आदमी नहीं हो सकते थे। उनका स्थान तो शान्ति और क़ानून के आसमान में है। तब कोई आश्चर्य नहीं यदि वे अहिंसक बन गये। लेकिन पठान के लिये अहिंसा आसान चीज़ नहीं है। पठान तो उग्र और सतर्क होता है। उसका स्वभाव तो उसी समय से हिंसात्मक रहा है, जब पहले पहल आक्रमणकारियों ने सीमा प्रान्त को पार कर उसके घर की शान्ति को भंग कर दिया। इसलिये युवक अब्दुल गफ्फार के लिये यह बहुत भारी काम रहा होगा कि वह अहिंसा का पुजारी हो गया। उनका यह काम उनकी इच्छा शक्ति का बहुत बड़ा उदाहरण है। इसि-

हास में उनके मुकाबले का आदमी नहीं मिलता। जनरल चांग ईसाई आदमी हैं। ईसाइयत ने उनकी सैनिक भावना को पानी की धाराओं की तरह ठंडा बना दिया है। और फिर चांग साहब चीनी दर्शन का एक तार है। लेकिन यह बात अब्दुल गफ्फार खां के साथ नहीं है। न तो वह चीनी हैं और न हिन्दू। चीन और हिन्दुस्तान की भावनाओं में एक मान्य है। चीन बौद्ध धर्म की भूमि है। बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म से उत्पन्न है लेकिन हिन्दू और पठान के बीच में कोई स्वर्ण-सूत्र नहीं है। अब्दुल गफ्फार खां गांधी हो जाते हैं, यह बहुत बड़ा मानसिक विद्रोह है। सीमा प्रान्तीय होने के लिये वे पहले गांधी हैं, और गांधी होने के लिए वे पहले सीमा प्रान्तीय।"

म्राइट महोदय के इस उद्धरण में इतना निस्सन्देह सत्य है कि अब्दुल गफ्फार खां बहुत बड़े त्यागी और तपस्वी हैं। भले ही पाठक इस बात की तुलनाओं से असहमत हों। असहमत तो लेखक स्वयं ही है। एक दूसरे स्थान पर वह लिखता—"अब्दुल गफ्फार खां हिन्दुस्तानियों के लिये वे दूसरे गांधी हैं। जैसा कि हम जानते हैं। इङ्गलैंड के पूरे इतिहास में एक भी व्यक्ति ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ है जो गांधी जी से बढ़कर हो। कुल मिलाकर सीमान्त गांधी प्रणम्य हैं।

कुछ अन्य विभूतियाँ

पिछले पृष्ठों में हमने जिन चार नेताओं का परिचय दिया है उनमें आरम्भिक दो तो स्वर्गीय हैं, और बाद के दो अभी जीवित हैं। हमने चार ही महापुरुषों को लिया, इसका तात्पर्य कोई यह न समझे कि सीमाप्रान्त के यही चार हैं। मुल्ला, अड्डा, मुल्ला, पोविन्दा जैसी अनेक विभूतियाँ पुरानों में और डा० खान साहिब, बादशाह गुल आदि नयी जीवितों में भी हैं। स्थानाभाव के कारण यह सम्भव नहीं कि उन सभी का विशद परिचय यहाँ दिया जा सके। इन पंक्तियों में अब हम पाठकों के सम्मुख कुछ मौजूदा नेताओं का परिचय लिखते हैं।

इस समय, पाठकों को मालूम होगा, कि सीमाप्रान्त में खुदाई खिदमतगार और मुस्लिम लीग दो प्रमुख राजनैतिक दल हैं। हम दोनों ही दलों के नेताओं का बहुत संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

डा० ख़ान साहिब

डा० ख़ान साहिब का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। आज वह सीमाप्रान्त के प्रधान मन्त्री हैं। परन्तु कोई यह न समझे कि उनका जो प्रान्त-व्यापी सम्मान हो रहा है, वह इस प्रधान मन्त्रित्व के कारण है। इसके अतिरिक्त यह भी नहीं है कि उनकी प्रसिद्धि उनके छोटे भाई खान अब्दुल गफ्फार खाँ के यश के कारण हो। खान साहिब का बच्चों सा कोमल और निश्छल स्वभाव देखकर, ऐसा विरला ही पाषाण हृदय होगा जो उनका अपना न हो जाय। यदि आपको उनसे कभी मिलना है तो इस बात की जरूरत नहीं कि पहले से समय निश्चित कराइये और फिर भी दरबानों के धक्के खाइये। चाहे जब शाम के वक्त पेशावर की किसी सड़क पर आप उन्हें घूमते हुये पा सकेंगे। उनके दुश्मन भी उनकी सच्चाई ईमानदारी, पक्षपात हीनता, और उदार नीति की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। तब भला मित्रों की तो कही ही क्या जाय। यहाँ हम अब्दुल क़य्यूम साहब का ही मत लिखते हैं। डा० खान साहब के विषय में वे लिखते हैं।

"जिन अर्थों में आज 'पॉलिटीशियन' (राजनीतिज्ञ) शब्द को समझा जाता है, उन अर्थों में वे (डा० साहिब) 'पॉलिटीशियन' नहीं हैं। (अँग्रेजी के पॉलिटीसियन का अर्थ कूटनीतिज्ञ जैसा होता है, और समझा जाता है कि उस नाम का आदमी बड़े से बड़ा झूठ बोलने में, बड़े से बड़ा विश्वासघात करने में भी नहीं चूकता, क्योंकि वह अपना स्वार्थ पहले और सब सेपहले समझता है।) जो कुछ वे ठीक समझते हैं उसे करने में बिना किसी संकोच के लग जाते हैं। (उचित काम करते समय) वे यह नहीं सोचते कि इसके परिणाम क्या होंगे, जो भी हों वे काम करने से रुकते नहीं। यह कहना सत्य ही है कि जिस आदमी ने उनके साथ बुराई की है, उसके भी लिये उनके दिल में ज़रा सा मैल

नहीं है।" कय्यूम साहब आज प्रतिपक्षी हैं, परन्तु आशा है कि वे अपने इन शब्दों की सत्यता से मुँह नहीं मोड़ेंगे।

खान अब्दुल गफ्फार ख़ाँ की तरह ही डा० खान साहब भी पहले मि० विगरैम के चर्च मिशन स्कूल में पढ़ आये। इस शिक्षा को समाप्त कर लेने पर डा० खान साहब डाक्टर होने के लिये एडिनबरा चले गये। वहीं पर उन्होंने अपनी शादी एक अँग्रेज़ महिला से कर ली। खान अब्दुल गफ्फार ख़ाँ के परिचय में हमने जो यह कहा था कि ये दोनों भाई अँग्रेज जाति विरोधी नहीं हो सकते, उसका यही रहस्य है। अँग्रेज़ महिला से विवाह कर लेने पर भी क्या वे अँग्रेज़ जाति से दुश्मनी कर सकते हैं, यह असम्भव है।

डाक्टरी पास कर लेने पर जब वे लौटे तो उन्होंने फ़ौजी अस्पताल में नौकरी कर ली। वे यह नौकरी कर रहे थे परन्तु इसका मतलब कोई यह न समझे कि वे सरकार के गुलाम हो गये। वे अपने छोटे भाई के कामों को देख रहे थे, देख ही नहीं रहे थे, वरन् सक्रिय भाग भी ले रहे थे। राजनीति के क्षेत्र में वे उतर आये। धीरे-धीरे उनका प्रभाव और सम्मान बढ़ने लगा। वे खुदाई खिद्मतगारों के संगठन को सँभाल रहे थे।

सब से पहले सन् १६३८ में जब कॉंग्रेसी मंत्रिमंडल की स्थापना हुई तो उसके प्रधान मंत्री का पद आपको ही मिला। इस पर वे जनता के भेजे हुए थे। और आज भी जनता ने ही प्रधान मंत्री के पद पर बैठाया है। तभी हम कुछ दिनों से सुन रहे हैं कि बार-बार उन्होंने अपने को जनता के हाथों में देकर कहा है कि यदि वह चाहे तो अभी अभी वे इस पद को छोड़ने के लिये तैयार हैं। आपकी न्याय प्रियता के एक नहीं अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। पहले मंत्रिमंडल के समय जब किसानों का आन्दोलन हुआ था तो उन्होंने अपने बेटे उबेदुल्ला को भी गिरफ़्तार करने में आगा पीछा नहीं किया। स्मरण रहे अपने इस बेटे को डा० साहब बहुत अधिक प्यार करते हैं। अपने प्रतिपक्षी के प्रति भी पूरा न्याय करना उनका पहला ध्येय है। परन्तु पक्षपात से उनकी

दुश्मनी है। जब भी कांग्रेसी उनके पास कुछ पक्षपात माँगने आता तभी वे कह देते—"क्या तुम अपनी सेवाओं का पुरस्कार चाहते हो? अगर ऐसी बात है तो मैं मानता हूँ कि तुम्हारे बलिदान अपावन थे, क्योंकि उनमें स्वार्थ का मैल लगा हुआ था। अपने कर्त्तव्य को पूरा करने में तुमने जो कुछ किया है उसका मूल्य मत माँगो। इसी प्रकार यदि असेम्बली का कोई उनके पक्ष का उनसे किसी दया की आशा रखता तो वे स्पष्ट शब्दों में कह देते—'आप कोई दूसरा नेता चुन लें जो जनता के प्राणों को लेकर आपकी जेबें भर दें। और इसके साथ अपना स्तीफा पेश कर देते।

जन सेवा उनका प्रधान लक्ष्य था। इसके लिए वे बड़ी से बड़ी क़ीमत भी देने में नहीं चूकते। स्वयं ख़ूब रईस थे। उन्हें हर तरह की सुख-सुविधायें प्राप्त थीं। जब भी उन्होंने घायलों को देखा तभी चाहे दिन हो या रात घर से निकल पड़ते, और सेवा में जुट जाते। कभी-कभी तो उन्हें बीस-बीस मील तक पैदल जाना पड़ता। अनेकों बार उन्हें जेल की सजायें भुगतनी पड़ी हैं। पिछली दफ़ा उन्हें गिरफ़्तार करके हज़ारी बाग़ जेल में फेंक दिया गया था। निर्भयता इतनी थी कि स्पष्ट शब्दों में कठोर से कठोर सत्य को कहने से नहीं चूकते। केन्द्रीय असेम्बली में सरकारी दमन का जो करुणोत्पादक वर्णन उन्होंने दिया है वह क्या कोई और दे सकता था? बड़ी से बड़ी विपत्ति में धैर्य रखना उन्होंने सीख लिया है। आज जिस समय अन्य 'नेता' लोग 'महलों' में सुख भोग रहे है, तब भी प्रधान मंत्री होते हुए वे गाँव-गाँव घूम कर अपने दल का काम कर रहे हैं। डा० खान साहब बहुत बड़े नेता, वक्ता, और कार्य कर्त्ता हैं।

राय बहादुर मेहरचन्द खन्ना—

राष्ट्रीय वर्ग में रायबहादुर मेहरचन्द खन्ना का नाम बहुत प्रसिद्ध है। प्रायः सीमाप्रान्त के अल्प संख्यक हिन्दू और सिक्खों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस समय प्रान्त में सर अब्दुल कय्यूम का मंत्रिमण्डल था, आप अर्थ मंत्री थे। लेकिन कॉंग्रेस के अविश्वास वोट ने

मंत्रिमंडल को जब हटा दिया तो आप भी हटकर चले आये। इस बार फिर आप कॉंग्रेसी मंत्रिमंडल में मंत्री हैं। खन्ना साहब अल्प संख्यकों के बहुत बड़े हिमायती हैं। उनके अधिकारों की रक्षा के लिये सरकार से निरंतर युद्ध करते रहना ही आपका प्रधान काम रहा है। आपकी बुद्धिमत्ता एवं चतुराई तो आकर्षक है ही, परन्तु अपनी वक्तृता तो एकदम मोहित ही कर लेती है। युद्धि काल में लीगी मंत्रिमंडल के समय आप वामपक्ष के सेक्रेटरी थे। स्मरण रहे उस समय वामपक्ष में कॉंग्रेस थी। आप अल्प संख्यकों के हिमायती जरूर हैं, परन्तु उससे कोई यह न समझे कि आप नाममात्र को भी साम्प्रदायिक हैं। इसका सार्टीफिकेट स्वयं कय्यूम साहब ने इन शब्दों में दे दिया है—"उसके सम्बन्ध में साम्प्रदायिकता तो लगभग झूँठी ही बात है। मुसलिम समाज में भी उनके बहुत से मित्र और प्रशंसक हैं।

कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में क्या होगा। निस्सन्देह खन्ना साहब बड़े प्रतिभावान व्यक्ति है।

राष्ट्रीयदल के अन्य नेताओं में **मियाँ जफरशाह** का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मियाँ जफरशाह कक्खा खेल के एक प्रसिद्ध घराने के पुत्र हैं। पिछली दफा प्राय असेम्बली के सदस्य भी थे। राजनैतिक क्षेत्र में तो आपका सम्मान ऊँचा है साथ ही जनता भी आपको आदर की दृष्टि से देखती है। आप कॉंग्रेसी हैं। आपको भी कय्यूम साहब का सार्टीफिकेट मिला है:—वे सीधे सच्चे और ईमानदार आदमी हैं। उनके विचार सुस्पष्ट और स्थिर हैं। जैसा कि सादा उनका जीवन है वैसे ही वे विश्वस्त भी हैं।" जफरशाह बड़े आशावादी आदमी हैं। उन्हें पठानों के उज्ज्वल भविष्य में विश्वास है।

मुहम्मद यूनुस जिन्होंने 'फ्रन्टियर स्पीक्स' पुस्तक लिखी है और जो कि सरकार ने जब्त कर रक्खी थी, बड़े ही योग्य व्यक्ति हैं। दुबले पतले शरीर में उनका वीर हृदय एक आश्चर्य सा दीख पड़ता है। अपने कर्त्तव्य के प्रति वे बड़े सजग एवं ईमानदार हैं। पिछली बार उन्हें भी

हरीपुर की जेल में ठूँस दिया गया था। खान अब्दुलगफ्फारखाँ जैसे व्यक्ति इन यूनुस साहब के प्रशंसक हैं। **अरबाब अब्दुल रहमान** का नाम हमें विशेष रूप से लिखना है। रहमान साहब रईस घराने के आदमी हैं। आपने सारी सम्पत्ति का मोह छोड़कर देश सेवा का व्रत लिया है। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जब उनके साथी रईस लोग सरकार की अनावश्यक गुलामी करते फिरते हैं तब उस हीन परम्परा को तोड़कर आपने निर्भयता पूर्वक देश की पुकार पर अपने व्यक्तित्व को धारा में फेंक दिया है। अरबाब साहब भी असेम्बली के सदस्य थे, और उस समय काँग्रेस पार्टी की ओर से डिप्टी लीडर भी थे। उन्होंने जनता के लिये काँग्रेस के प्लेटफार्म पर से भारी काम किया है। **अमीर मुहम्मद खाँ** को पाठक न भूलें। ये भी पिछले दिनों हरीपुर जेल की यातनायें सह रहे थे। आपकी सबसे बड़ी विशेषता आपका व्याख्यान। आप पश्तो के बहुत अच्छे वक्ता थे हास्य और व्यंग्य आपके प्रधान गुणों में से हैं।

काज़ी अताउल्लाखाँ, जो पिछली बार शिक्षा मंत्री थे बड़े महत्व के आदमी हैं। आज वे खान अब्दुल गफ्फारखाँ साहब के खास आदमियों में से हैं। काज़ी साहब भी हरीपुर की सेन्ट्रल जेल में पटक दिये गये थे। मंत्री की हैसियत से आपने गाँवों में शिक्षा फैलाने का अथक परिश्रम किया था। पश्तो भाषा की शक्ति और अच्छाई में आपका दृढ़ विश्वास है। स्कूलों में पश्तो को पढ़ाई का माध्यम बनाने वालों में आपका नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पेशावर शहर के **हकीम अब्दुलजलील नदवी और खान अलीगुल खाँ** का नाम पाठकों ने सुना होगा। ये दोनों व्यक्ति सीमा प्रान्त में काँग्रेस के स्तम्भ की भाँति हैं। अलीगुलखाँ साहब तो प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के सभापति भी रह चुके हैं। वे बड़े उत्साही कार्यकर्त्ता हैं और पेशावर की चुङ्गी के सभापति भी आप चुने जा चुके हैं। हकीम अब्दुल जलील

का स्वाधीनता आन्दोलन में प्रमुख स्थान है। हकीम और डा० खान साहब की बड़ी गहरी दोस्ती है।

सीमाप्रान्त के मुस्लिम लीगी नेता :—

लीगी दल के नेताओं में आजकल आप खान अब्दुल कय्यूम साहब का नाम सुन रहे हैं। कय्यूम साहब आज सीमाप्रान्त की लीग पार्टी के सर्वेसर्वा हैं। इसके विपरीत कुछ ही दिन पहले वे कांग्रेसी थे। और अपने को राष्ट्रीय मुसलमान कहने में गौरवान्वित अनुभव करते थे। अब आपका वह पुराना अहिंसात्मक रूप बदल गया है और उन्होंने लीग के सभी हथकंडों में अपने को होशियार कर लिया है। तभी तो आपने कुछ दिन हुये खुदाई खिदमतगारों को यह कहकर डराया था कि अगर कोई हजारा आदि जिले में प्रोपैगंडा करने के लिये आयगा तो उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। आप नये ही मुल्ला' हुये हैं देखें भविष्य में क्या होता है।

लीग के दूसरे और पुराने कार्यकर्त्ता हैं सरदार मुहम्मद औरंगजेब खाँ। ये खाँ साहब लीग के बड़े अच्छे समर्थक और कार्यकर्त्ता हैं। पहले पहल आप ही सीमाप्रान्त से क़ायदे आजम जिन्ना साहब की सेवा में उपस्थित हुये थे। जिन्ना साहब ने उन पर कृपा का हाथ फेरा और उन्हें अखिल भारतीय मुसलिम लीग की कार्यकारिणी का सदस्य बना लिया। फिर क्या था। पौ बारह थे। दौड़े-दौड़े आप सीमाप्रान्त में लौट आये और लीग का स्तुतिगान प्रारम्भ किया बाद को युद्धकाल में जो मंत्रिमंडल बना था, उसके प्रधान मंत्री का पद आपको ही मिला था। स्मरण रहे यह मंत्रिमंडल अल्प मत वालों का था। असेम्बली में लीग के समर्थक बहुत थोड़े थे, इस कारण उन्हें सदा डर बना रहता था कि अब गये तब गये। अपने ही समर्थक सरदार साहबको डरा-डरा कर अपना उल्लू सीधा किया करते थे। परिणामस्वरूप भारी दुराचार फैलने लगा। कांग्रेस अविश्वास का प्रस्ताव लिये तैयार बैठी थी कि जैसे ही मीटिंग हो और वह प्रस्ताव रक्खा जाय। परन्तु सरदार साहब चाल खेल गये। उन्होंने मीटिंग ही नहीं बुलाई।

तत्कालीन अर्थ मंत्री अब्दुर रब निश्तर साहब थे। वे भी अखिल भारतीय मुसलिम लीग की कार्यकारिणी के सदस्य थे, सुना जाता है आप जिन्ना साहब के बड़े उत्कट एवं उग्र भक्त हैं। मंत्री होने के पहले सरदार साहब की तरह आप भी वकालत करते थे, और मजे में थे, परन्तु राजनीति में टाँग फँसाकर आपने व्यर्थ अपनी छीछालेदर कराई। कुछ लोगों का तो विश्वास यह है कि निश्तर साहब का ही दिमाग प्रान्तीय लीग के पीछे काम करता था। आपको भी आशा थी कि भविष्य में प्रान्तीय लीग की बागडोर आपके ही हाथ में पड़ेगी। परन्तु दुर्भाग्य वह नहीं हो सका। और अब्दुल कय्यूम साहब बीच में कूद पड़े। असेम्बली में उन्हें स्वतंत्र सदस्य की भाँति चुनकर भेजा गया था। कुछ समय तक तो आपने काँग्रेस की ओर भी कमर झुकाई थी। फिर कुछ समय तक सबसे दूर चले गये और अन्त में जब लीगी मंत्रिमंडल बना तो उसी के साथ अपना गठबन्धन स्वीकार कर लिया।